भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा

सुजीत चक्रवर्ती

अनुवाद-गंगारत्न पाण्डेय पुनरीक्षण-जीवन नायक

भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा

(दूसरे-तीसरे संशोधित संस्करण से अनूदित)

लेखक : सुजीत के० चक्रवर्ती, एम. ए. (कलकत्ता),
डिप० एड० (लीड्स)
तत्कालीन सचिव, विश्वविद्यालय फिल्म परिषद्,
नई दिल्ली

प्राक्कथन—भूतपूर्व वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं सांस्कृतिक कार्य-मंत्री
प्रो० हुमायूँ कबीर

अनुवाद : गंगारत्न पाण्डेय

पुनरीक्षण : जीवन नायक

मूल्य : १८ रुपये

प्रकाशक
सुजीत कुमार चक्रवर्ती, १५सी, मदनपाल लेन, कलकत्ता-२५
[केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के सहयोग से]

दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मंत्रालय के तत्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्चकोटि की हों, किन्तु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महँगी न हों ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें खरीदकर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएँ बनाई गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशित पुस्तकों की प्रतियाँ निश्चित संख्या में खरीदकर उन्हें मदद पहुंचाती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक उसी योजना के अंतर्गत प्रकाशित की जा रही है। पुस्तक के लेखक विषय के अधिकारी विद्वान हैं। पुस्तक का अनुवाद एवं पुनरीक्षण निदेशालय में हुआ है तथा इसमें शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग किया गया है। पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था लेखक ने स्वयं, एक प्रकाशक के रूप में, की है।

हमें विश्वास है कि प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक होगा और इस व्यवस्था के फलस्वरूप ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित अधिकाधिक पुस्तकें हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है यह योजना सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय होगी।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

ए० चन्द्रहासन
निदेशक

आभार

अँग्रेज़ी संस्करण के समान हिन्दी संस्करण के लिए भी लेखक अनेक व्यक्तियों का उनकी सहायता के लिए आभारी है। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय के श्री जीवन नायक और श्रीमती तारा तिक्कू से जो सहायता और सुझाव मिले हैं लेखक उनके लिए कृतज्ञ है। श्री गंगारत्न पाण्डेय ने भी सावधानी से अनुवाद किया है। सेंट ज़ेवियर्स कालेज कलकत्ता में अपने पुराने सहकर्मी श्री एल० पी० त्रिपाठी का लेखक विशेषरूप से अनुगृहीत है। उन्होंने पुस्तक के कुछ अध्यायों के प्रूफ़ पढ़ने की कृपा की है। पुस्तक में विशेष रुचि लेने और उपयोगी सुझाव देने के लिए लेखक लिटिल फ़लावर प्रेस, कलकत्ता के रेवरेण्ड फादर एच० रोसनर, एस० जे और उनके कर्मचारी मंडल का भी आभारी है।

अन्ततः लेखक अपनी पत्नी श्रीमती मुकुल चक्रवर्ती का अनुगृहीत है। उन्होंने पूरी पुस्तक के प्रूफ़ पढ़े। उनकी राय अत्यधिक उपयोगी रही है।

कलकत्ता, सुजीत के० चक्रवर्ती

जनवरी, '६९

मंत्री,
वैज्ञानिक अनुसन्धान एवं सांस्कृतिक कार्य, भारत,
नई दिल्ली ।

प्राक्कथन

(संशोधित संस्करण

आदि काल से ही शिक्षा में दृश्य-श्रव्य साधनों का उपयोग होता आया है। किन्तु संगठित रूप में प्रयत्नपूर्वक इनका प्रयोग अभी हाल ही में शुरू हुआ है। शिक्षा के अत्यधिक विस्तार ने और विद्यार्थियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि ने, शिक्षा को सरल, अधिक आकर्षक तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, सभी ज्ञात साधनों का उपयोग करने के लिए विवश कर दिया है।

श्री सुजीत के० चक्रवर्ती की यह पुस्तक भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा के सम्बन्ध में लिखी जानेवाली सर्वप्रथम पुस्तकों में से है। मुझे प्रसन्नता है कि थोड़े ही समय में इसका संशोधित और संवर्धित संस्करण निकालना आवश्यक हो गया है। अन्य देशों के दृश्य-श्रव्य शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्त और व्यवहार से वह परिचित हैं, किन्तु अधिकांशतः भारत में प्राप्त अपने अनुभव को ही उन्होंने इस पुस्तक का आधार बनाया है। अपने इस अध्ययन में उन्होंने कुछ प्राचीनतम और कुछ नवीनतम दृश्य-श्रव्य-शिक्षा साधनों का विवेचन भी शामिल किया है। इस कारण हमारे सभी स्तरों के स्कूलों और अध्यापकों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी सिद्ध होनी चाहिए।

नई दिल्ली,
अप्रैल १, १९६२

हुमायूँ कबीर

भूमिका और आभार

(संशोधित संस्करण)

प्रथम संस्करण के बाद दृश्य-श्रव्य शिक्षा के क्षेत्र में जो अनेक विकास हुए उन सबको इस पुस्तक में शामिल करने की आवश्यकता से प्रेरित होकर ही यह संशोधित संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस उद्देश्य से पुस्तक वस्तुतः दुबारा लिखी गई है और उसे नए सिरे से सचित्र बनाया गया है। अनेक नए साधनों का विवेचन किया गया है। कुछ साधनों की चर्चा तो इस देश में पहली बार इस पुस्तक में की जा रही है,—जैसे-तीव्रगामी विन्यासदर्शी, त्रतीय प्रक्षेपी, और शिरोपरि प्रक्षेपी। फिरभी, ऐसे सरल साधनों और परम्परागत माध्यमों को समान महत्त्व दिया गया है जिन्हें अध्यापक और विद्यार्थी कम खर्च में स्वयं तैयार कर सकते हैं। इन सरल और परम्परागत माध्यमों में कुछ ऐसी विशेष बातें हैं जो आधुनिक वैज्ञानिक साधनों से पूरी नहीं की जा सकतीं।

पोरबन्दर से लेकर पेरियनायिकनपाल्यम् तक अनेक स्कूल-अध्यापकों और प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राध्यापकों ने प्रथम संस्करण का उपयोग किया है। लेखक उनका आभारी है। आशा है कि यह संशोधित संवर्धित संस्करण, जो नए सिरे से सचित्र और अद्यतन बनाया गया है, उनके लिए और अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

इस नई पुस्तक के लिए चित्र प्राप्त करने में निम्नलिखित महानुभावों और संस्थाओं से जो सहायता मिली है उसके लिए लेखक उनके प्रति सधन्यवाद आभार प्रकट करता है: श्री० जी० घोष, ग्रंथागारिक, भारतीय भूसर्वेक्षण ग्रंथागार, कलकता; श्री जे० घोष, सचिव, औद्योगिक कला संस्थान, कलकत्ता; श्री जी० के० आठले, निदेशक, दृश्य-श्रव्य शिक्षा का राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली; श्री एम० बी० वजीफ़दार, उपग्रंथागारिक, टाटा इन्स्टीट्यूट आफ़ फंडामेंटल रिसर्च, बम्बई; डाक्टर आर० के० पंजा, एस० एस० कर्नानी स्मारक अस्पताल, कलकत्ता; श्री बी० बनर्जी चौधुरी, सहायक ग्रंथागारिक, राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता; श्री समर चटर्जी, सी० एल० टी०, कलकत्ता; श्री प्राण कृष्ण पाल, आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय; श्री अमिय सेनगुप्त, स्टैंडर्ड वैक्युअम् आयल कम्पनी, कलकत्ता; श्री महेन्द्र नाथ, महासचिव, चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी, नई दिल्ली; श्री डी० बख्शी, वरिष्ठ कलाकार, दृश्य-श्रव्य शिक्षा का राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली; श्री डी० चटर्जी, कला-अध्यापक, हिन्दी हाईस्कूल, कलकत्ता; श्री एम० विवेकानन्द, समन्वयक, विकास-सेवा विभाग, त्यागराज कालेज आफ़ प्रिसेप्टर्स, मदुराई;

श्री के० पो० दामोदरन नाम्बिसन, समन्वयक, विकास-सेवा विभाग, राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय, कालीकट ; सामाजिक शिक्षा परिषद्, बिहार सरकार ; पर्यटक कार्यालय, भारत सरकार ; केन्द्रीय अँगरेज़ी संस्थान, हैदराबाद ; एलाएंस फ़्रैंकाए, कलकत्ता ; फ़िलिप्स इण्डिया लि०, कलकत्ता ; श्री एस० कर, इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज़ (इण्डिया) प्रा० लि०, कलकत्ता ; डनलप रबर कं० (इण्डिया) लि० ; राष्ट्रीय सांस्कृतिक संघ, कलकत्ता ; श्री पी० दासगुप्त, मैनेजर, फिल्म्स डिवीज़न, कलकत्ता ; श्री आनन्द मुकर्जी, क्लैरियन ऐडवर्टाइज़िंग सर्विसेज़ (प्रा०) लि० ; लेक व्यू हाई स्कूल, कलकत्ता ; ली मेमोरियल गर्ल्स स्कूल, कलकत्ता ; सेन रैले इण्डस्ट्रीज़ आफ़ इण्डिया लि०, कलकत्ता ; प्योर ड्रग कं०, कलकत्ता ; औद्योगिक कला संस्थान, कलकत्ता ; स्टेट्समैन, कलकत्ता ; भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता ; आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय ; न्यू यार्क ग्रैफ़िक सोसायिटी ; एलेक्ट्रो इंजिनियरिंग ऐण्ड मैन्युफ़ैक्चरिंग कं०, डेट्राएट, यू. एस. ए. ; एयरो सर्विस कार्पोरेशन, फ़िलाडेलफ़िया, यू. एस. ए. ; कीस्टोन व्यू कम्पनी, मीडविले, यू. एस. ए. ; प्रोजेक्टेड बुक्स इं०, ऐन आर्बर, यू. एस. ए. ; सायर्स इं०, पोर्टलैंड, यू. एस. ए. ।

बहुमूल्य सुझावों के लिए कुमारी एस० रहमान, सहायक शिक्षा-सलाहकार, शिक्षा मंत्रालय ; श्री जे० एस० नन्दा, अनुभाग अधिकारी, यूनेस्को एकक, शिक्षा-मंत्रालय ; डाक्टर कल्याण गांगुली, कलकत्ता विश्वविद्यालय और आक्सफ़ोर्ड बुक कं० के श्री जी० एम० प्रिमलानी का लेखक आभारी है। कीस्टोन व्यू कं०, यू. एस. ए. के अध्यक्ष श्री जी० ई० हैमिल्टन को लेखक विशेषरूप से साभार स्मरण करता है, जिन्होंने तीव्रगामी विन्यासदर्शी के सम्बन्ध में कुछ बातों की व्याख्या पत्रों के माध्यम से लेखक को सुलभ की थी।

इस पुस्तक में अत्यधिक रुचि लेने के लिए लेखक एन० के० गोसाईं ऐण्ड कम्पनी के निदेशक श्री एन० के० गोसाईं के प्रति तथा उनके कर्मचारियों—विशेषकर श्री पी० घोष और श्री विजय बनर्जी के प्रति अपना धन्यवाद प्रकट करता है। पुस्तक की पाण्डुलिपि को ध्यानपूर्वक पढ़ने के लिए लेखक चिल्ड्रेन्स फ़िल्म सोसायिटी, नई दिल्ली के श्री आर० सी० कपूर को भी धन्यवाद देता है।

और अन्त में, इस पुस्तक के प्रणयन के सभी पक्षों में सहयोग देने के लिए लेखक अपनी पत्नी मुकुल चक्रवर्ती को धन्यवाद देता है।

नई दिल्ली,

जुलाई, १९६१

सु० के० चक्रवर्ती

प्राक्कथन

(प्रथम संस्करण)

दृश्य-श्रव्य शिक्षा का अभियान हमारे देश में अपेक्षाकृत नया है, किन्तु शिक्षण की उत्तम तकनीकों के विकास में इसका योगदान बहुमूल्य है। हाल के कुछ वर्षों में इसकी अवधारणा और परिधि विस्तृत हुई है। और नए-नए उपकरण प्रयुक्त होने लगे हैं। फिरभी, हमारे अधिकांश अध्यापकों को इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है कि शिक्षण प्रक्रिया को अधिक बोधगम्य, रोचक और परिपक्व बनाने में इन साधनों की सहायता से क्या किया जा रहा है या क्या किया जा सकता है। शिक्षा मंत्रालय के मेरे सम्मानित किन्तु अल्पकालीन सहयोगी श्री चक्रवर्ती की यह पुस्तक इस समूचे विषय क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करती है। इसमें दृश्य-श्रव्य शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है, उपयोग में आनेवाले विविध प्रकार के साधनों का, उनके विशिष्ट प्रयोगों का और अधिकतम लाभदायक ढंग से उनके उपयोग के लिए अपेक्षित स्थितियों का पूरा विवेचन किया गया है। यह पुस्तक विशेषज्ञों के लिए नहीं, सामान्य अध्यापकों के लिए है जो इस अभियान का सामान्य स्वरूप जानना-समझना चाहते हैं ताकि अपनी-अपनी संस्था में बुद्धिमानी के साथ वे इसे कार्यान्वित कर सकें। मुझे आशा है पुस्तक का समुचित स्वागत होगा।

पुस्तक की उत्कृष्ट रूप-सज्जा की मैं विशेषरूप से प्रशंसा करना चाहता हूँ। अनेक अनाकर्षक, रूखे प्रकाशनों के मरुस्थल में यह एक कमनीय उद्यान है।

शिक्षा-मंत्रालय,
नई दिल्ली,
१५ अप्रैल, १९५७

के० जी० सैयदैन
शिक्षा-सलाहकार,
भारत सरकार।

भूमिका और आभार

(प्रथम संस्करण)

भारत में शिक्षा के सभी स्तरों पर दृश्य-श्रव्य साधनों के अधिकाधिक प्रयोग की आवश्यकता और उसका औचित्य स्वीकार किया जा चुका है, किन्तु खेद है कि इन साधनों का समुचित उपयोग करनेवाले स्कूलों की संख्या अत्यल्प है। इसलिए, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत न केवल आवश्यक उपकरण की आपूर्ति की व्यवस्था रखी गई है, बल्कि दृश्य-श्रव्य शिक्षा-पद्धतियों में अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी है। विभिन्न दृश्य-श्रव्य साधनों का, विशेष कर उपलब्ध सरलतर साधनों का, सर्वाधिक सफल उपयोग करने का ढंग शिक्षकों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को ज्ञात होना ही चाहिए। यही ज्ञान उपलब्ध करने में उनकी सहायता करना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

शिक्षा में दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग के सम्बन्ध में लेखक द्वारा लीड्स विश्वविद्यालय में किए गए अध्ययन पर तथा शिक्षा-मंत्रालय द्वारा १९५४ में आयोजित दृश्य-श्रव्य शिक्षा विचार-गोष्ठी में दिए गए लेखक के भाषणों और प्रयोग-प्रदर्शनों पर इस पुस्तक की विषय सामग्री मुख्यतः आधारित है। इस पुस्तक में उल्लेखित अधिकांश साधनों का देश की विविध संस्थाओं—शिशु-शालाओं, बाल-विहारों, प्राथमिक, माध्यमिक और सामाजिक पाठशालाओं—में प्रयोग करके परखने के असामान्य अवसर उपलब्ध हुए हैं।

पुस्तक के लिए चित्रात्मक सामग्री उपलब्ध करने में प्राप्त सहायता के लिए लेखक भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय के प्रति तथा निम्नलिखित महानुभावों के प्रति अपना आभार प्रकट करता है : जेनरल रेडियो ऐण्ड अप्लाएंसेज़ (प्रा०) लि०, कलकत्ता के श्री पी० के० नायर; यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़, कलकत्ता के श्री एलेक्स ग्लीसन; ब्रिटिश इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़, कलकत्ता के श्री डी० सेन और श्रीमती मार्गरेट फ़्रेज़र-केसी; तथा सामाजिक शिक्षा-आयोजकों के प्रशिक्षण-केन्द्र, बेलुर मठ के वरिष्ठ प्रशिक्षक श्री ए० के० सील।

पुस्तक के परिशिष्ट के सम्बन्ध में शिक्षा-मंत्रालय के श्री पी० डी० खेरा द्वारा दिए गए बहुमूल्य सुझावों के लिए लेखक उनके प्रति आभारी है। श्री सरस्वती प्रेस लि० के

श्री जीवप्रिय गुह ने इस पुस्तक में जैसी रुचि ली और जो उपयोगी सुझाव दिए उनके लिए लेखक उन्हें धन्यवाद देता है।

और अन्त में, लेखक अपनी पत्नी मुकुल चक्रवर्ती, श्रम-अधिकारी, भारत सरकार को धन्यवाद देता है जिन्होंने श्रमिक-कल्याण सम्बन्धी दृश्य-श्रव्य सामग्री का संकलन करने में सहायता दी है और पाण्डुलिपि की तैयारी में हर स्तर पर अपने सुविचारित रचनात्मक सुझाव दिए हैं।

मार्च, १९५७

एस० के० सी०

विषय-सूची

प्रथम खण्ड : दृश्य-श्रव्य शिक्षा—सिद्धान्त पक्ष

दूसरा खण्ड : दृश्य-श्रव्य साधन

तीसरा खण्ड : *परिशिष्ट*

प्रथम खण्ड

दृश्य-श्रव्य शिक्षा

सिद्धान्त पक्ष

१ आधुनिक भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा का विकास

पूर्वप्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालयीय तथा प्रौढ़ सभी शिक्षास्तरों पर दृश्य-श्रव्य साधनों के अधिकाधिक प्रयोग की बात निस्सन्देह रूप से स्थापित हो चुकी है। स्वास्थ्य, कृषि, एवं सामुदायिक विकास जैसे अन्य क्षेत्रों में भी वे प्रभावकारी उपकरण के रूप में स्वीकार किये जा रहे हैं। अनेक अच्छे विद्यालयों में आजकल विज्ञप्तिफलक (बुलेटिन बोर्ड), पट फलक (फ्लैनेल बोर्ड), चलचित्र-प्रक्षेपी (फिल्म प्रोजेक्टर) और रेडियो यंत्र हैं। दिल्ली के कुछ विद्यालयों में तो टेलिविज़न यंत्र भी हैं। केन्द्रीय शासन द्वारा एक दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग और लोक संसूचना प्रतिष्ठान (इंस्टीट्यूट ऑफ़ मास कम्यूनिकेशन) की स्थापना की गई है। कुछ शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों ने दृश्य-श्रव्य शिक्षा को अनिवार्य विषयों की सूची में रखा है और सामान्य तथा वैज्ञानिक दृश्य-श्रव्य साधनों के उत्पादन की दिशा में भी प्रयत्न किया है।

दृश्य-श्रव्य शिक्षा के क्षेत्र में हाल ही में हमारे देश में जो विकास हुआ है उसकी चर्चा संक्षेप में यहाँ की जा सकती है। जनवरी सन १९४८ में हुए अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन में पहली बार इस विषय पर विचार किया गया था। इसके कुछ ही महीनें बाद भारत सरकार ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर दृश्य-शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए ऐक समिति नियुक्त की थी। अप्रैल सन १९४९ में एक प्रेस नोट जारी किया गया था जिसमें शिक्षापरक फिल्मों के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया गया था। व्यक्तिगत

संस्थाओं द्वारा लगभग १९५० चलचित्र संस्थायें और दृश्य शिक्षा-केन्द्र भी संगठित किए गए थे। ग्रेट ब्रिटेन की 'नेशनल कमिटी फ़ार विज़ुअल एड्स इन एजुकेशन' (शिक्षा में दृश्य-साधनों की राष्ट्रीय समिति) की पत्रिका 'विज़ुअल एजुकेशन' में सितम्बर, सन् १९५० में पश्चिम बंगाल के गोसाबा दृश्य शिक्षा-केन्द्र के कार्यकलापों का विवरण प्रकाशित किया गया था। उसमें लिखा था: "स्वर्गीय सर डी० एम० हैमिल्टन द्वारा बंगाल में बनाई गई कृषि-जागीर के मुख्यालय गोसाबा में हाल हो में एक दृश्य शिक्षा-केन्द्र चालू किया गया है जिसमें ब्रिटेन, अमरीका और भारत की लगभग ६०,००० फुट लम्बी फिल्में चार महिनों में दिखाई जा चुकी हैं। प्रदर्शित फिल्मों में 'फेनलैंड्स', 'होम ऐण्ड स्कूल', 'थोर चिल्ड्रेन ऐण्ड यू', 'इन्स्ट्रूमेंट्स आफ़ द आर्केस्ट्रा' और 'स्टुडेंट नर्स' शामिल थीं। दृश्य शिक्षा-केन्द्र को आशा है कि शीघ्र ही वह स्कूली बच्चों के लिए भूगोल, विज्ञान और स्वास्थ्यविज्ञान सम्बन्धी फिल्मों की व्यवस्था कर सकेगा।



गोसाबा दृश्य शिक्षा-केन्द्र में स्त्रियों के लिए एक विशिष्ट प्रदर्शन के बाद। (केन्द्र का संगठन लेखक द्वारा सन् १९४९ में किया गया था।)

इस जागीर की तीस हज़ार एकड़ ज़मीन पर लगभग पाँच हज़ार परिवार बसे हुए हैं। इनके बच्चों को जागीर में स्थापित कई जूनियर स्कूलों में तथा एक केन्द्रीय हाई स्कूल में शिक्षा दी जाती है। पर बच्चों के माता-पिता की शिक्षा एक कठिनतर समस्या है। उनके शिक्षण की व्यवस्था अनिवार्यतः इस तरह की जानी चाहिए ताकि उनके व्यवसाय में अथवा घरेलू कर्तव्यों में कोई खलल न पड़े; और शिक्षा इतनी आकर्षक मनोरंजक हो कि अपने

खेतों में दिनभर परिश्रम करने के बाद भी पढ़ने में उनका मन लगे। अभी तक दृश्य-साधन ही इस समस्या के सर्वाधिक सफल समाधान सिद्ध हुए हैं। स्त्रियों के लिए नियमित रूप से विशिष्ट प्रदर्शनों की व्यवस्था की जाती है। ऐसे प्रदर्शनों से पहले प्रायः व्याख्यात्मक वार्ताएँ होती हैं, क्योंकि दर्शकों में से बहुत ही कम लोगों को अंगरेज़ी का ज्ञान होता है।"

दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद्—पहली बैठक

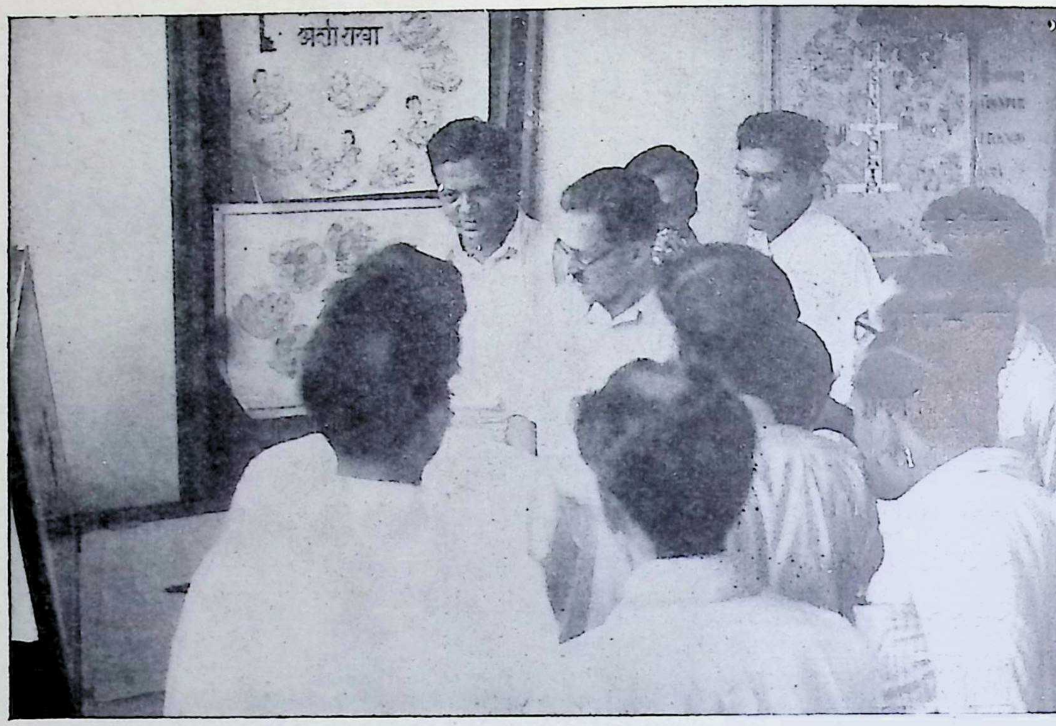
विख्यात दृश्य-श्रव्य विशेषज्ञ प्रो० टी० एल० ग्रीन के भारत आगमन के अवसर पर सन् १९५१ में दृश्य-श्रव्य शिक्षा सम्बन्धी एक अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन ने दृश्य-श्रव्य शिक्षा के विविध पहलुओं पर विचार किया और इसके भावी विकास का मार्ग स्पष्ट किया। सन् १९५२ में दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् स्थापित की गई। परिषद् की पहली बैठक मई १९५३ में हुई। इस बैठक की महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशों में से कुछ ये थीं: राज्यों में राज्य-दृश्य-परिषदों की स्थापना की जाए; भारत सरकार के फिल्म-प्रभाग द्वारा शिक्षा संबंधी फिल्मों का निर्माण किया जाए, अप्रक्षेपी दृश्य-साधनों का उत्पादन किया जाए और स्कूलों में श्रव्य-साधनों का प्रयोग किया जाए।

भारत सरकार द्वारा आयोजित दो विचार-गोष्ठियाँ

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दृश्य-श्रव्य-योजना को कार्यान्वित करते हुए दो विचार-गोष्ठियों का आयोजन किया गया। पहली विचार-गोष्ठी शिक्षा मंत्रालय द्वारा दिल्ली में सन् १९५४ में आयोजित की गई थी। विभिन्न राज्य सरकारों के तीस शिक्षाविदों ने दृश्य-श्रव्य शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार पक्षों का अध्ययन एवं उन पर विचार-विमर्ष किया। दूसरी विचार-गोष्ठी का आयोजन कोलंबो योजना के अधीन भारत और आस्ट्रेलिया की सरकारों द्वारा सम्मिलित रूप से इसी आधार पर किया गया था। यह विचार-गोष्ठी नवम्बर १९५५ में लखनऊ में हुई थी।

दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद्—दूसरी बैठक

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के फलस्वरूप दृश्य-श्रव्य शिक्षा का विकास भारत में मात्रा और गुणवत्ता दोनों ही दृष्टियों से बहुत अधिक हुआ हैं। इस योजना में अधिक उपकरणों की आपूर्ति तथा फिल्में और फिल्मपट्टियाँ रखनेवाले पुस्तकालयों के विस्तार की ही परियोजनाएँ



सन् १९५४ में आयोजित दृश्य-श्रव्य शिक्षा विचार-गोष्ठी में श्री के० जी० सैयदैन को प्रशिक्षणार्थियों द्वारा तैयार किए गए चार्ट और पोस्टर दिखाते हुए लेखक।
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के सौजन्य से)



सन् १९५४ में आयोजित दृश्य-श्रव्य शिक्षा विचार-गोष्ठी में सम्मिलित होनेवाले अध्यापक और प्रशिक्षणार्थी।
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के सौजन्य से)

शामिल नहीं थी, बल्कि शिक्षा के सरलतर साधन निर्मित करने में अध्यापकों को प्रशिक्षित करने तथा उनका और अन्य वैज्ञानिक साधनों का ठीक-ठीक उपयोग करने का प्रशिक्षण देने की भी परियोजनाएँ सम्मिलित थीं।

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अपर सचिव श्री के० जी० सैयदैन की अध्यक्षता में आयोजित मई १९५५ की अपनी दूसरी बैठक में दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दृश्य-श्रव्य शिक्षा के विकास की निम्नलिखित योजनाओं पर विचार किया और उनका अनुमोदन किया :—

(१) राज्यों में राज्य-दृश्य-श्रव्य-परिषदों की स्थापना करना
(२) फिल्म और फिल्मपट्टि-पुस्तकालयों की राज्यवार स्थापना करना
(३) अध्यापक प्रशिक्षण-संस्थानों में दृश्य-श्रव्य शिक्षा का प्रारंभ करना
(४) हाई/हायर सेकेंड्री स्कूलों को रेडियो-सेट प्रदान करना
(५) सभी ज़िलों को दृश्य-श्रव्य शिक्षा की चल-गाड़ियाँ प्रदान करना
(६) दृश्य-श्रव्य शिक्षा सम्बन्धी एक पत्रिका का प्रकाशन करना
(७) ३५ मिलीमीटर की फिल्मपट्टियों का निर्माण करना
(८) कुछ चुनी हुई संस्थाओं के सहयोग से शिक्षा सम्बन्धी फिल्मों के मूल्यांकन में शोध करना
(९) दृश्य-श्रव्य साधनों और उपकरणों के उत्पादन में व्यक्तिगत प्रयास को प्रोत्साहन देना

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत दृश्य-श्रव्य शिक्षा

तृतीय पंचवर्षीय योजना के लिए बनाई गई स्कीमों को चार शीर्षों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

१। प्रशिक्षण योजनाएँ
२। प्रक्षेपण योजनाएँ
३। शोध और मूल्यांकन योजनाएँ
४। विस्तार योजनाएँ

यदि अध्यापकों द्वारा दृश्य-श्रव्य साधनों का और दृश्य-श्रव्य सामग्री का कारगर उपयोग किया जाना है तो यह अनिवार्य है कि दृश्य-श्रव्य शिक्षा का प्रशिक्षण उन्हें सेवाकाल प्रारम्भ होने के पहले या सेवाकाल के दौरान दिया जाय। जो सामान्य और सरल दृश्य-श्रव्य साधन शिक्षण में अत्यधिक सहायक होते हैं, उन्हें कम खर्च में तैयार करने का कौशल भी उन्हें प्राप्त होना चाहिए।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था व्यापक पैमाने पर की गई है। दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान द्वारा शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था की जाएगी।

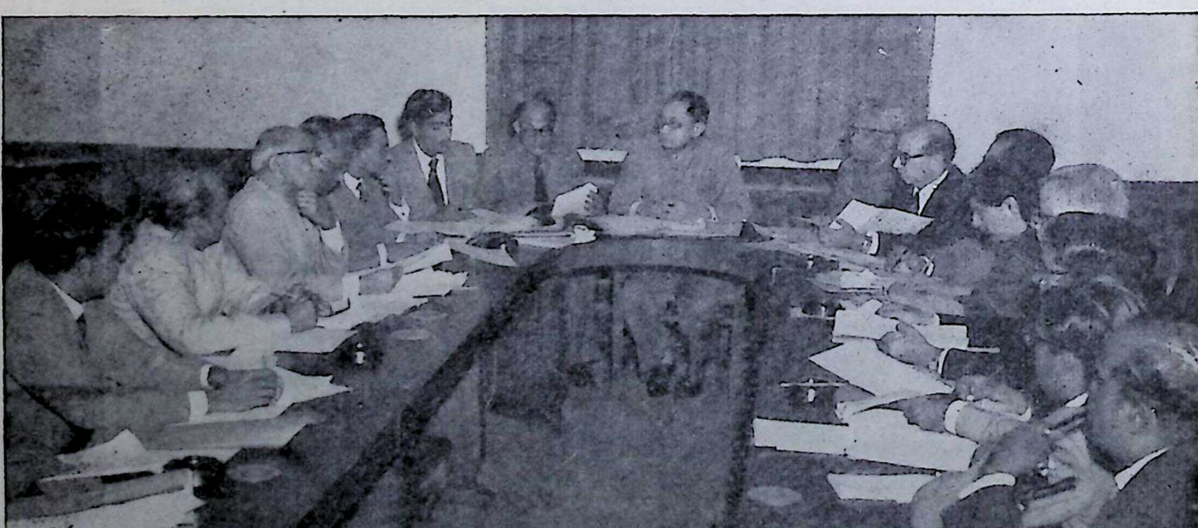
तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बनाई गई उत्पादन योजनाओं में ऐसी स्लाइडों, स्लाइडपुस्तिकाओं, फिल्मपट्टियों तथा १६ मि० मी० की फिल्मों का निर्माण शामिल किया गया है जो कक्षाओं में प्रयोग के लिए उपयुक्त हों।

शोध और मूल्यांकन योजनाओं के अन्तर्गत पहले से प्रयोग में आनेवाले दृश्य-श्रव्य साधनों और सामग्री का व्यवस्थित मूल्यांकन किया जाएगा।

विस्तार योजनायें केन्द्रीय फिल्म पुस्तकालय को और अधिक विस्तृत बनाने तथा दृश्य-श्रव्य शिक्षा के सभी पहलुओं पर उपयोगी साहित्य का व्यापक प्रकाशन करने से सम्बन्धित हैं।

दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् की और चार बैठकें

परिषद् की तीसरी बैठक जनवरी १९५९ में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री० आर० पि० नायक, आई. सि. एस., की अध्यक्षता में नई दिल्ली में हुई। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शामिल एतद्सम्बन्धी योजनाओं के कार्यान्वयन के विषय में राज्य



दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् की तीसरी बैठक की अध्यक्षता करते हुए श्री आर० पी० नायक [मध्यमें]
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के सौजन्य से)

सरकारों की रिपोर्टों पर परिषद् ने विचार किया। जिन राज्य सरकारों ने अभी तक राज्य दृश्य-श्रव्य परिषदें स्थापित नहीं की थीं उन्हें अविलम्ब ऐसी परिषदें स्थापित करने लिए कहा गया।

परिषद् ने दृश्य-श्रव्य शिक्षा का एक राष्ट्रीय संस्थान स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया। यह संस्थान दृश्य-श्रव्य सामग्री का निर्माण करने और उसका समुचित उपयोग करने में तथा इस सामग्री की प्रभविष्णुता के विषय में मूल्यांकन और शोध करने में अध्यापकों को प्रशिक्षित करेगा।

परिषद् ने निश्चय किया कि दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् की एक स्थायी परामर्शदात्री समिति बनाई जाय जिसकी सदस्य संख्या सात हो। समिति की बैठक तीन महीनों में एक बार हो।

पिछली बैठक में की गई सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करते हुए जो प्रगति हुई उस पर विचार करने के लिए परिषद् की चौथी बैठक दिसम्बर, १९५९ में हुई।

परिषद् की दो और बैठकें नई दिल्ली में मई, १९६१ में और दिसम्बर, १९६३ में हुईं। पहली बैठक की अध्यक्षता श्री आर० पि० नायक ने और दूसरी बैठक की अध्यक्षता श्री आर० आर० सिंह ने की। दोनों अध्यक्ष उस समय शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के संयुक्त सचिव थे।

इन बैठकों में की गई महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशें इस प्रकार थीं:

(१) शैक्षणिक साधनों के थोक उत्पादन का काम ऐसे गैर-सरकारी उत्पादकों को सौंपा जाए जिनकी दरें न्यूनतम हों, ताकि इन साधनों को सस्ती दरों पर वितरित किया जा सके।

(२) दृश्य-श्रव्य साधनों के उत्पादन में राष्ट्रीय परिषद् को परामर्श और सहायता देने के लिए विशेषज्ञों की एक उपसमिति बनाई जाए।

(३) विद्यार्थियों से थोड़ा—थोड़ा चन्दा वसूल करके देश के सभी स्कूलों के लिए दृश्य-श्रव्य साधन उपलब्ध कराने की सम्भावनाओं पर विचार किया जाए।

(४) शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के चारों क्षेत्रिय प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षण-सह-उत्पादन केन्द्र खोले जाएँ।

(५) सन् १९६१-६२ के दौरान राष्ट्रीय संस्थान में आयोजित यूनैस्को की कर्मशाला की पद्धति पर सस्ते दृश्य-साधनों के उत्पादन के लिए अल्पावधि प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए जाएँ।

(६) दृश्य-श्रव्य उपकरण की देखभाल और मरम्मत के सम्बन्ध में तकनीकी प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए जाएँ।

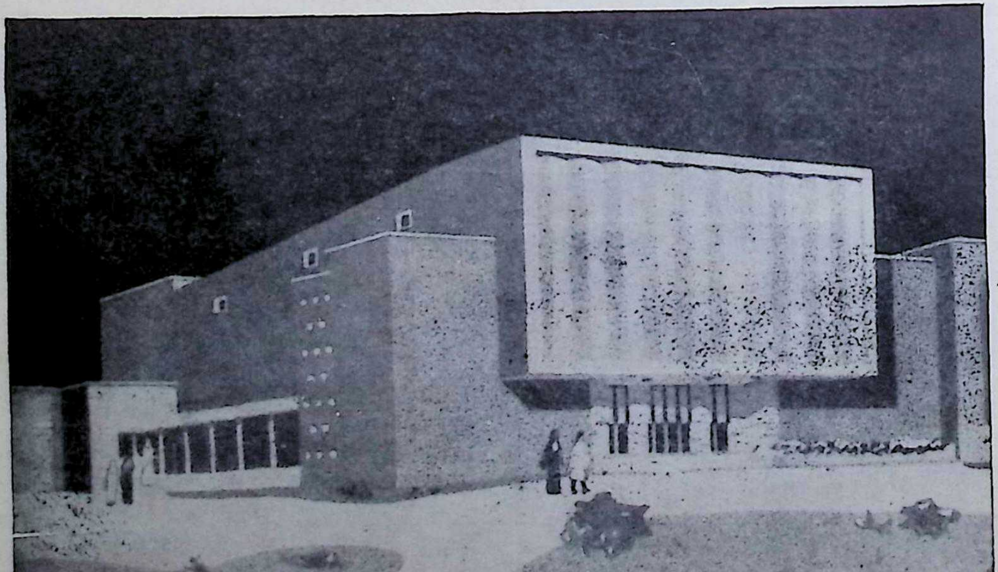
(७) विभिन्न वैज्ञानिक प्रकरणों पर फिल्मपट्टियों के उत्पादन में राष्ट्रीय संस्थान को परामर्श देने के लिए एक उपसमिति बनाई जाए।

(८) विश्वविद्यालयों में दृश्य-श्रव्य विभाग स्थापित करने के सम्बन्ध में उनसे सम्पर्क स्थापित किया जाए।

तत्कालीन समितियों और परिषदों की उपयुक्तता का जो निर्णय शिक्षा मंत्रालय ने लिया था उसके परिणामस्वरूप मई, १९६४ में दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् भंग कर दी गई।

दृश्य-श्रव्य शिक्षा का राष्ट्रीय संस्थान (अब शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग' नाम से अभिहित)

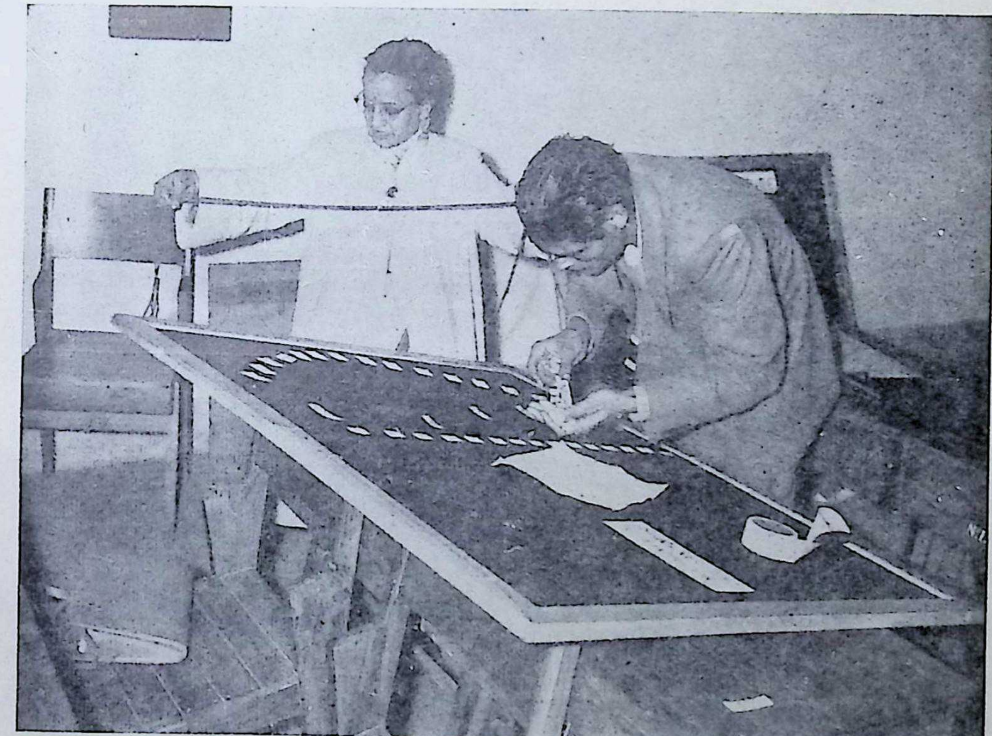
दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान ने पहली अप्रैल १९५९ से अपना कार्य नई दिल्ली स्थित अपने नए भवन में प्रारम्भ किया। संस्थान ने जनवरी १९६० में दृश्य-श्रव्य शिक्षा का पहला अल्पावधि प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चालू किया। केन्द्रीय शिक्षामंत्री डाक्टर के० एल० श्रीमाली ने इस पाठ्यक्रम का उद्घाटन किया। इस में कुल २७ प्रशिक्षणार्थियों ने भाग लिया। अधिकांश प्रशिक्षणार्थी राज्यों के शिक्षा-विभागों द्वारा भेजे गए थे। पाठ्यक्रम में भाषण, प्रदर्शन, प्रायोगिक कार्य और क्षेत्र-पर्यटन शामिल थे।



दृश्य-श्रव्य शिक्षा का राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली। (संस्थान के सौजन्य से)

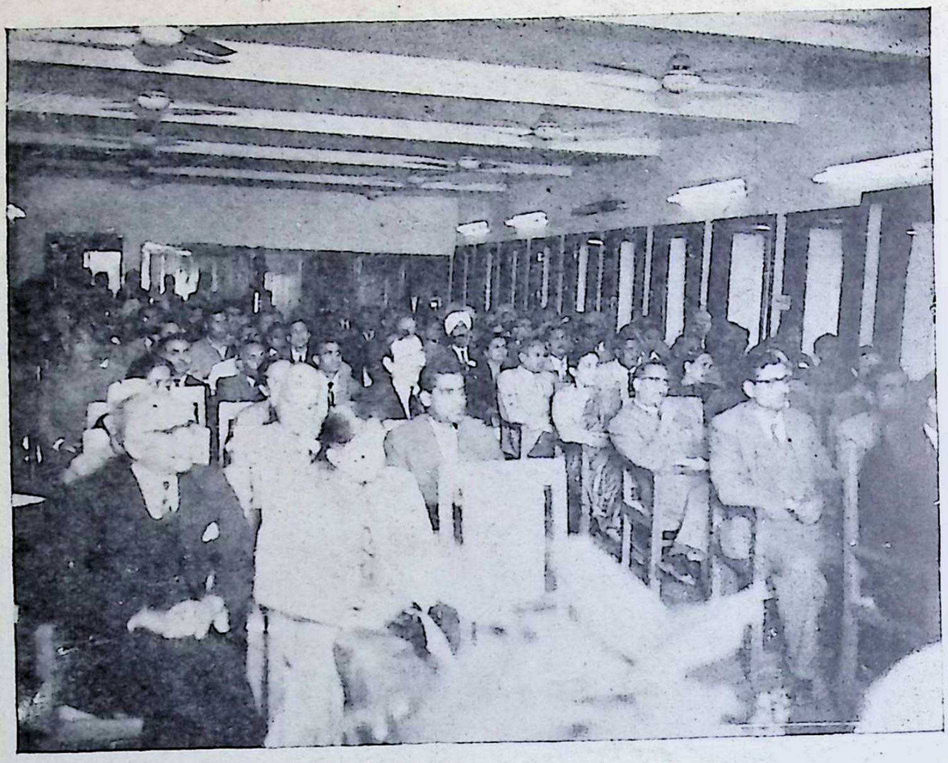
इस प्रथम प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के बाद शीघ्र ही विस्तार-सेवा विभाग के समन्वयकर्त्ताओं के लिए संस्थान द्वारा दूसरा पाठ्यक्रम चालू किया गया जिसमें उन्हें दृश्य-श्रव्य साधनों का ठीक-ठीक उपयोग करना सिखाया गया। चौबीस समन्वयकर्ताओं ने यह प्रशिक्षण प्राप्त किया।

दृश्य-श्रव्य शिक्षा सम्बन्धी दूसरा अल्पावधि प्रशिक्षण पाठ्यक्रम जुलाई सितम्बर १९६० की अवधि में चलाया गया। देश के विभिन्न राज्यों से आए हुए कुल बत्तीस प्रशिक्षणार्थियों ने इसमें भाग लिया। दृश्य-श्रव्य शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्ष पर उन्हें ४५ भाषण दिए गए। अप्रक्षेपी दृश्य-श्रव्य साधनों के निर्माण तथा वैज्ञानिक साधनों के संचालन का प्रायोगिक प्रशिक्षण प्राप्त करने में उन्होंने लगभग २०० घण्टे काम किया।

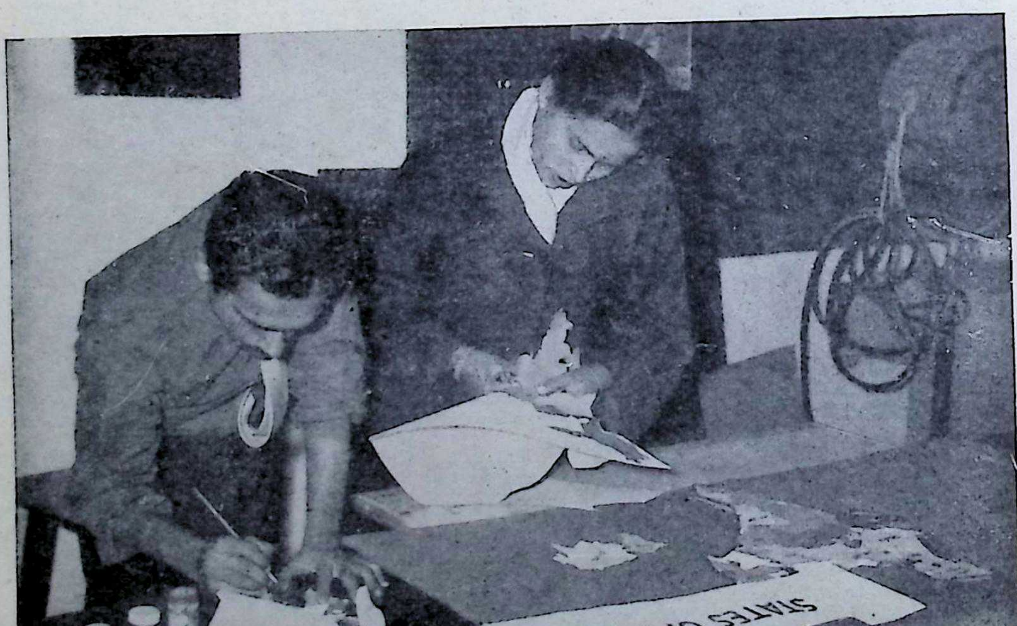


दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान में दृश्य-श्रव्य साधन तैयार करते हुए प्रशिक्षणार्थी।
(संस्थान के सौजन्य से)

दूसरे अल्पावधि पाठ्यक्रम के बाद संस्थान ने, दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् के सुझाव के अनुसार, समय-समय पर दृश्य-श्रव्य शिक्षा के अनेक पाठ्यक्रम आयोजित किए जिनमें दृश्य-श्रव्य उपकरण की देखभाल और प्रयोग तथा दृश्य-श्रव्य साधनों और सामानों के सस्ते उत्पादन का प्रशिक्षण शामिल था।

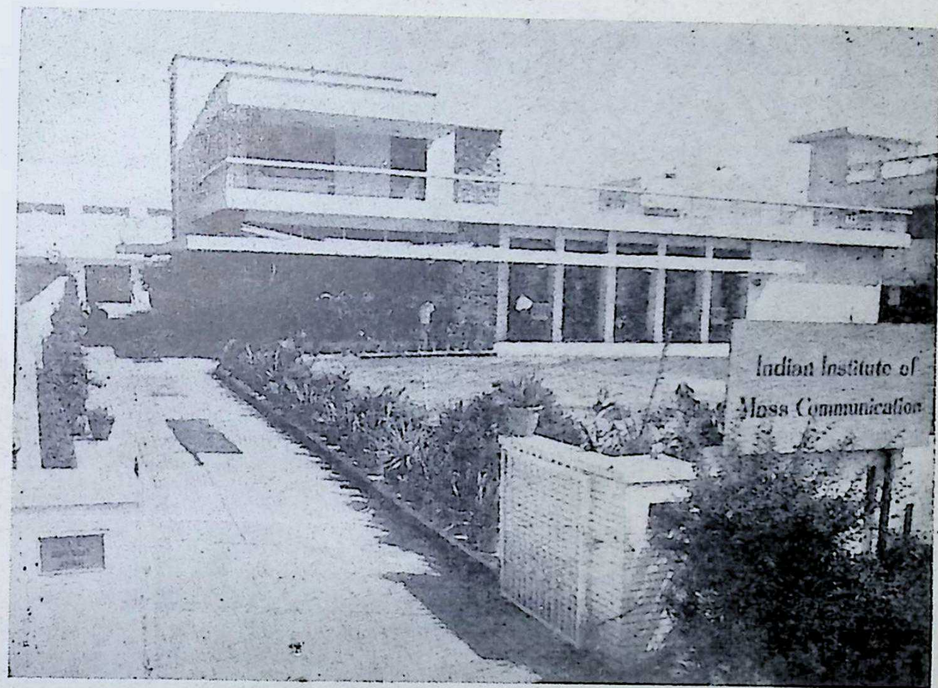


दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान में प्रथम अल्पावधि प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का उद्घाटन ।
(संस्थान के सौजन्य से)



दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान में दृश्य-श्रव्य साधन तैयार करते हुए प्रशिक्षणार्थी ।
(संस्थान के सौजन्य से)

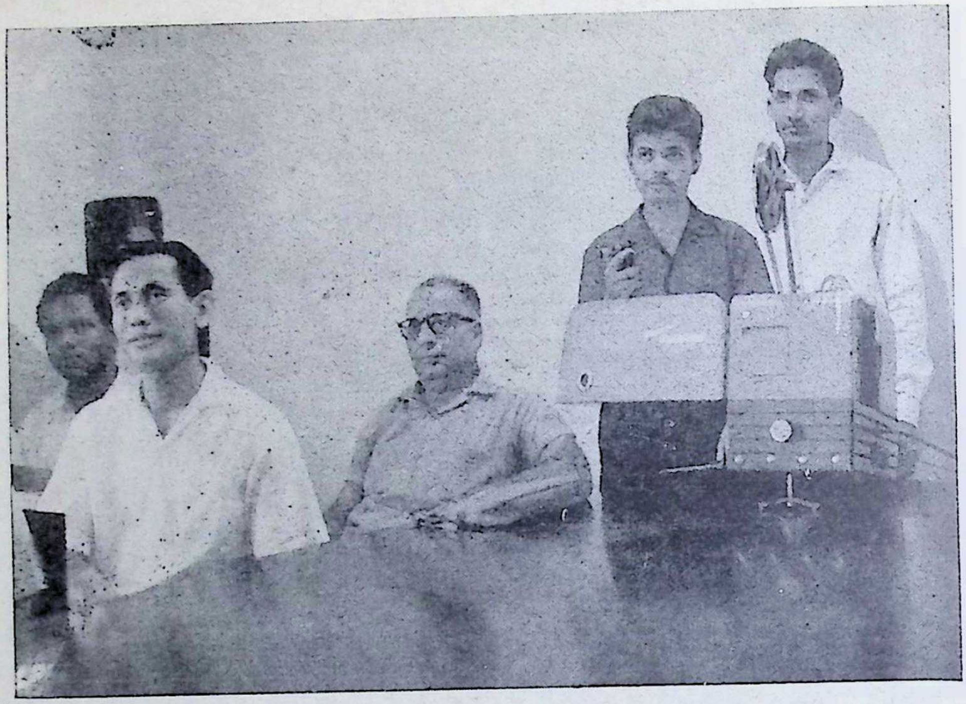
शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के क्षेत्रीय शैक्षिक महाविद्यालयों के सोलह शिक्षकों के लिए पिछले शैक्षिक-सत्र में इस विभाग ने दृश्य-श्रव्य शिक्षा का एक पाठ्यक्रम आयोजित किया था। नौ महीने की अवधि का दृश्य-श्रव्य शिक्षा डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी आयोजित किया गया, जो अपने ढंग का पहला पाठ्यक्रम था। इस पाठ्यक्रम में दस प्रशिक्षार्थी शामिल हुए। इनमें अधिकांश विभिन्न राज्यों के दृश्य-श्रव्य शिक्षा अधिकारी थे।



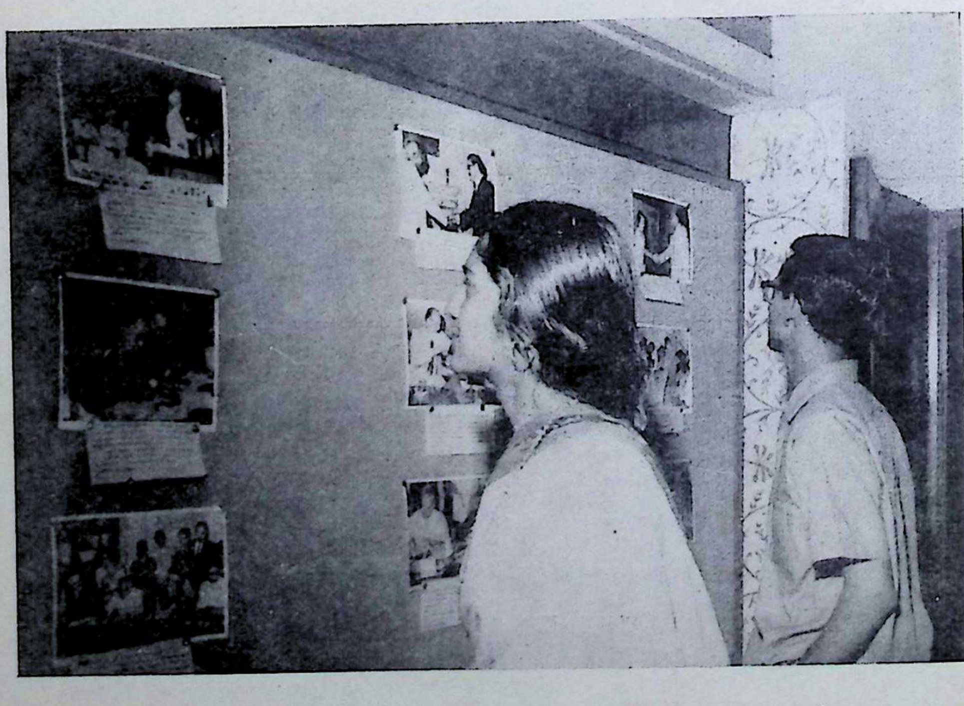
रिंगरोड, नई दिल्लीस्थित भारतीय सामूहिक संचार संस्थान।
(संस्थान के सौजन्य से)

भारतीय सामूहिक संचार संस्थान

राष्ट्रीय विकास में दृश्य-श्रव्य साधनों के महत्त्व को समझते हुए सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने अगस्त, १९६५ में भारतीय सामूहिक संचार संस्थान नाम से दृश्य-श्रव्य शिक्षा का एक संस्थान नई दिल्ली में स्थापित किया। केन्द्रीय सरकार तथा राज्य-सरकारों में, सरकारी क्षेत्र के उद्योगों में तथा अन्य सांविधिक संगठनों में काम करनेवाले सूचना-कर्मचारियों के लिए आवश्यक कौशल की शिक्षा तथा अनुभव यह संस्थान प्रदान करता है। समिति के रूप में इस संस्थान का पंजीयन कर लिया गया है। इसका प्रशासन एक कार्य-परिषद् द्वारा किया जाता है। सूचना एवं प्रसारण मंत्री इस परिषद् के अध्यक्ष हैं।



एक फिल्म देखते हुए भारतीय सामूहिक संचार संस्थान के प्रशिक्षणार्थी। एक प्रशिक्षणार्थी चालू टिप्पणी कर रहा है। (संस्थान के सौजन्य से)



भारतीय सामूहिक संचार संस्थान के प्रशिक्षणार्थी आधुनिकतम समाचार-चित्रों का निरीक्षण करते हुए। (संस्थान के सौजन्य से)

यह संस्थान लाजपतनगर से आगे रिंग रोड पर स्थित है। कुछ समय बाद यह नेहरू विश्वविद्यालय के अहाते में अपने ही भवन में चला जाएगा और विश्वविद्यालय से संबद्ध हो जाएगा।

राष्ट्रीय विकास में सूचना-चित्रों के महत्त्व पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन इस संस्थान द्वारा पिछली मई में किया गया था। इस गोष्ठी ने सामूहिक-संचार फिल्मों के समुचित उपयोग की महत्ता पर बल दिया और उसे "देश के सामाजिक और आर्थिक विकास की अनिवार्य आधार भूमि" बताया। अशिक्षित जन-समाज की शिक्षा के समुचित उपयोग की महत्ता पर भी बल दिया गया और यह सुझाव दिया गया कि अंततोगत्वा समूचे देश में बहुसंख्यक सचल और स्थायी फिल्म-केन्द्र कायम करने की अपेक्षा टेलीविज़न अधिक सस्ता होगा या नहीं, इसकी पूरी जाँच की जाए।

विचार-गोष्ठी में एक और महत्त्वपूर्ण बात पर बल दिया गया। कहा गया कि इस क्षेत्र में सरकारी प्रयत्नों के साथ गैर-सरकारी या निजी क्षेत्र को भी शामिल करना ज़रूरी है। सुझाव दिया गया कि बड़े बड़े व्यवसायिक और औद्योगिक संगठनों से अपील की जाए कि प्रौढ़ जनसमाज की शिक्षा के लिए अधिकाधिक फिल्मों के निर्माण में प्रोत्साहन और योग दें। यह भी सिफ़ारिश की गई कि छोटी-छोटी फिल्मों के निर्माण में गैर-सरकारी फिल्म-निर्माताओं को काफ़ी अधिक भाग देना चाहिए और इसके लिए आवश्यक उपकरण तथा कच्चे माल के लिए उन्हें वांछित विदेशी मुद्रा दी जानि चाहिए।

नीचे लिखे वर्गों की सुनियोजित फिल्मों के निर्माण की आवश्यकता भी इस गोष्ठी में अनुभव की गई :

(१) गावों में दिखाने के लिए खेती-बारी का काम सिखानेवाली फिल्में।
(२) कक्षा में विशिष्ट प्रकरणों के शिक्षण में सहायता देनेवाली शिक्षणात्मक फिल्में।
(३) बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करनेवाली फिल्में।

देश में बननेवाले सूचना-चित्रों के अधिक व्यापक और पूर्ण उपयोग के लिए इस गोष्ठी ने नीचे लिखे उपायों को अपनाने की सिफ़ारिश की :

(१) एक कारगर अ-रंगमंचीय प्रदर्शन शृंखला कायम की जाए जिसमें फ़ैक्ट्रियाँ, अस्पताल, व्यापारिक संस्थान आदि शामिल किए जाएँ।
(२) छोटे कस्बों और बड़े-बड़े गाँवों में १६ मि० मी० के थिएटर खोले जाएँ।

(३) प्रत्येक ज़िले में फिल्म-पुस्तकालय स्थापित किया जाए।

(४) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के बड़े कक्षों में फिल्में दिखाई जाएँ।

(५) प्रक्षेपी उपकरण की देखभाल और मरम्मत की सुविधाओं की उचित व्यवस्था की जाए।

सूचना-चित्रों के वैज्ञाणिक मूल्यांकन, फिल्मों का उपयोग करनेवालों के उपयुक्त प्रशिक्षण और फिल्म-निर्माताओं के लिए प्रशिक्षण की अधिक सुविधाएँ देने की आवश्यकता के संबंध में भी गोष्ठी ने सिफ़ारिश की थी।

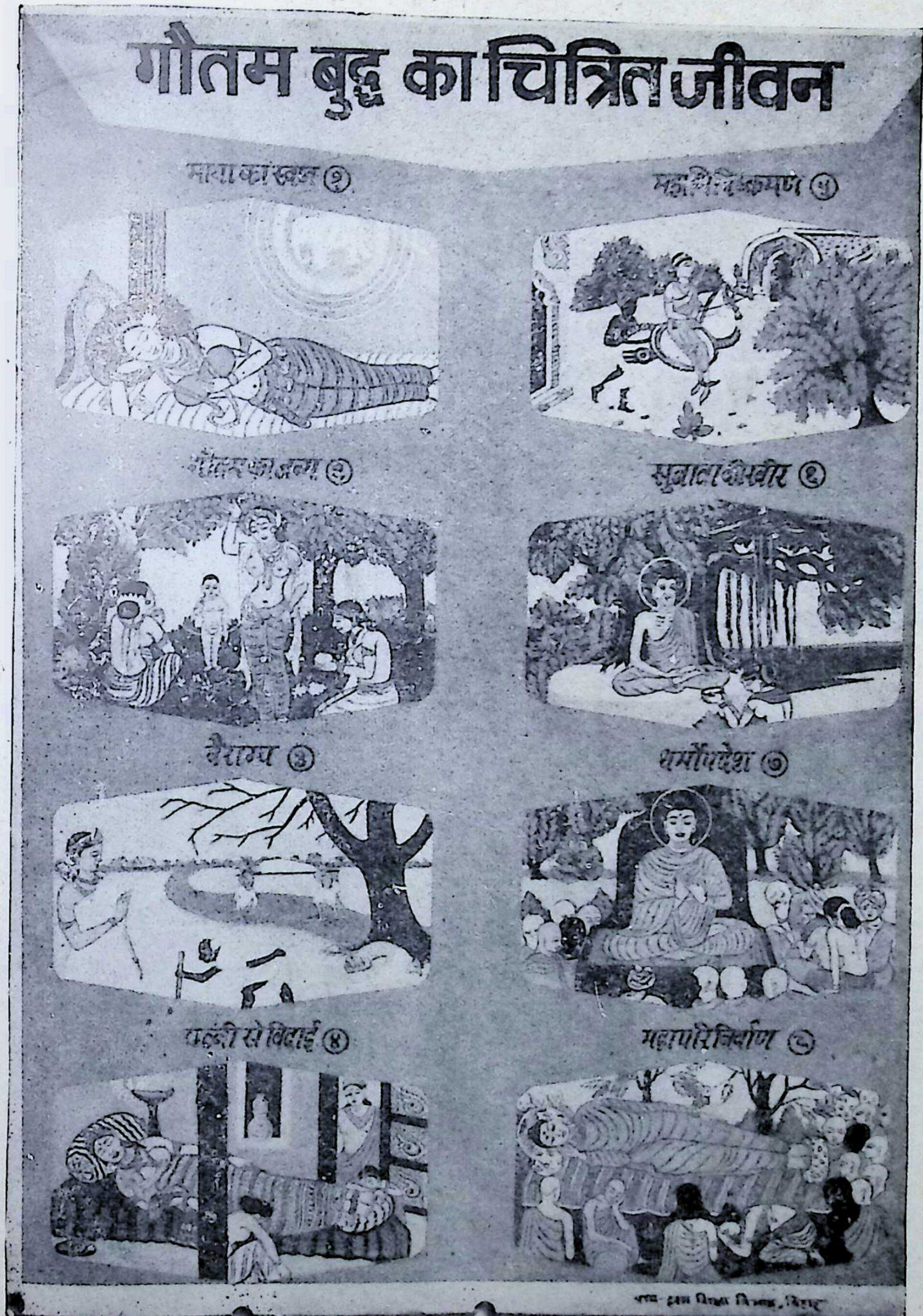
आशा है कि विचार-गोष्ठी की इन महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशों को शीघ्र कार्यान्वित कराने के लिए सामूहिक संचार संस्थान कारगर क़दम उठाएगा।

भारत के विभिन्न राज्यों में दृश्य-श्रव्य शिक्षा की प्रगति

द्वितीय तथा तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं के फलस्वरूप भारत के अधिकांश राज्यों ने दृश्य-श्रव्य शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी प्रगति की है। अधिकांश राज्यों द्वारा फिल्म व फिल्मपट्टी-पुस्तकालय स्थापित किए जा चुके हैं। कुछ राज्यों द्वारा राज्य दृश्य-श्रव्य शिक्षा परिषदों की भी स्थापना की जा चुकी है।

बिहार राज्य में फिल्म-पुस्तकालय के साथ साथ एक कर्मशाला भी स्थापित की गई है। चार्ट, पोस्टर, नमूने स्लाइडें और फिल्मपट्टियों जैसे कमखर्चवाले दृश्य-श्रव्य साधनों के उत्पादन के लिए ही यह कर्मशाला चालू की गई है। इस कर्मशाला द्वारा निर्मित उत्तम कोटि के कुछ चार्ट, पोस्टर और चित्र राज्य के स्कूलों और सामाजिक शिक्षा केन्द्रों में बाँटे जा चुके हैं। राज्य के फिल्म-पुस्तकालय की फिल्में शैक्षणिक फिल्मों के अधिकृत प्रदर्शन केन्द्रों को तथा ऐसी उन अन्य संस्थाओं को उधार दी जाती हैं जिनके पास अपने प्रक्षेपी होते हैं। राज्य सरकार ने राज्य की विभिन्न संस्थाओं को बड़ी संख्या में रेडियोसेट, स्लाइडें तथा स्लाइड प्रक्षेपी प्रदान की हैं।

उड़ीसा राज्य भी दृश्य-श्रव्य शिक्षा के क्षेत्र में बहुत काफ़ी कार्य कर रहा है। दृश्य-श्रव्य शिक्षा की एक राज्य परिषद् का गठन किया गया है और एक फिल्म-पुस्तकालय की स्थापना की जा चुकी है। राज्य के विभिन्न भागों के सामुदायिक विकास-क्षेत्रों में उपयोग के लिए उपयोगी विषयों पर पोस्टर, फिल्मपट्टियाँ और ग्रामोफोन रिकार्ड बड़ी संख्या में तैयार किए गए हैं। विभाग के चल-यानों द्वारा सभी ज़िलों के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में फिल्मों और नाटकों के प्रदर्शन आयोजित किए जाते हैं।



बिहार की दृश्य-श्रव्य-कर्मशाला द्वारा महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित इस उत्कृष्ट चित्र का प्रभावपूर्ण उपयोग कक्षाओं में किया जा सकता है।
(बिहार के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग के सौजन्य से)

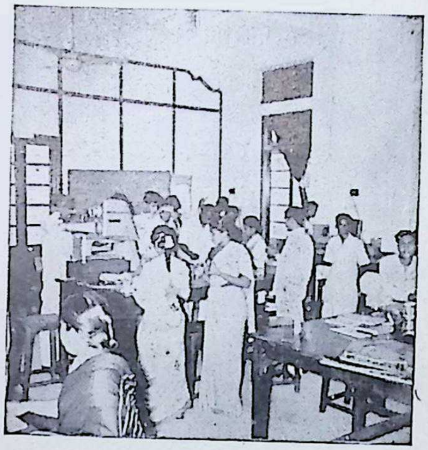


बिहार की दृश्य-श्रव्य-कर्मशाला द्वारा स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में बनाया गया एक पोस्टर। (बिहार के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग के सौजन्य से)



बिहार के विभिन्न केन्द्रों में बच्चों के लिए शैक्षणिक विषयों पर फिल्मों के प्रदर्शन नियमित रूप से आयोजित किए जाते हैं।
(बिहार के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग के सौजन्य से)

मद्रास में शिक्षा विभाग ने दृश्य-श्रव्य साधनों के निर्माण और उपयोग में अध्यापकों को प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन किया है। माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए दृश्य-श्रव्य शिक्षा पर अल्पावधि पाठ्यक्रमों का भी आयोजन 'त्यागराजनगर कालेज आफ़ प्रिसेप्टर्स' के विस्तार-सेवा विभाग द्वारा किया गया था। प्रशिक्षार्थियों ने इन पाठ्यक्रमों में सामान्य विज्ञान के शिक्षण में उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार की स्लाइडें, फिल्मपट्टियाँ और नमूने के केस तैयार किए।



मदुराई के 'त्यागराज नगर कालेज आफ़ प्रिसेप्टर्स' के विस्तार-सेवा विभाग द्वारा आयोजित दृश्य-श्रव्य शिक्षा पाठ्यक्रम में दृश्य-श्रव्य साधन तैयार करते हुए प्रशिक्षणार्थी। (त्यागराज नगर कालेज के सौजन्य से)

महाराष्ट्र में दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग ने माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए अनेक अल्पावधि पाठ्यक्रम आयोजित किए जिनमें दृश्य-श्रव्य साधनों के निर्माण और ठीक-ठीक उपयोग का प्रशिक्षण दिया गया। कई स्थानों पर विचार-गोष्ठियाँ और प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की गईं। राज्य के फिल्म-पुस्तकालय में फिल्में और फिल्मपट्टियाँ बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। शिक्षा-विभाग द्वारा कई नई फिल्में और फिल्मपट्टियाँ तैयार भी की गई हैं।

हिमाचल प्रदेश में शिक्षा-विभाग के दृश्य-श्रव्य अनुभाग का दायित्त्व सँभालने के लिए एक दृश्य-श्रव्य शिक्षाधिकारी की नियुक्ति की गई है। इस अनुभाग ने राज्य के हाइस्कूलों के अध्यापकों के लिए अनेक प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन किया। इन पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षार्थियों को विभिन्न प्रकार के अप्रक्षेपी साधनों के निर्माण का प्रशिक्षण दिया गया। वैज्ञानिक उपकरण से काम लेने का प्रशिक्षण भी उन्हें दिया गया। एक दृश्य-श्रव्य पुस्तकालय भी खोला गया है। नाहन और सोलन के प्रशिक्षण महाविद्यालयों को फिल्म प्रक्षेपी, फिल्मपट्टी प्रक्षेपी और पारचित्रदर्शी दिए गए हैं। अनेक हाईस्कूलों और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को रेडियो सेट दिए गए हैं।

मध्यप्रदेश में शिक्षा निदेशालय के अन्तर्गत एक दृश्य-श्रव्य साधन अनुभाग स्थापित किया गया है। राज्य के सभी बहु-उद्देश्यीय उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को विभिन्न प्रकार के दृश्य-श्रव्य

उपकरणों से सम्पन्न किया गया है। भोपाल, इन्दौर, उजैन, ग्वालियर और जबलपुर जैसे महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में विचार-गोष्ठियाँ और कर्मशालाएँ आयोजित की गईं तथा दृव्य-श्रव्य साधनों के निर्माण और उपयोग के सम्बन्ध में बहुत से अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया गया।

पश्चिम बंगाल में एक क्षेत्रीय दृश्य-श्रव्य परिषद् की और एक राज्य स्कूल-प्रसारण परिषद् की स्थापना की जा चुकी है। अनेक उच्च और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को रेडियो सेट दिए गए हैं। डेविड हेयर ट्रेनिंग कालेज, कलकत्ता के विस्तार-विभाग द्वारा हाईस्कूलों और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए दृश्य-श्रव्य शिक्षा के सम्बन्ध में अल्पावधि पाठ्यक्रमों का आयोजन किया गया है।

आन्ध्र प्रदेश में अनेक हाईस्कूलों और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को राज्य सरकार ने पचास प्रतिशत अनुदान के आधार पर रेडियो सेट दिए हैं। ऐसी अधिकांश संस्थाओं में रेडियोक्लब स्थापित किए जा चुके हैं।



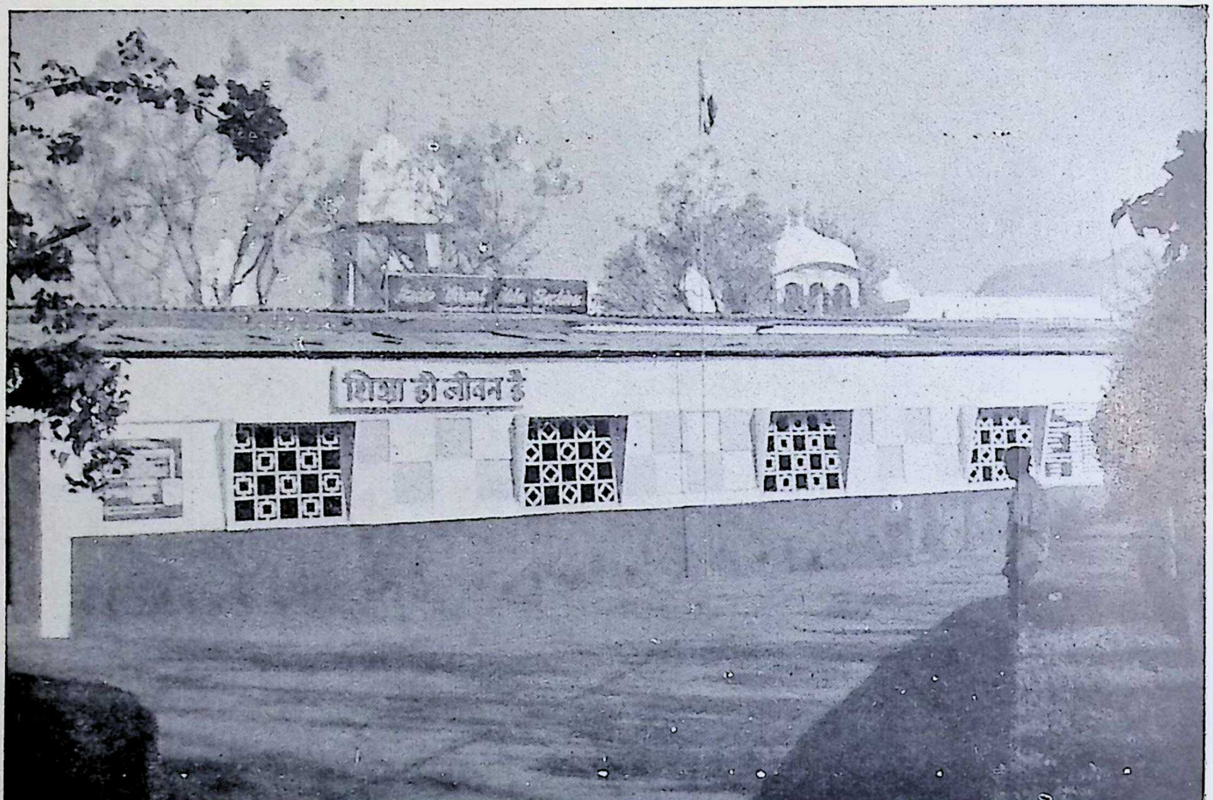
राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय, कालीकट के प्रसार-सेवा विभाग द्वारा आयोजित दृश्य-श्रव्य सामग्री की प्रदर्शनी की एक झाँकी। (महाविद्यालय के सौजन्य से)

केरल राज्य सरकार ने दो दृश्य-श्रव्य एकक स्थापित किए हैं : एक त्रिवेन्द्रम में और दूसरा ऐर्नाकुलम में। दोनों ही एकक सभी प्रकार के दृश्य-श्रव्य उपकरणों से सुसज्जित हैं। राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्रसार-सेवा विभाग ने माध्यमिक स्कूलों के अध्यापकों के लिए कालीकट में अनेक पाठ्यक्रमों का और दृश्य-श्रव्य सामग्री की एक मनोरंजक तथा उपयोगी प्रदर्शनी का आयोजन किया था।

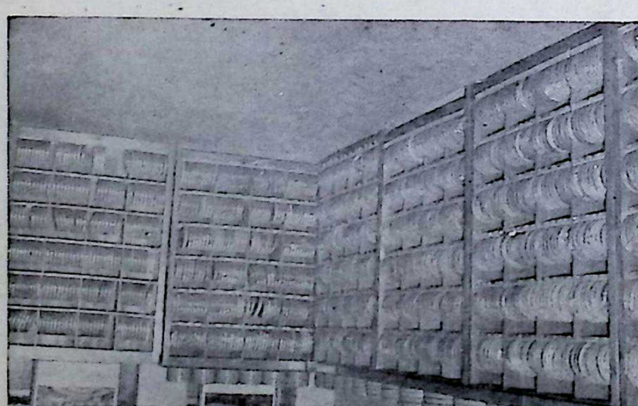


राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय, कालीकट के प्रसार-सेवा विभाग द्वारा आयोजित दृश्य-श्रव्य सामग्री की प्रदर्शनी की एक झाँकी।
(महाविद्यालय के सौजन्य से)

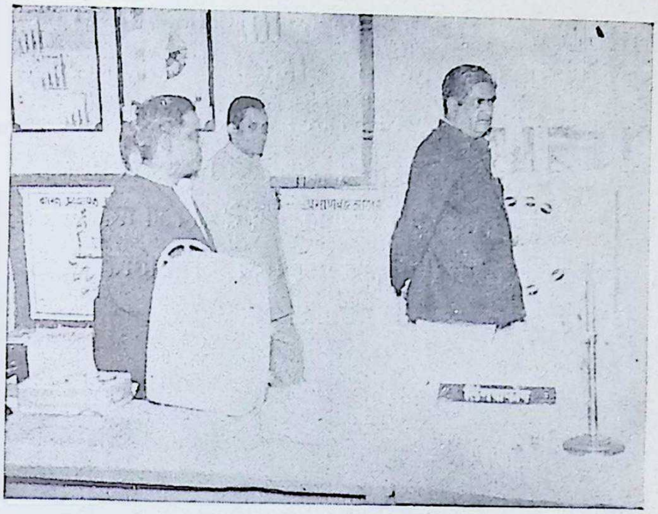
उत्तरप्रदेश में दृश्य-श्रव्य शिक्षा की एक राज्य परिषद् स्थापित की गई है और अध्यापकों के लिए दृश्य-श्रव्य शिक्षा के पाठ्यक्रम तथा विचार-गोष्ठियाँ आयोजित की गई हैं। स्कूलों तथा सामाजिक शिक्षा-केन्द्रों में फिल्में प्रदर्शित करने के लिए शिक्षा-विभाग ने अनेक चलयानों की व्यवस्था की है।



दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग, राजस्थान, का अजमेर स्थित कार्यालय भवन
(दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग, राजस्थान के सौजन्य से)



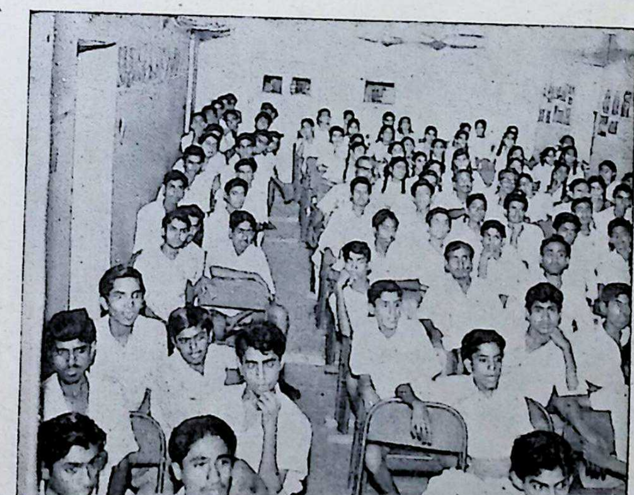
फिल्मग्रंथागार का एक दृश्य।
(दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग, राजस्थान के सौजन्य से)



राजकीय दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग द्वारा आयोजित दृश्य-श्रव्य साधनों की एक प्रदर्शनी का परिदर्शन राजस्थान के मुख्य मंत्री कर रहे हैं। (दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग, राजस्थान के सौजन्य से)

राजस्थान में दृश्य-श्रव्य शिक्षा की सराहनीय प्रगति हुई है। इस राज्य में दृश्य-श्रव्य विभाग का दायित्त्व एक पूर्णकालिक अधिकारी को सौंपा गया है। प्रारंभ में फिल्म पुस्तकालय में केवल कुछ सौ फिल्में ही थीं। अब उसमें २६५६ फिल्में, ६९६ फिल्मपट्टियाँ और २"×२" आकार की १३०२ स्लाइड हैं। इस भण्डार में शिक्षा के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय और क्षेत्र के सम्बन्ध में फिल्में, फिल्मपट्टियाँ

दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग, राजस्थान, के दर्शक कक्ष में एक फिल्म देखते हुए विद्यालय के छात्र। (दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग, राजस्थान के सौजन्य से)



और स्लाइडें उपलब्ध हैं। पुस्तकालय की कुल सदस्य-संख्या अब ३६१ है जिसमें स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, कृषि-विद्यालय, प्रशिक्षण स्कूल, पंचायत समितियाँ और सरकारी कार्यालय शामिल हैं।

विभाग ने प्रायः सभी प्रकार के उपकरण प्राप्त कर लिये हैं। उसके पास ६ चलयान भी हैं जो राज्य के विभिन्न स्थानों में फिल्म प्रदर्शनों का आयोजन करते हैं। अजमेर में एक दर्शक-कक्ष बनाया गया है जिसमें गतवर्ष १४८ फिल्म-प्रदर्शन किए गए थे। अजमेर, जयपुर, कोटा और आबूपर्वत आदि अनेक स्थानों में दृश्य-श्रव्य सामग्री की प्रदर्शनियाँ आयोजित की गई थीं। उच्चतर माध्यमिक, मिडिल और प्राथमिक कक्षाओं के लिए आकाशवाणी द्वारा नियमित रूप से कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। विभाग इन कार्यक्रमों को बहुत महत्त्व देता है। इसके लिए राज्य की विभिन्न संस्थाओं को ५५८ रेडियो सेट मुफ़्त दिए गए हैं।

२ दृश्य-श्रव्य साधन क्या हैं ?

'दृश्य-श्रव्य' पद

दृश्य-श्रव्य साधन मुद्रित अथवा लिखित शब्द के अतिरिक्त वे साधन हैं जो वस्तु विशेष की स्पष्ट धारणा बनाने में सहायक होते हैं। वास्तव में, किसी वस्तु की स्पष्ट धारणा बनाने का सबसे अच्छा तरीका है, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति। हम आम को सबसे अच्छी तरह समझते हैं उसे देखकर, छूकर, सूँघकर और वास्तविक आम को चखकर। पर इस विशाल और जटिल विश्व की प्रत्येक वस्तु का ज्ञान इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता। हमें प्रतिरूपों की सहायता लेनी ही पड़ती है। दृश्य-श्रव्य साधन हमें ये प्रतिरूप प्रदान करते हैं—और वे 'दृश्य-श्रव्य' इस लिए कहलाते हैं क्योंकि वे श्रवण व दर्शन की दो इन्द्रियों द्वारा ही प्रभावी होते हैं।

दृश्य-श्रव्य साधनों से संबंधित कुछ भ्रान्त धारणाओं का उन्मूलन

दृश्य-श्रव्य साधनों से सम्बन्धित बहुत सी भ्रान्त धारणाओं को दूर कर देना ठीक होगा।

(क) दृश्य-श्रव्य साधनों का संबंध केवल फिल्मों अथवा फिल्मपट्टियों से ही नहीं है।

सबसे पहले यह समझ लेना चाहिए कि दृश्य-श्रव्य साधनों का सम्बन्ध केवल फिल्मों अथवा फिल्मपट्टियों से ही नहीं है। निस्संदेह ये साधन बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ; किन्तु किसी भी अर्थ में केवल इन्हें ही दृश्य-श्रव्य साधन मान लेना गलत होगा। इनके सिवा अनेक दृश्य-श्रव्य साधन हैं। नीचे दी गई सूची से यह बात स्पष्ट हो जाएगी :

चाकबोर्ड, चुम्बकीय चाकबोर्ड, बुलेटिन बोर्ड, और फलैनेल बोर्ड

चार्ट, पोस्टर, रेखाचित्र, ग्राफ़, व्यंग्यचित्र, मानचित्र, भूगोलक

फटोचित्र, चित्र, तुलिकाचित्र, फ्लैशकार्ड, नमूने, अंशानुकृतियाँ, विवेच्य वस्तुएँ, मॉडेल या प्रतिमान, पारचित्र

अपारचित्रदर्शी, तीव्रगामी विन्यासदर्शी, त्रिविभितीय विन्यासप्रक्षेपी, शिरोपरि प्रक्षेपी, छतीय प्रक्षेपी, सूक्ष्मप्रक्षेपी, जादुईलालटेन की स्लाइडें, फिल्मपट्टियाँ और फिल्में—इन सब की सहायता से प्रक्षेपण

टेप रेकार्ड, रेडियो प्रसारण, टेलिविज़न और ग्रामोफ़ोन रेकार्ड।

नाटकीकरण : नाटक, स्वाँग, मौन चित्रात्मक दृश्य, मूक अभिनय, कठपुतलियों के तमाशे और छायानाटक।

ध्यान देने की बात है कि ऊपर दी गई सूची दृश्य-श्रव्य साधनों की सम्पूर्ण सूची नहीं है। सच तो यह है कि ऐसी सम्पूर्ण सूची तैयार करना सम्भव नहीं है ; क्योंकि हर दिन जो बीतता है, कुछ-न-कुछ ऐसी नई सामग्री और नए साधन दे जाता है जिनसे पढ़ाई-लिखाई सार्थक, आनन्दप्रद और कारगर बनती जाती है।

एक बात और है। फिल्मों और फिल्मपट्टियों को जो महत्त्व दिया जाता है उसके कारण ऊपर की सूची में गिनाए गए साधारण साधनों का महत्त्व कम न हो जाना चाहिए, जैसे चाकबोर्ड, बुलेटिन बोर्ड, चित्र, चार्ट, मानचित्र अथवा प्रतिमान जो अनेक अध्यापकों के लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण, सुकर और सुसाध्य सिद्ध हो सकते हैं। अध्यापकों के प्रशिक्षण में इन साधनों के ठीक-ठीक उपयोग की शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

(ख) दृश्य-श्रव्य साधन अध्यापन के बजाय अध्ययन के सहायक साधन हैं

दूसरी बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि दृश्य-श्रव्य साधन अध्यापकों के बजाय विद्यार्थियों के लिए सहायक साधन हैं। अध्यापन के बजाय अध्ययन के सहायक साधन हैं। पर इसका मतलब यह नहीं कि दृश्य-श्रव्य साधन अध्यापकों का बोझ हल्का कर देते हैं। पाठ्यपुस्तक के सहारे कोई पाठ पढ़ाने के बदले जब कोई अध्यापक इन साधनों का उपयोग अध्यापन-कार्य में करता है तब उसे अधिक तैयारी करनी पड़ती है ; पाठ को अधिक सुनियोजित ढंग से पढ़ाना पड़ता है। इस अतिरिक्त श्रम का सुफल यह होता है कि उसके विद्यार्थी सिखाई गई बातें अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से सीख लेते हैं।

(ग) दृश्य-श्रव्य-साधन एक लक्ष्य के साधन मात्र हैं

तीसरी बात, जिस पर ज़ोर दिया जाता है, यह है कि दृश्य-श्रव्य-साधन एक लक्ष्य के साधन मात्र हैं। "शिक्षण प्रक्रिया व्यक्तित्वों के बीच एक आध्यात्मिक अन्योन्यक्रिया है, न कि अध्यापक द्वारा विद्यार्थी तक किया गया ज्ञान-संचार मात्र। अध्यापक तो सदा ही उस उपकरण से अधिक महत्त्वपूर्ण है जिसका वह उपयोग करता है ; सच तो यह है कि अध्यापक द्वारा प्रयोग में आ जाने में ही उपकरण की सार्थकता है ; और उस प्रयोग की सार्थकता अध्यापक की निपुणता तथा प्रयोग-कौशल पर उतनी अधिक निर्भर नहीं जितनी विद्यार्थियों के प्रति उसकी सहानुभूति पर ; विद्यार्थियों की समस्याओं और उनकी कठिनाइयों के सम्बन्ध में उसकी अभिरुचि और जानकारी पर, तथा मान-मूल्यों से संबंधित उसके दृष्टिकोण पर।"[१]

(घ) दृश्य-श्रव्य-साधन पाठ्यपुस्तकों का स्थान नहीं ले सकते

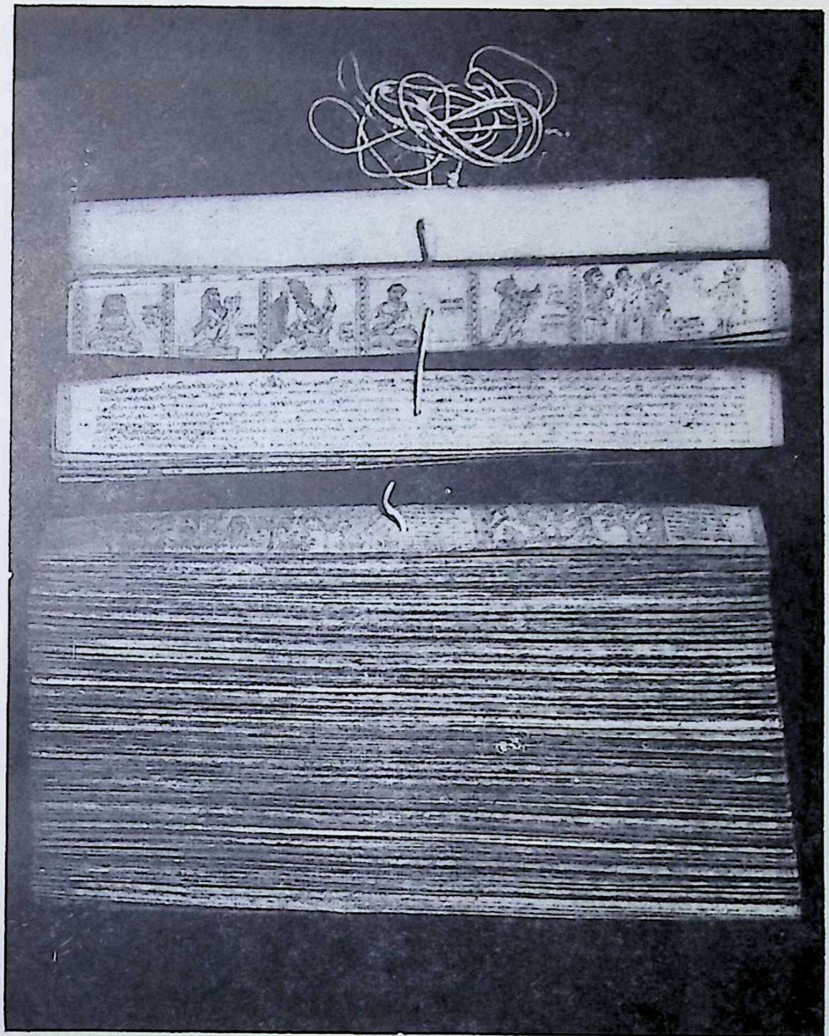
अन्ततः हमें सावधान रहना चाहिए कि दृश्य-श्रव्य-साधनों को हम सामान्यतया उचित महत्त्व से अधिक महत्त्व न दे बैठें। उदाहरण के लिए, हमें यह न सोचना चाहिए कि दृश्य-श्रव्य-साधन पाठ्यपुस्तकों का स्थान ले सकते हैं, अथवा अध्यापन की सारी पूर्व-प्रचलित प्रणालियाँ भ्रान्त अथवा कौशलहीन थीं। पढ़ने की आवश्यकता तो हमेशा रहेगी ; भले ही इन साधनों का ठीक-ठीक उपयोग करने से पढ़ने का काम अधिक आनन्ददायक और अधिक कारगर हो जाए।

१। स्काटलैण्ड की शिक्षा-परामर्शदात्री-परिषद् की एक रिपोर्ट—सन् १९४८।

३ शिक्षा-क्षेत्र में दृश्य-श्रव्य साधन नए नहीं हैं।

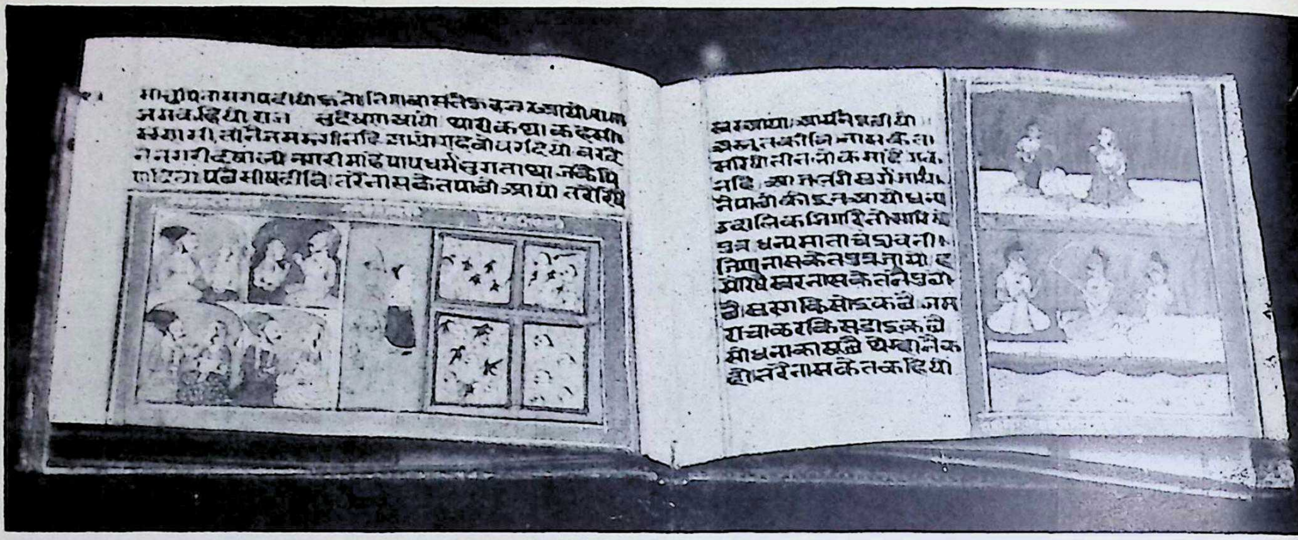
भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति में दृश्य-साधन—ताड़पत्र और कागज़ पर लिखी सचित्र हस्तलिखित पोथियाँ

यद्यपि आधुनिक अर्थों में दृश्य-श्रव्य शिक्षा का आन्दोलन हाल ही में शुरू हुआ है, फिर भी दृश्य-साधनों का प्रयोग भारत तथा अन्य देशों में प्राचीन काल में भी होता था ; भले ही उन साधनों का स्वरूप आधुनिक वैज्ञानिक दृश्य-साधनों जैसा नहीं था। अपने विचारों को मौखिक रूप से व्यक्त करने के लिए एक शब्दावली का विकास करने के बहुत पहले से आदिम लोग रेखाचित्रों और प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहना और समझाना निश्चित रूप से जानते थे। औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही दृश्य-साधनों का उपयोग होता रहा है। विद्यार्थियों को वेदियों का निर्माण करने के नियम सिखाने के लिए ताड़पत्रों पर खींचे गए रेखा-चित्रों का प्रयोग वैदिक पाठशालाओं में किया जाता था। ताड़पत्रों पर लिखी गई कहानी-पुस्तकों में अनेक निदर्श-चित्र रहते थे। ताड़पत्रों पर चित्र बनाने की यह परंपरा दसवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर बहुत समय बाद तक भारत में चलती रही। अठारहवीं शताब्दी में ताड़पत्रों पर लिखित रामायण की एक प्रति उड़ीसा में प्राप्त हुई है। यह पुस्तक बारह सौ ताड़पत्रों पर लिखी गई है और पत्रों के एक



उड़ीसा में प्राप्त ताड़पत्रों पर लिखित सचित्र रामायण। (आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, के सौजन्य से)

ओर निदर्श-चित्र दिए गए हैं। कागज़ पर लिखी जो प्राचीन भारतीय हस्तलिखित पोथियाँ आज उपलब्ध हैं उनमें भी रंग-बिरंगे सुंदर निदर्श-चित्र दिए गए हैं। चित्रों में प्रयुक्त रंग फूलों, पौधों, खनिजों और काजल जैसी चीजों से तैयार किए जाते थे।



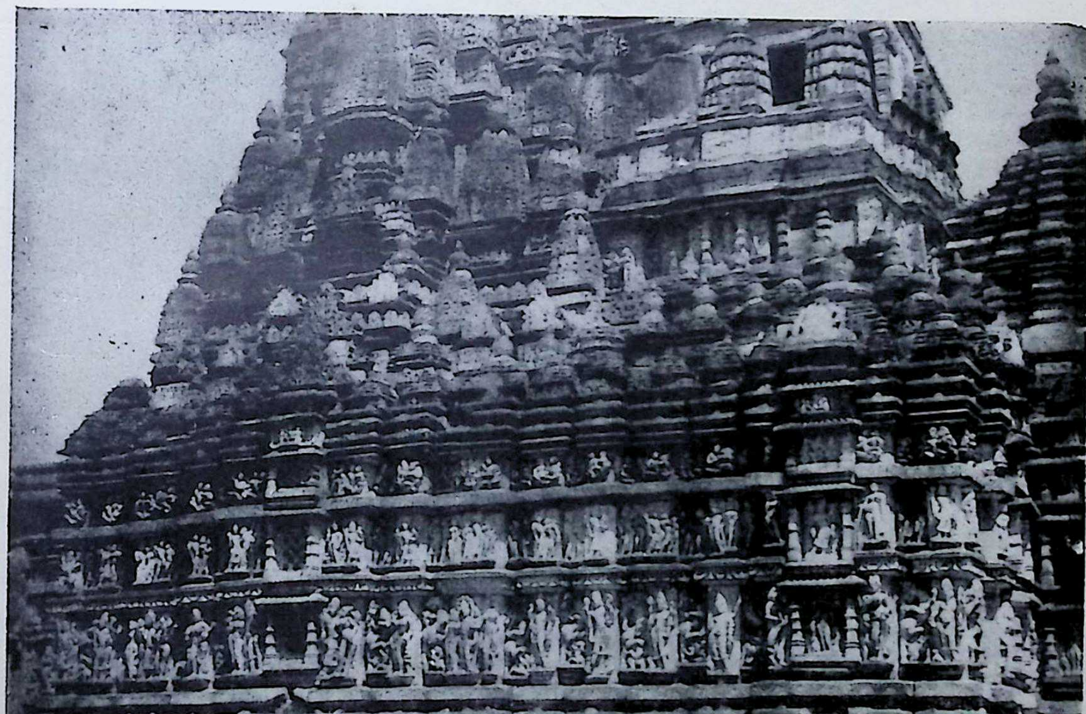
पश्चिम भारत में मिली सचित्र हस्तलिखित पोथी का एक पृष्ठ।
(उद्योग में कला का भारतीय संस्थान, कलकत्ता, के सौजन्य से)

उत्कीर्ण चित्र और भित्ति चित्र

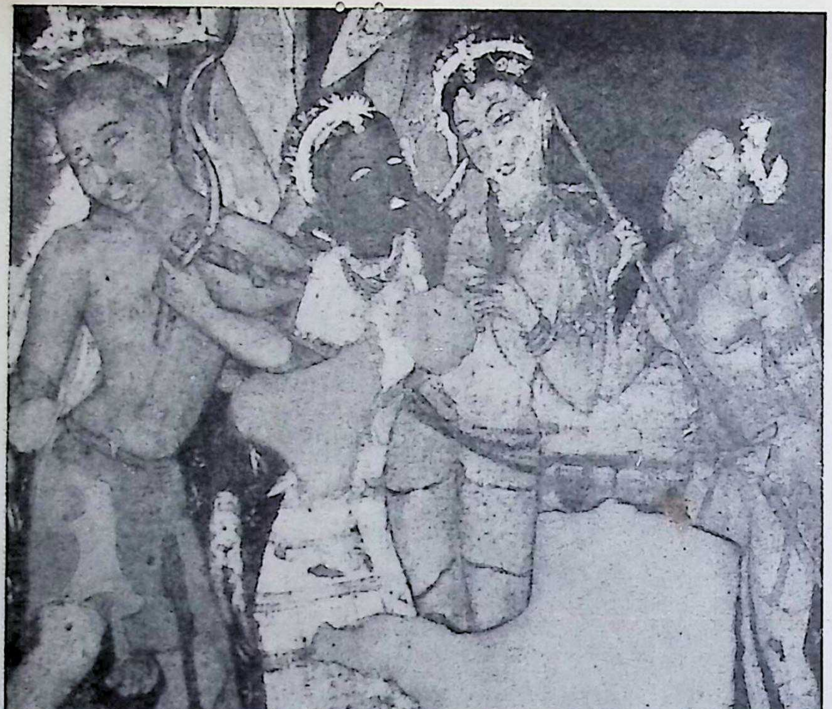
समूचे देश में बिखरे हुए प्राचीन भवनों और मन्दिरों में जो मनोहारी उत्कीर्ण चित्र मिलते हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन भारतीय शिक्षक दृश्य-साधनों को कितना महत्त्व देते थे। प्राचीन भारत के प्रसिद्ध ज्ञानपीठ तक्षशिला के अवशेषों में कुछ ऐसे कक्ष पाए गए हैं जिनमें देश की कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के निदर्श-चित्र उत्कीर्ण किए गए थे। भारत के प्राचीन विश्वविद्यालय नालन्दा के अवशेषों में भी ऐसे ही उत्कीर्ण-चित्र मिले हैं। इनमें महात्मा बुद्ध की जीवन-गाथा और उनके उपदेशों को चित्रित किया गया है। प्राचीन भारत में दृश्य-साधनों के शैक्षणिक उपयोगों के कुछ विशिष्ट उदाहरण साँची-स्तूप के तोरण-स्तम्भों पर देखे जा सकते हैं। इन उत्कीर्ण चित्रों में अंकित बुद्ध की जीवन-गाथा आज भी यथावत् है। खजुराहो और एलोरा के मन्दिरों के मनोहर उत्कीर्ण चित्रों में तथा अजन्ता की गुफाओं के भित्ति-चित्रों में भी ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं।

'पट' और चित्र-कुलक

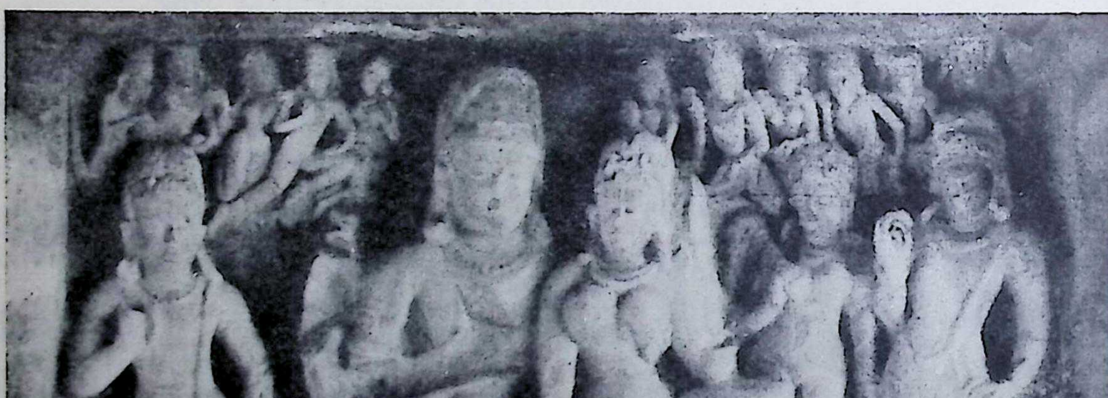
प्राचीन भारत मे दृश्य-श्रव्य-साधनों का एक और महत्त्वपूर्ण उदाहरण सातवीं शताब्दी की प्रसिद्ध साहित्यिक कृति 'हर्ष-चरित' में मिलता है। इस रचना में उल्लेख है कि एक बार बाहर से लौट कर नगर में प्रवेश करते समय थानेश्वर-सम्राट हर्षवर्द्धन ने नगर-द्वार के पास लोगों की एक टोली को बड़ी रुचि के साथ एक चित्रित वर्ति-लेख देखने में मग्न पाया। दिखानेवाला अपने बाएँ हाथ में वर्ति-लेख लटकाए था और दाहिने हाथ की छड़ी से निर्देश करता हुआ चित्रों का विषय समझा रहा था। विषय दर्शकों के लिए महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि उसमें उन घोर यातनाओं की चर्चा थी जो जीवन में किए गए दुष्कर्मों के दण्ड स्वरूप यमराज द्वारा जीव को दी जाती हैं। यम सम्बन्धी ये चित्र या 'पट' भारत के विभिन्न भागों में स्थित गाँवों में कुछ



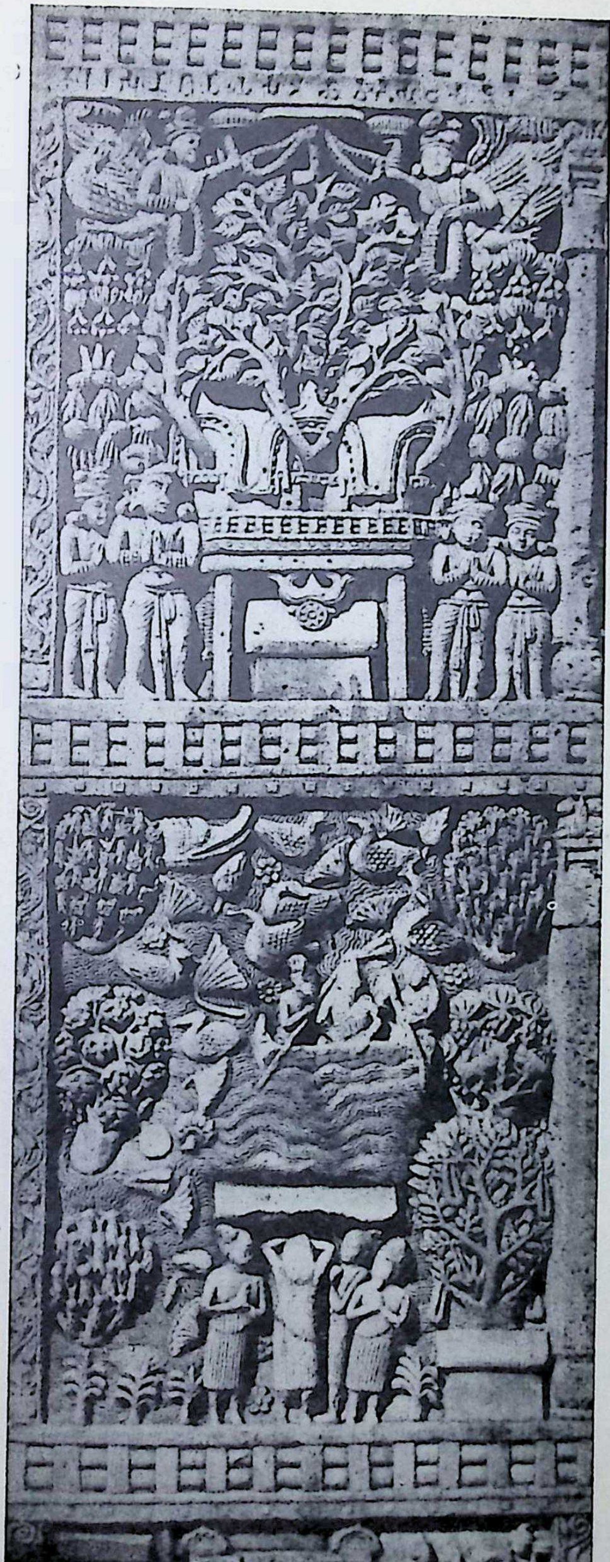
खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर पर महावीर के जन्म और प्रारम्भिक जीवन को प्रस्तुत करनेवाले उत्कीर्ण चित्र।
(श्री जे० घोष, उद्योग में कला का भारतीय संस्थान, कलकत्ता, के सौजन्य से)



अजन्ता की गुफ़ाओं में राजमहल के एक दृश्य का चित्र।
("इण्डिया", यूनैस्को, के सौजन्य से)



कैलासपर्वत को उठाता हुआ रावण—एलोरा के कैलासनाथ मन्दिर के मनोरम उत्कीर्ण चित्र।
(पर्यटक कार्यालय, भारत सरकार, के सौजन्य से)



साँची के तोरणों पर कलाकारों ने जातक-कथाओं की प्रचलित घटनाओं को व्याख्यात्मक टिप्प-णियों के साथ अंकित किया था। इन चित्रों को भारत में 'ग्रेफिक' कला का पुरोगामी माना जा सकता है।

(उद्योग में कला का भारतीय संस्थान, कलकत्ता, के सौजन्य से)

ही समय पहले तक बहुत प्रचलित थे। परलोक में मिलनेवाले दण्ड के इन दृश्यों के प्रचार का उद्देश्य जनता के एक वर्ग पर निस्सन्देह यह प्रभाव डालना था कि सन्मार्ग पर चल कर जीवन बिताना कितना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति किस हद तक हो पाई, यह नहीं कहा जा सकता।



जीवन में किये दुष्कर्मों के लिए मृत्यु के बाद स्त्रियों को मिलनेवाले दण्ड दर्शानेवाला परंपरागत यम-पट। रथ पर बैठी महिला अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप दण्ड-मुक्त रहती है। [आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, के सौजन्य से]

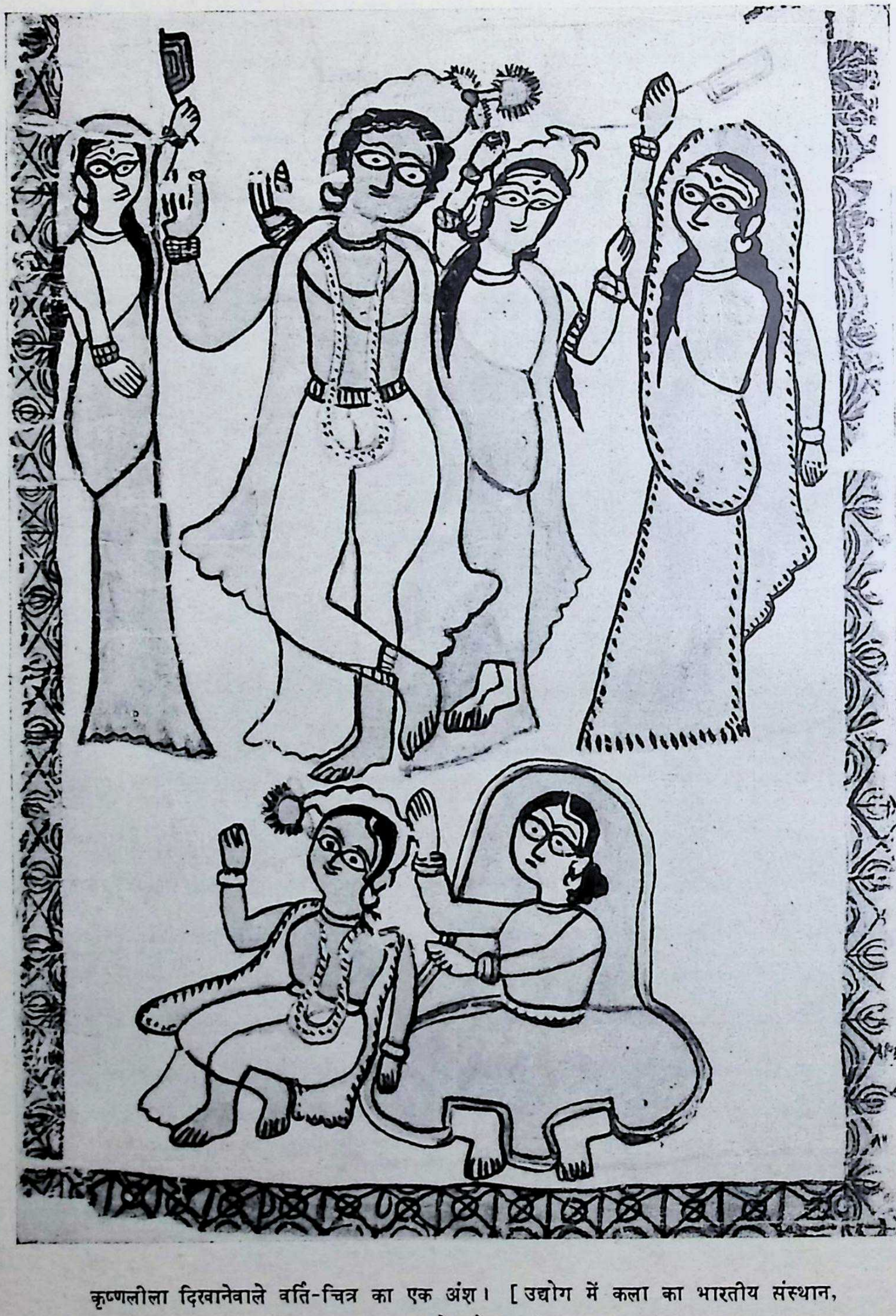
२। 'पट' संस्कृत का प्राचीन शब्द है। इसके दो अर्थ होते हैं: (१) सुन्दर वस्त्र, (२) कपड़े पर अंकित चित्र। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इस शब्द का प्रयोग प्रायः दूसरे अर्थ में किया गया है।

यह सही नहीं है कि चित्र प्रदर्शित करनेवाले हमेशा यमलोक के ही चित्र अंकित किया करते थे। रामायण और महाभारत जैसी धार्मिक कथाओं के चित्र भी उनके पास रहते थे और गाँवों में खूब लोकप्रिय थे। इस क्षेत्र के कुछ विद्वानों द्वारा किए गए नवीनतम शोधकार्यों से यह



एक विशिष्ट बंगीय वर्ति-चित्र जिसमें रामायण की एक रोचक कथा चित्रित की गई है। दिखानेवाले ही इसके चित्रकार थे और सुगम पार्श्व संगीत के साथ सुनिश्चित अनुक्रम में इन चित्रों को दिखाते और समझाते थे। [उद्योग में कला का भारतीय संस्थान, कलकत्ता, के सौजन्य से]

सिद्ध होता है कि बंगाल में चित्र-प्रदर्शन की एक दृढ़ परंपरा थी। बंगाल के 'चित्रकार' अथवा 'पटुआ' 'यमपटों' के साथ अन्य ऐसे पट भी चित्रित करते थे जिनमें 'सिन्धु-वध', 'सीता-हरण' "रावण-वध' जैसी रामायण-कथा की घटनाएँ अंकित की जाती थीं। 'पटुआ' प्रायः बंगाल के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में साथ रहते थे। ढाका (पूर्वी पाकिस्तान) शहर का एक भाग आज भी



कृष्णलीला दिखानेवाले वर्ति-चित्र का एक अंश। [उद्योग में कला का भारतीय संस्थान, कलकत्ता, के सौजन्य से]

'पटुआटोली' कहा जाता है और कलकत्ते की प्रसिद्ध पटुआटोला गली किसी प्राचीन पटुआ बस्ती की याद दिलाती है। वंगाल की दो अन्य जातियाँ, 'सूत्रधर' और 'कर्मकार', भी रामायण और महाभारत के कथानक चित्रित करके वंगाल के विभिन्न भागों में प्रदर्शित किया करती थीं।

पुराने ज़माने के चित्रकार अपने वर्त्ति-चित्र सूती कपड़े पर बनाते थे। यों पन्द्रहवीं सदी से हाथ से बने कागज़ का उपयोग प्रायः होने लगा था। चित्रकला के तकनीकों का विवेचन करनेवाले प्राचीनतम भारतीय ग्रन्थ 'विष्णुधर्मोत्तरम्' में कागज़ पर बने चित्रों का कोई उल्लेख नहीं है।

चित्र-प्रदर्शन की ऐसी प्रथा महाराष्ट्र में भी थी। अधिकांशतः अहमदनगर ज़िले में रहनेवाला एक छोटा सा समुदाय, जो 'चित्रकाठी' नाम से विख्यात था, वंगाल के 'चित्रकारों' की भाँति अपने बनाए चित्रों का प्रदर्शन करके अपनी जीविका कमाता था। इस जाति के लोगों में दृढ़ अनुशासन था जिसके अनुसार प्रत्येक परिवार कम से कम एक चित्र-कुलक रखने के लिए बाध्य होता था। चित्रकाठी अपने चित्र-कुलक लेकर देहातों में घूमते रहते थे और दिलचस्पी रखनेवालों को अपने चित्र दिखाते थे। स्त्री, पुरुष और बच्चों के एकत्रित समाज को चित्र दिखाते और कथा सुनाते समय सामान्यतः सुगम पार्श्व-संगीत की व्यवस्था भी रहती थी। चित्रकाठियों के दो प्रिय उपाख्यान थे 'नल-दमयन्ती' और 'बभ्रुवाहन'। ग्रामीण क्षेत्रों के अशिक्षित लोगों के बीच चित्रकाठियों के ये चित्र प्रायः जनप्रिय होते थे ; ऐसे दर्शकों के लिए दृश्य-साधनों का महत्त्व अधिक था। आज महाराष्ट्र में ये चित्रकाठी बहुत कम मिलते हैं क्योंकि अच्छी कमाई के लिए उन्होंने अपना पेशा बदल दिया है ; किन्तु जो चित्र उन्होंने बनाए हैं, देश की कला-परंपरा में उन्हें सर्वदा स्थान दिया जाएगा।

कठपुतलियाँ

कठपुतली-कला प्राचीन भारत के ग्रामीण समाज में बहुत लोकप्रिय थी। अनेक प्राचीन भारतीय ग्रन्थों मे पुतलियों के प्रयोग की चर्चा है जिन्हें 'पंचालिका' कहा जाता था। छड़ियों और तारों के सहारे संचालित की जानेवाली दीर्घाकार कठपुतलियों के खेल पुराने ज़माने में गाँवों में खूब प्रचलित थे। इन पुतलियों को आकर्षक पोशाकें और गहने पहनाए जाते थे। मेलों में और महत्त्वपूर्ण अवसरों पर धनी लोगों के घरों मे प्रायः इनके खेल दिखाए जाते थे। सामान्यतः ये खेल रामायण और महाभारत पर आधारित होते थे। थिएटर और सिनेमा के प्रचलन से



'हरिश्चन्द्र' नाटक में प्रयुक्त बंगाल की परंपरागत दीर्घाकार कठपुतलियाँ।



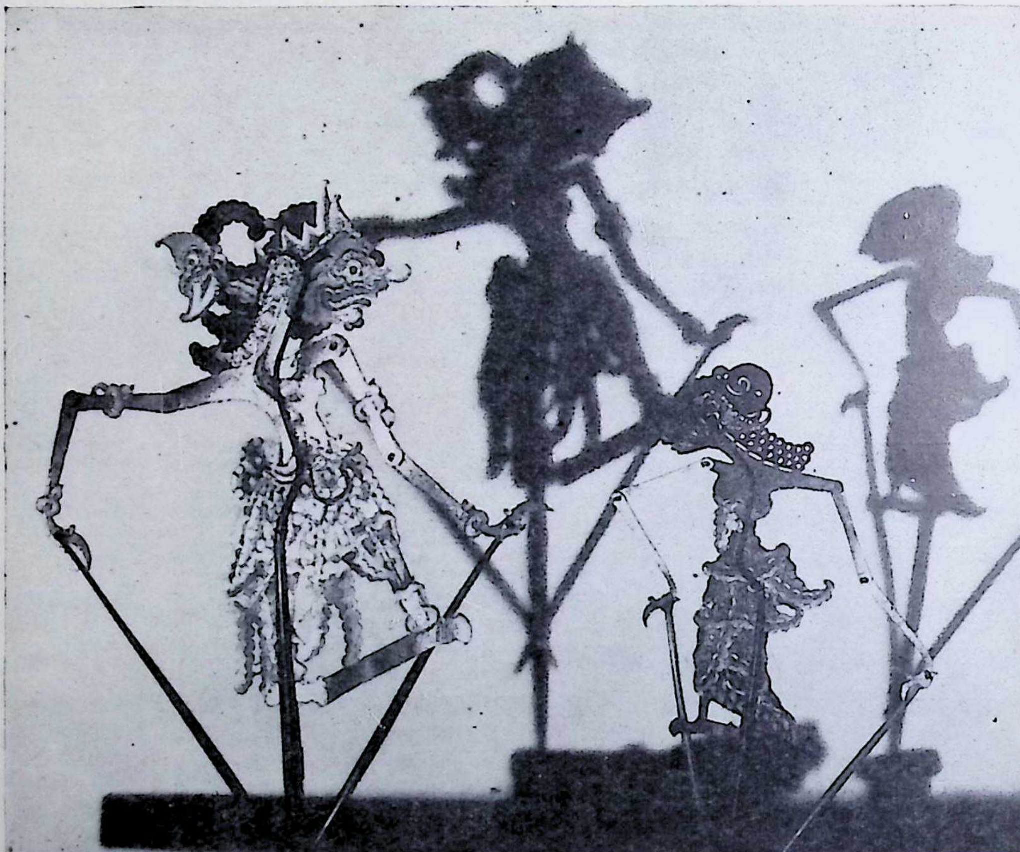
परंपरागत राजस्थानी कठपुतलियाँ।
[उद्योग में कला का भारतीय संस्थान, कलकत्ता, के सौजन्य से]

कठपुतलियों का प्रयोग यद्यपि भारत में अब बहुत कम हो गया है, फिरभी बंगाल और राजस्थान में विशिष्ट अवसरों पर आज भी कठपुतलियों के स्वाँग आयोजित किए जाते हैं। पिछली शताब्दी के अन्त तक इन राज्यों के बहुतेरे परिवार कठपुतलियों के स्वाँगों से ही अपनी जीविका अर्जित करते थे। राजस्थान के अनेक वृद्ध आज भी उन 'पुतलीवालों' की याद किया करते हैं जो अपने सिर पर पुतलियों के संदूक रखे द्वार-द्वार पूछा करते थे कि कठपुतलियों का स्वाँग कोई देखेगा? उनके खेल प्रायः मारवाड़ के इतिहास की प्रसिद्ध घटनाओं पर आधारित होते थे। इस अर्थ में वे दक्षिण भारत और बंगाल की धार्मिक कथाओं पर आधारित खेलों से भिन्न होते थे। लेकिन आज राजस्थान या बंगाल में 'पुतलीवाले' या 'पुतुलनाचवाले' मुश्किल से दिखाई देते हैं। उनकी कला अब उन्हें रोटी नहीं दे पाती।

प्राचीन भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा का एक दूसरा प्रकार था छाया-नाटक। गाय या भैंस के उत्तम चमड़े को खुरच कर उसे पारभासी बना लिया जाता था और पतली पुतलिओं के आकारों (कटआउट) के सहारे यह नाटक दिखाया जाता था। पुराकाल में देवियों और देवताओं की पुतलियाँ केवल हरिन के चमड़े से ही बनाई जाती थीं क्योंकि हिन्दू धर्म के अनुसार हरिन का चमड़ा पवित्र होता है। कुछ समय बाद 'गोदावरी तीरवासी' टोलियों ने गाय या भैंस के चमड़े का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। पारभासी पुतलियों का प्रयोग पोशाकों और गहनों के विभिन्न रंगों का मेल मिलाने के लिए किया जाता था। जो पुतलियाँ प्रायः पवित्र मानी जाती थीं उन्हें हर पीढ़ी अगली पीढ़ी को सौंप जाती थी।

छाया-नाटक का उद्भव महाराष्ट्र में हुआ था। बाद में इसका प्रचार वस्तुतः समूचे दक्षिण-भारत में हो गया। आन्ध्र और केरल में यह विशेष रूप से जनप्रिय रहा। नाटक प्रायः धार्मिक कथाओं पर आधारित होते थे और मधुर पार्श्व-संगीत तथा सूत्रधारों के कौशल एवं सधे हुए स्वरों के कारण बहुत ही आनन्ददायक होते थे। छाया-पुतलियों का प्रयोग समाचार-वृत्त सुनाने के लिए भी किया जाता था क्योंकि उन दिनों समाचारपत्रों या पत्रिकाओं जैसी कोई चीज नहीं थी। हमारे लिए यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि दक्षिण-भारत के पूर्वीतट से बाली और जावा तक पहुँचे ऐसे छाया-नाटक का प्रयोग हिन्देशिया में अशिक्षित ग्रामीणों को संसार की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की झाँकी दिखाने के लिए आज भी किया जाता है। एक मनोरंजक उदाहरण लीजिए: दूसरे विश्वयुद्ध के बाद हुई समस्त एशियाई राष्ट्रों के नेताओं की बैठक—बांडुंग सम्मेलन—की झाँकी हिन्देशिया के सुदूर गाँवों में 'वयंग' (छाया-पुतली का हिन्देशियाई नाम) द्वारा ग्रामीणों को दिखाई गई थी।

केरल में और मद्रास राज्य के गोदावरी और तंजावूर ज़िलों में कुछ दुर्लभ अवसरों को छोड़ कर दक्षिण भारत के गाँवों में छाया-नाटक अब बहुत कम आयोजित होते हैं।



ये 'वयंग' और इनकी छायाएँ काटकर बनाई जानेवाली परंपरागत भारतीय पुतलियों का आभास देती हैं। [आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय, के सौजन्य से]

पश्चिम की प्रारम्भिक शिक्षा में दृश्य-साधन

पश्चिमी देशों के महान शिक्षकों—एराज़्मस, कॉमीनियस, रूसो, पेस्टलॉज़ी और फ्रोएबेल ने छोटे बच्चों की शिक्षा में दृश्य-साधनों की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है। एराज़्मस (१४६६-१५३६) बच्चों की पढ़ाई में रटाने की पद्धति के विरोधी थे और ज़ोर देते थे कि बच्चों को कहानियों, चित्रों और खेलों के माध्यम से पढ़ाना चाहिए। पोलैण्ड के एक पादरी और अध्यापक जोहान ऐमॉस कॉमीनियस ने पहले-पहल एक सचित्र पाठ्य-पुस्तक तैयार की जिसका नाम था 'ऑर्बिस सेन्सूलियम पिक्टस' (इन्द्रियगम्य वस्तु-जगत—जो सामान्यतः 'ऑर्बिस पिक्टस

नाम से विख्यात है)। पुस्तक में लगभग डेढ़ सौ चित्र हैं और प्रत्येक चित्र एक पाठ का विषय है। अधिकांश विषय दैनिक जीवन के व्यवहारिक पहलुओं से सम्बन्धित हैं, जैसे बागवानी ; रोटी बनाना, आदि। पुस्तक की भूमिका में, जो तीन सौ वर्षों से भी पहले लिखी गई थी, ऐसे अनेक वक्तव्य हैं जो दृश्य-शिक्षण की आधुनिक पद्धतियों का आधार बन सकते हैं।

(१) "इस पुस्तक को बच्चों के हाथों में दीजिए ; इसके चित्रों को देख-देख कर वे पुलकित हों, इनके साथ, जितना हो सके, अपना परिचय बढ़ाएँ। यह काम बच्चों को स्कूल भेजने से पहले घर पर ही होना चाहिए।"

(२) "फिर (विशेषकर स्कूल में) इन चित्रों की जब-तब जाँच-परख होने दीजिए किसी चित्र में बनी कोई चीज़ क्या है ?—उसका नाम क्या है ?—ताकि बच्चों के सामने के चित्र में ऐसी कोई चीज़ न रह जाए जिसका नाम उन्हें न मालूम हो और ऐसी भी कोई चीज़ न रह जाए जिसका नाम उन्हें मालूम हो पर जिसे चित्र में वे दिखा न सकें।"

(३) "और जिन चीज़ों के नाम बताए जाएँ वे चीज़ें बच्चों को चित्र में ही नहीं बल्कि वास्तविक रूप में भी दिखाई जाएँ : उदाहरण के लिए, शरीर के अंग, कपड़े, पुस्तकें, मकान, उपकरण, आदि।"

(४) "जो वस्तुएँ दुर्लभ हों और आसानी से घर में न मिलें हर बड़े स्कूल में उन्हें रखना चाहिए, ताकि जब भी उनसे सम्बन्धित कोई शब्द विद्यार्थियों को बताना हो तब तो वे चीज़ें उन्हें दिखाई जा सकें। इस प्रकार ऐसे स्कूल इन्द्रियगम्य प्रत्यक्ष पदार्थों के स्कूल बन जायेंगे जो बौद्धिक विद्यालय के प्रवेश-द्वार होंगे।"

यद्यपि कॉमीनियस ने छोटे बच्चों की शिक्षा में चित्रों के महत्त्व पर ज़ोर दिया था, उन्होंने शिक्षा को मात्र चित्रात्मक बना देने के विरुद्ध चेतावनी भी दी थी। बच्चों को यह बोध तो होना ही चाहिए कि चित्र वास्तविक पदार्थों के प्रतीक मात्र हैं। उनका सुझाव था कि स्कूलों में चित्रों और अन्य साधनों के माध्यम से बच्चों को ऐसे अनुभव सुलभ होने चाहिए जो प्रायः घरों में उन्हें नहीं मिलते।

जीन जैक्स रूसो (१७१२-१७७८) अपने समय की शाब्दिकता—बिना समझे हुए शब्दों की रटन्त—के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने कहा था : "प्रचलित पद्धति से उल्टा मार्ग अपनाओ तो प्रायः सदा ही सही राह पर होगे।"

जोहॉन हेनरिख पेस्टलॉजी (१७५६-१८२७) ने रूसो की सम्मति का ही अनुगमन किया। उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रबल समर्थन किया कि शिक्षण कार्य इन्द्रिय-बोध पर आधारित होना चाहिए। गणित जीवन की वास्तविकताओं के साथ सम्बन्धित होनी चाहिए। प्रत्येक जीवन-व्यापार में प्रकृति के सामान्य पदार्थों के प्रज्ञापूर्ण प्रेक्षण पर भी पेस्टलॉज़ी ने ज़ोर दिया था।

ऊपर के विवरण से यह तर्कसंगत निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि पिछले ज़माने में पश्चिमी देशों में वैज्ञानिक दृश्य-श्रव्य साधन नहीं थे, फिर भी उन दिनों के शिक्षक चित्रों, पदार्थों अथवा अन्य सरल दृश्य-साधनों के पक्ष में अवश्य थे।

४ ज्ञानार्जन में दृश्य-श्रव्य साधनों का योगदान

दृश्य-श्रव्य साधन बच्चों को इस आधुनिक युग में जीवन-यापन के लिए शिक्षित करते हैं

पुराने ज़माने में जीवन वहुत सरल था। उस समय प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से बच्चे बहुत कुछ सीख लेते थे। कताई, बुनाई और खेती का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव होता था। किन्तु विज्ञान के विकास से अब हमारे जीवन में बड़ा परिवर्तन आ गया है। आधुनिक समाज अत्यन्त जटिल है; आज स्कूलों में जीवन यापन के लिए बच्चों को शिक्षित करने का काम उन विविध दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग करके ही किया जा सकता है जो विज्ञान ने प्रस्तुत किए हैं। ये साधन वास्तव में आज हमारे दैनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण हैं। "नई-नई पत्रिकाएँ, तख्ते पर लगे पोस्टर, सिनेमा की फिल्में—सब में सूचना या जानकारी देने के लिए, विचार व्यक्त करने के लिए अथवा भावना जगाने के लिए चित्रों का ही उपयोग किया जाता है। हमारे साक्षियों का यही अभिमत रहा कि यदि इस आधुनिक युग में स्कूल में और उसके बाहर अपनी भूमिका अदा करने के लिए बच्चों को शिक्षा में हमने दृश्य-साधनों का अधिकाधिक और प्रभावपूर्ण उपयोग न किया तो बड़ी खेदजनक बात होगी। दृश्य-साधन आकर्षक होते हैं। वे स्कूलों को उपकरण-युक्त ही नहीं अधिक आनन्ददायक केन्द्र बना सकते हैं; हमारे बच्चों के ज्ञानवर्धन में सहायता दे सकते हैं; उनमें अभिरुचि उत्पन्न कर सकते हैं; सुरुचि जगा सकते हैं और उनकी कल्पना को उर्वर बना सकते हैं"।३

३—स्काटलैण्ड की शिक्षा परामर्शदात्री परिषद् की एक रिपोर्ट—१९४८।

बच्चे में अभिरुचि उत्पन्न करके दृश्य-श्रव्य साधन उसे ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित करते हैं

इस शताब्दी में होनेवाले सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों में से एक यह है कि-बच्चे को ज्ञान प्राप्त करना चाहिए-इसे महत्त्व देने के बदले बच्चे का ही अध्ययन करने पर अधिकाधिक ज़ोर दिया जा रहा है। कुछ दशक पहले किसी भी विषय के अध्यापन पर वयस्कों की दृष्टि से विचार किया जाता था ; इस दृष्टि से नहीं कि वह विषय बच्चे को अच्छा लगता है या नहीं। उस समय ज्ञानार्जन एक कठिन काम था। किन्तु अब शिक्षा-पद्धति में बहुत परिवर्तन हो गया है। अब बच्चे की ज्ञानार्जन-सक्रियता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। हम जानते हैं कि सफल ज्ञानार्जन आज बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि बच्चे के मन में सीखने की प्रबल प्रेरणा हो और उसे प्राप्त होनेवाले अनुभव उसके लिए सार्थक और प्रयोजनशील बनाए जाएँ।

दृश्य-श्रव्य साधन बच्चे में अभिरुचि उत्पन्न करके उसे ज्ञानार्जन के लिए प्रेरित करते हैं।

पहली बात यह है कि ये साधन बच्चों के लिए नई चीज़ होते हैं। स्कूल के सामान्य कार्यकलाप—पढ़ना, लिखना, सुनना आदि से हटाकर उन्हें एक परिवर्तन की सुखद अनुभूति देते हैं। साधनों की नवीनता उन विद्यार्थियों के लिए आकर्षक वना देती है।

दूसरी बात यह है कि ये साधन कक्षा के वातावरण में परिवर्तन कर देते हैं। जब कोई फिल्मपट्टी दिखाई जाती है तब बच्चे उसी प्रकार मुक्त हो कर हँसते, बातें करते और प्रश्न पूछते हैं जिस प्रकार कक्षा के वाहर। अध्यापक का भाव अत्यधिक मैत्रीपूर्ण होता है। यह सुखद और स्वाभाविक वातावरण ज्ञानार्जन में वहुत सहायक होता है।

तीसरी बात यह है कि दृश्य-श्रव्य साधन सरलता से समझ में आ जाते हैं। भाषण द्वारा किसी वस्तु का विवरण-वर्णन समझने के वदले बच्चों को इन साधनों में अधिक रुचि रहती है। भाषणों में रुचि तभी होती है जब उनमें समझने की क्षमता विकसित हो चुकी हो, भाषा का ज्ञान हो और सम्बन्धित विषय में वे पहिले भी कुछ ज्ञान अर्जित कर चुके हों।

चौथी बात यह है कि अधिकांश दृश्य-श्रव्य साधन बच्चों को कुछ-न-कुछ करनें का अवसर देते हैं। किसी मॉडेल को छूने, किसी बटन को दवाने अथवा किसी क्रैंक को घुमाने का अवसर मिलने पर बच्चे बहुत खुश होते हैं और इसका उन पर आकर्षक प्रभाव पड़ता है।

दृश्य-श्रव्य साधन बच्चे के अनुभव को सार्थक बनाते हैं

दृश्य-श्रव्य साधन बच्चे के अनुभव को सार्थक बनाते हैं। "दृश्य-श्रव्य वस्तुएँ प्रत्ययात्मक

चिंतन के लिए एक ठोस आधार प्रस्तुत करती हैं, इसी कारण सार्थक संकल्पनाओं तथा सार्थक विचार-साहचर्य से वे शब्दों को सम्पन्न बनाती हैं। शाब्दिकता की बीमारी की वे सर्वोत्तम उपलब्ध औषधि हैं।"[४] कुछ स्थितियों में तो शाब्दिकता बिल्कुल असहाय और असमर्थ हो जाती है। उस अध्यापक की स्थिति की कल्पना कीजिए जो अपने विद्यार्थियों को शब्दों के सहारे एक ऐसे जानवर का रूप-बोध कराने का उपक्रम कर रहा हो जिसे बच्चों ने कभी देखा ही न हो। वह जानवर की उँचाई, उसके रंग, सिर, पैर, कान तथा उसकी अन्य विशेषताओं का वर्णन करता है, लेकिन एक भी बच्चा उस जानवर के रूपाकार की ठीक-ठीक अवधारणा नहीं कर पाता। किन्तु यदि उस जानवर को बच्चे प्रत्यक्ष देख लें तो वे उसकी कितनी सही अवधारणा कर सकते हैं? इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्यक्ष अनुभूति ही सम्पूर्ण प्रभावशील ज्ञानार्जन का आधार होती है। "सम्पूर्ण शिक्षा की ठोस नींव है व्यापक परिपूर्ण अनुभूति। देखकर, काम लेकर, चखकर, स्पर्श करके, सूँघकर और महसूस करके प्राप्त किया गया प्रयोजनशील अनुभव ही वह नींव है। ऐसा अनुभव जीवन की व्यापक अविकल प्रतिकृति होता है।"[५]

वस्तुतः प्रत्यक्ष अनुभव ही सम्पूर्ण कारगर ज्ञानार्जन का आधार है, फिर भी प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के अवसर बहुत सीमित हैं (आज की अपेक्षा उनकी संख्या आगे अधिक हो सकती है)। कभी-कभी कोई वास्तविक पदार्थ अत्यधिक जटिल, दीर्घाकार, लघु, तीव्रगामी या मन्दगति हो सकता है। ऐसी परिस्थितियों में प्रत्यक्ष अनुभव के बदले किसी मॉडेल, फिल्म या फिल्मपट्टी की सहायता से कहीं अधिक सरलता से ज्ञानार्जन हो सकता है। दूर तक फैली किसी फ़ैक्टरी के विभिन्न विभागों और अनुभागों को जाकर देखने के बदले फ़ैक्टरी का मॉडेल अध्ययन की दृष्टि से प्रायः अधिक उपयोगी और सहायक होता है। महत्त्वपूर्ण बातों को या मौलिक यंत्र-रचना को समझाने या उस पर ज़ोर देने के लिए हम प्रायः ऐसे मॉडेलों का प्रयोग करते हैं जिनमें विद्यार्थियों का ध्यान दूसरी ओर खींचनेवाले विवरण नहीं होते।

जो चीज़ें बहुत दूर हैं अथवा आसानी से प्राप्त नहीं की जा सकतीं उनका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकना हमेशा सम्भव नहीं होता। अधिकांश लोगों के लिए यह सरल नहीं है कि कश्मीर की यात्रा करें और वहाँ जाकर देखें कि सेब कैसे पैदा किए जाते हैं तथा झेलम नदी पर नावों में पर्यटक किस तरह रहते हैं। लेकिन कश्मीर की फिल्मी-सैर तो सभी लोग बिना किसी कठिनाई के कर सकते हैं। हमारे देश की अनेक सफल प्रयोजनाएँ इतनी दूर-दूर हैं कि बहुतेरे लोग वहाँ जा नहीं सकते। इन प्रयोजनाओं के विकास को और उनके परिणामों को बताने-समझाने

४—ई० डेल—'ऑडियो-विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग'।

५—ई० डेल—'ऑडियो-विज़ुअल एड्स इन टीचिंग'।

के सर्वोत्तम उपाय दृश्य-श्रव्य साधन ही हैं। एवरेस्ट की चोटी पर पहुँचने के मार्ग का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करना हमारे लिए प्रायः असम्भव है, पर ब्रिटेन के प्रसिद्ध सूचना-चित्र 'कान्क्वेस्ट आफ़ एवरेस्ट' से हमें उस मार्ग की स्पष्ट धारणा सरलता से हो सकती है जिसे तेनसिंह और उसके साथियों ने हिमालय के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के लिए अपनाया था।

दृश्य-श्रव्य साधन न केवल उन चीज़ों को देखने में हमारी सहायता करते हैं जो हमसे दूर स्थित हैं बल्कि उन चीज़ों को देखने में भी सहायता करते हैं जो समय की दृष्टि से भी हमसे दूर हैं। अतीत की घटनावली के बारे में हम निस्संदेह उसी तरह पढ़ सकते हैं जिस तरह आज की। ऐसे लोग हैं जिन्होने व्यापक और विवेकपूर्ण अध्ययन के फलस्वरूप शिवाजी, राजा राममोहन राय अथवा अब्राहम लिंकन के युग के सम्बन्ध में अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है, लेकिन आज कितने विद्यार्थियों से अतीत का ऐसा अध्ययन करने की आशा की जा सकती है? दृश्य-श्रव्य साधनों की सहायता से अतीत के पुनर्निर्माण की जैसी स्पष्ट अवधारणा सम्भव है वैसी क्या पुस्तकों के अध्ययन से प्राप्त होगी? जिन विद्यार्थियों ने राममोहन राय अथवा लिंकन के सम्बन्ध में अध्ययन किया हो उन्हें 'राजा राममोहन राय'[६] अथवा 'एब लिंकन इन इलिनॉएस'[७] नामक फिल्में देखने दीजिए, और फिर उनसे यह प्रश्न पूछिए। उनका उत्तर चाहे जो हो, एक बात स्पष्ट है, जैसा पहले कहा जा चुका है, फिल्मी पुनर्निर्माण कभी भी अध्ययन का एकमात्र साधन नहीं हो सकता। एडगर डेल ने हमें इसीलिए सचेत किया है कि "दृश्य-श्रव्य साधनों से ज्ञानार्जन के अभिन्न अंग के रूप में पठन-पाठन का उपयोग तो सर्वदा किया ही जाना चाहिए।"[८]

विस्मरण की मात्रा घटाने और प्राप्त ज्ञान का स्थायित्व बढ़ाने में दृश्य-श्रव्य साधनों से सहायता मिलती है। अनुभवों को आनन्दप्रद और सार्थक बनाने की जो क्षमता इन साधनों में है उसी से ये दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं। यदि किसी प्रकरण में हमें एक बार रुचि उत्पन्न हो जाए और हम उसे समझ पाएँ तो उसे हृदयंगम करने, उसे याद रखने की दिशा में हम बहुत आगे बढ़ जाते हैं। प्रेसी का कहना है कि "यदि अन्य सारी बातें समान हों तो जिस अनुपात में कोई विषय हमारे लिए सार्थक होगा उसी अनुपात में वह हमें स्मरण रहेगा।"[९]

६। सन् १९६६ की पुरस्कृत फिल्म

७। यू० एस० आई० एस० की एक फिल्म

८। ई० डेल—'ऑडियो विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग'

९। एस० एल० प्रेसी—'साइकालोजी ऐंड दि न्यू एजुकेशन'
(ई० डेल द्वारा उद्धृत)

५ दृश्य-श्रव्य साधनों का उपयुक्त चयन और प्रयोग

साधनों का उपयुक्त चुनाव

दृश्य-श्रव्य साधनों की प्रभावकारिता उनके ठीक-ठीक चयन और प्रयोग पर निर्भर है। इन साधनों का चयन करते समय कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का ध्यान हमें रखना चाहिए।

१। साधन अध्ययन के प्रकरण से सम्बन्धित होना चाहिए

पाठों से सम्बन्धित कुछ साधन—फिल्में, फिल्मपट्टियाँ, चित्र, चार्ट—बहुत अच्छे हो सकते हैं। हो सकता है कि उनसे आपके विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति न हो। अध्ययन के प्रकरण का हमेशा ध्यान रखें। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य-विज्ञान संवंन्धी किसी पाठ को पढ़ाने में अध्यापक का उद्देश्य यदि उन क्षेत्रों के सम्बन्ध में विद्यार्थियों को कुछ ज्ञान कराना हो जिनमें मच्छर अण्डे देते और पैदा होते हैं, और यदि वह मच्छरों को नष्ट करने के कारगर तरीके भी विद्यार्थियों को समझाना चाहता हो तो वह 'द मस्किटो' नाम की नई और प्रसिद्ध फिल्म दिखाने के लिए चुनता है ; लेकिन फिर भी उसका पाठ असफल रह जाता है। पाठ के प्रकरण के सम्बन्ध में सार्थक जानकारी देने के बदले उस फिल्म में कुछ और ही है; उसमें मच्छर का जीवन-वृत्त तथा मानव रक्त पर उसके विष के प्रभाव का ही विवेचन है। किसी साधन की विशेषता अथवा उसके निर्माता की ख्याति जैसी भी हो, हमें इस बात को निश्चित रूप से जानना चाहिए कि बच्चे जिस प्रकरण को सीखनेवाले हों उसके सीखने समझने में

वह साधन कितना सार्थक है। हमें पूर्ण आश्वस्त हो जाना चाहिए कि कोई फिल्म, फिल्मपट्टी, चित्र या मॉडेल सम्बन्धित प्रकरण के सिखाने-समझाने में वस्तुतः पूर्ण प्रभावी साधन है।

२। साधन द्वारा प्रकरण का शुद्ध स्वरूप प्रस्तुत होना चाहिए

हो सकता है कि साधन प्रकरण से ही सम्बन्धित हो, फिर भी उससे विद्यार्थियों को सही-सही विचार न मिले। सुन्दरबन के सम्बन्ध में कोई फिल्म देख कर किसी कक्षा के विद्यार्थी यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वह क्षेत्र जंगलों और नदियों से भरा है, उसमें चीतों और जंगली पक्षियों की भरमार है और मनुष्य के नाते कुछ मछुए और लकड़ी काटनेवाले ही वहां रहते हैं। अन्य अधिकांश फिल्म-निर्माताओं की भाँति इस फिल्म के निर्माता ने सुन्दर, असामान्य और रोचक दृश्यों को चुन लिया है किन्तु इस क्षेत्र के एक महत्वपूर्ण भाग को छोड़ दिया है भले ही वह अधिक रोचक नहीं है। यह भाग है उन गाँवों का जो इस क्षेत्र की उस भूमि पर बसाए गए हैं जो कृषि योग्य बनाई गई है। इन गाँवों में हज़ारों परिवार रहते हैं जो अपने कठोर परिश्रम से कलकत्ता आने वाले धान का बहुत बड़ा अंश वहां उपजाते हैं। जिन दृश्य-साधनों में पूरी-पूरी बात न बताई गई हो उनका उपयोग बड़ी सावधानी से किया जाता है ताकि उन्हें देख कर भ्रामक सामान्यीकरण न किए जाएँ।

फिर, कुछ दृश्य-श्रव्य साधनों में संबंधित विषय के सभी पहलुओं का विवेचन मिल सकता है पर पुराने हो जाने के कारण वे शिक्षण-क्षेत्र में अधिक उपयोगी नहीं हो सकते। देश की स्वाधीनता के पहले 'लायलपुर फ्रूट प्रॉडक्ट्स लेबोरेटरी' द्वारा फल-संरक्षण के सम्बन्ध में एक फिल्म तैयार की गई थी। उसे देखना-दिखाना आज कौन पसन्द करेगा? जब फिल्म बनी थी तब से आज तक फल-संरक्षण की तकनीक और उत्पादन के उपकरण में काफ़ी परिवर्तन हो चुके हैं। सन १९४८ में दिल्ली के सम्बन्ध में बनी एक फिल्मपट्टी कक्षाओं में प्रयोग की दृष्टि से आज प्रायः निरर्थक हो गई है। अध्ययन के कुछ क्षेत्रों में परिवर्तन बहुत तेज़ी से होते हैं और इसलिए उनके सम्बन्ध में अद्यतन साधनों का चुनाव करने में सावधानी से काम लेना चाहिए।

३। साधन विद्यार्थियों के अनुभव और उनकी समझ के उपयुक्त होने चाहिए

साधनों का चयन करते समय अध्यापक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वे बच्चों के अनुभव और उनकी समझ के अनुकूल हों। बच्चों के औसत स्तर के अनुकूल न होने पर वे कभी भी सहायक न हो सकेंगे। हो सकता है कि कोई फिल्मपट्टी उत्तम हो, पर वह

छोटी कक्षा के लिए अत्यधिक कठिन हो सकती है। ब्रे की फिल्म 'टाइड्स ऐण्ड दि मून' (ज्वार-भाटा और चन्द्रमा) भूगोल के स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए बहुत ही साधारण और सरल हो सकती है, यद्यपि हाईस्कूल की उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिए वह बहुत ही शिक्षाप्रद है।

यह भी समझ लेना चाहिए कि किसी साधन की उपयुक्तता सदैव उस साधन पर ही निर्भर नहीं रहती। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य-विज्ञान सम्बन्धी कोई प्रकरण किसी फिल्मपट्टी की सहायता से समझ में न आ सके; किन्तु जब एक दूसरे साधन-मॉडेल-का प्रयोग किया जाता है तो वही प्रकरण बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। जैसा डेल ने कहा है, "वस्तुतः प्रश्न यह नहीं है कि कोई विशिष्ट सामग्री प्रयोग में लाई जाने पर पर्याप्त अथवा उपयुक्त सिद्ध होती है या नहीं, बल्कि यह कि एक सुनियोजित अध्ययन के अंग के रूप में वह उपयोगी है या नहीं।"[१०]

४। प्रयुक्त साधन विद्यार्थी के परिवेश के लिए अपरिचित न होने चाहिए

उदाहरण के लिए, कोई अध्यापक सफ़ाई सम्बन्धी पाठ पढ़ाने के लिए एक अत्युत्तम विदेशी फिल्म चुनता है जिसमें विषय का पूरा पूरा दिग्दर्शन कराया गया है। निरापद जल की व्यवस्था की आवश्यकता, भोजन और दूध की सुरक्षा तथा कूड़ा करकट को बहाने और लोगों तथा स्थानों को स्वच्छ रखने की आवश्यकता आदि के बारे मे वांछनीय बातें स्पष्ट रूप से दिखाई गई हैं। किन्तु यह होते हुए भी हो सकता है कि पाठ बहुत सफल न हो, क्योंकि फिल्म में ऐसी दृश्यावली और ऐसी तकनीकें प्रस्तुत की गयी हैं जो छात्रों के परिवेश के लिए बिल्कुल अपरिचित हैं।

५। साधन अच्छी हालत में होने चाहिए

दृश्य-श्रव्य साधनों के चयन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है उनकी वस्तुगत स्थिति। फिल्में, फिल्मपट्टियाँ, चित्र, चार्ट, नक्शे, मॉडेल आदि जब नये होते हैं तब सामान्यतः उनकी स्थिति सन्तोषजनक होती है; किन्तु यदि उनके प्रयोग और परिरक्षण में पर्याप्त सावधानी न बरती गई तो कुछ पुराने पड़ते ही उनकी हालत इतनी खराब हो जाती है कि उनका प्रयोग करने में जो समय और श्रम लगता है वह व्यर्थ जाता है; भले ही वे साधन स्वयं बहुत मूल्यवान हों। शिक्षण में सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से दृश्य-श्रव्य साधनों का हम जब भी चयन करें, हमें देख लेना चाहिए कि वे ठीक

१०। ई० डेल—'ऑडियो-विज़ुअल मेथड्स इन लर्निंग'।

हालत में हैं कि नहीं। यदि किसी फिल्म का साउंड-ट्रैक टूट गया है तो उसे चुनना बेकार है। जो चित्र हम बच्चों को दिखाएँ वे स्पष्ट और तेज़ रंगों में होने चाहिए। टूटे हुए मॉडेलों, फटे हुए नक्शों, चिटकी हुई स्लाइडों और बहुत पुराने चार्टों की आधी उपयोगिता समाप्त हो जाती है।

६। शिक्षणात्मक टिप्पणी से युक्त साधन को प्राथमिकता देनी चाहिए

हाल ही में बनी अनेक फिल्मों, फिल्मपट्टियों ओर स्लाइडों के साथ शिक्षणात्मक टिप्पणियाँ दी जाती हैं। ये टिप्पणियाँ बहुत ही उपयोगी हैं। अध्यापकों के लिए यह सम्भव नहीं है कि कक्षा में प्रयोग में लाई जानेवाली सभी फिल्मों और फिल्मपट्टियों को वे पहले से ही देख रखें; पर उनकी विषयवस्तु को जानने समझने के लिए इन टिप्पणियों को वे अवश्य पढ़ सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान ने ऐसी फिल्मों पर टिप्पणियाँ तैयार करने का काम अपने हाथ में लिया है जिनका उपयोग कक्षाओं में किया जा सकता है। भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् की दूसरी बैठक के कार्यवृत्त में लिखा है कि 'आयात की गई फिल्मों के ठीक-ठीक उपयीग को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से यह प्रस्ताव किया जाता है कि केन्द्रीय फिल्म पुस्तकालय सम्बन्धित फिल्मों के बारे में ऐसे वृत्त-विवरण और ऐसी टिप्पणियाँ तैयार करने का दायित्त्व स्वयं स्वीकार करे जिनमें उनका ठीक-ठीक उपयोग समझाया गया हो, अनुवर्ती कार्य-कलापों का निर्देश किया गया हो और फिल्म के साथ समाकलित की जा सकनेवाली अन्य सामग्री का भी निर्देश हो। यह विवरण और टिप्पणियाँ पुस्तिका के रूप में प्रकाशित की जा सकती हैं और उसकी प्रतियाँ पुस्तकालय के सदस्यों द्वारा किसी फिल्म की माँग होने पर उन्हें दी जा सकती हैं। सदस्य-संस्थाएँ इन पुस्तिकाओं को अपनी सन्दर्भ-मिसिल में सुरक्षित रख सकती हैं।" फिल्मपट्टियों और स्लाईडों पर वर्णनात्मक टिप्पणियाँ तैयार करने का काम संस्थान ने प्रारम्भ कर दिया है।

७। अत्यधिक साधनों का अनावश्यक प्रयोग न किया जाना चाहिए

आजकल कई प्रकार के दृश्य-श्रव्य साधन उपलब्ध हैं, इसलिए यह सम्भावना है कि कुछ अधिक उत्साही अध्यापक, अनेक साधनों का अनावश्यक प्रयोग करें। उदाहरण के लिए, यदि कोई अध्यापक किसी विशेष कारण के विना कोको के पेड़ और फलियाँ दिखानेवाली फिल्म का प्रदर्शन करने के वाद इन पेड़ों और फलियों के चित्र भी विद्यार्थियों को दिखाता है तो अपना और अपने विद्यार्थियों का समय नष्ट करता है।

८। सहज साधनों की प्राथमिकता होनी चाहिए जब कि वैज्ञानिक साधन हमारे देश में सहज लभ्य नहीं

दृश्य-श्रव्य साधनों के चयन में एक और महत्त्वपूर्ण वात है। पहले कहा जा चुका है

कि अपेक्षाकृत सरल और साधारण साधनों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। फिल्म एक अत्युत्तम साधन है, किन्तु जहाँ चार्टों, मॉडिलों अथवा अचल चित्रों के प्रयोग से सामान्यतः उत्तम परिणाम उपलब्ध हो सकते हों, वहाँ फिल्म जैसे खर्चीले साधन के प्रदर्शन में समय नष्ट करना ठीक नहीं होगा। किन्तु जहाँ तुलनात्मक दृष्टि से फिल्म बहुत प्रभावपूर्ण साधन जान पड़े, वहाँ उसके प्रयोग में होनेवाला श्रम और व्यय सार्थक होगा।

६। साधन ऐसा होना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में सुरुचि विकसित हो

अध्ययन के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में साधनों के संबंध में यह प्रश्न शायद उत्पन्न न हो, किन्तु अध्ययन की विभिन्न स्थितियों में यही साधन बच्चों की रूचि और उनके व्यवहार में काफ़ी परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं। अध्यापकों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों में यह सतर्कता भी है कि कक्षा में शिक्षणाधीन बच्चे इन साधनों को देखने और समझने में चूक न जाएँ और किसी अशुद्ध या अपूर्ण साधन से कोई हानिकर और अशुद्ध सामान्यीकरण निर्धारित न कर लें।

साधनों का कारगर उपयोग

अध्यापक की तैयारी

साधनों का चयन हो जाने के बाद अध्यापक को अपनी तैयारी कर लेनी चाहिए। उसे यह जान लेना चाहिए कि साधनों में क्या-क्या दिखाया गया है और उसकी शिक्षण-योजना में वे किस तरह उपयोगी होंगे। किसी फिल्म या फिल्मपट्टी के सम्बन्ध में उपलब्ध शिक्षण-सामग्री को जब तक पढ़ न लिया हो अथवा स्वयं उसे देख न लिया हो तब तक कोई भी फिल्म या फिल्मपट्टी बच्चों को नहीं दिखानी चाहिए। फिल्मों या फिल्मपट्टियों की सूचियों में जो सार संक्षेप दिया रहता है केवल उसी पर निर्भर न रहना चाहिए। सावधानी से तैयार करने पर भी इनसे विषयवस्तु का आंशिक बोध ही होता है।

आजकल प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षणार्थियों को चुनी हुई फिल्मों, फिल्मपट्टियों और स्लाइडों को पहले से ही देख लेने के अवसर दिए जाते हैं। यद्यपि ऐसे अवसर बहुत कम ही मिलते हैं। सामान्यतः इन संस्थाओं द्वारा आयोजित शैक्षणिक प्रदर्शनियों में विभिन्न प्रकार के दृश्य-श्रव्य साधनों का अच्छा ज्ञान प्रशिक्षणार्थियों को प्राप्त हो सकता है। भावी अध्यापकों को उन सभी उपयोगी साधनों का लेखा रखना चाहिए जिन्हें देखने का अवसर उन्हें मिले। इन साधनों को खरीदने और उधार लेने की सुविधाओं का उल्लेख किए बिना यह विवरण पूरा नहीं होगा। संभवतः कुछ साधन कम खर्च में ही तैयार किए जा सकते हैं। इन्हें तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री के सम्बन्ध में यदि समय पर कुछ टीपें लिख ली जायँ तो बाद में बहुत सहायक हो सकती हैं।

विद्यार्थियों की तैयारी

दृश्य-श्रव्य साधनों के प्रयोग के लिए विद्यार्थियों द्वारा की जानेवाली तैयारी का महत्त्व अध्यापकों द्वारा की जानेवाली तैयारी से कम नहीं है। किसी फिल्म या फिल्मपट्टी का प्रदर्शन करने से पहले उसके प्रति विद्यार्थियों में उत्सुकता जागृत की जानी चाहिए। प्रदर्शन से पहले विद्यार्थियों को उन विशिष्ट बातों का संकेत दे देना चाहिए जो फिल्म या फिल्मपट्टी में ध्यान से देखनी हों। यदि फिल्म में बच्चों के लिए कोई भ्रामक बात हो तो फिल्म दिखाने से पहले उसे अच्छी तरह समझा देना चाहिए। यदि विद्यार्थियों को पहले से तैयार न किया गया और उनकी जिज्ञासा भलीभाँति जागृत न की गई तो उनकी कोई भी यात्रा सैर मात्र होगी। किसी जहाज़ को देखने के पहिले बच्चे जब इस बात की तैयारी करके जाते हैं कि वहाँ उन्हें क्या-क्या देखना है—जैसे नौचालनकक्ष में राडार, अग्नि-नियंत्रक उपकरण, प्रतिलुंठन उपकरण, पेय जल का आसवन-संयंत्र—तब निस्सन्देह उन्हें अधिकतम लाभ होता है।

उपयुक्त उपस्थापना

दृश्य-श्रव्य साधनों के प्रयोग में उनका उपयुक्त प्रस्तुतीकरण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। यदि प्रस्तुतीकरण में असफलता हुई तो सभी कुछ असफल हो जाता है। दृश्य-श्रव्य सामग्री यथासम्भव सर्वोत्तम स्थिति में और सर्वोत्तम ढंग से इस तरह प्रयोग में लाई जानी चाहिए ताकि कमरे में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति प्रयुक्त साधनों को आराम और सुविधा के साथ देख और सुन सके। जिन साधनों का प्रक्षेपण किया जाता है उनके सम्बन्ध में यह शर्त तभी पूरी की जा सकती है जब अन्य चार शर्तें पूरी की जाएँ—पर्दे सहित सारे उपकरण उत्तम कोटि के हों और अच्छी स्थिति में हों; उपकरणों का प्रयोग करनेवाले अध्यापक को उनके स्थापन और चालन का पूरा-पूरा प्रशिक्षण प्राप्त हो; अतिरिक्त आवश्यक उपकरण (जैसे बल्ब, उत्तेजक, दीप, ट्यूब) पास में ही रखे हों और अच्छी हालत में हों; पर्याप्त बड़ा कमरा हो जिसमें बैठने के लिए आरामदेह सीटों, पर्याप्त हवा, ध्वनि-सम्बन्धी उपयुक्त स्थितियों और कमरे में अंधेरा करने के लिए समुचित साधनों की ठीक-ठीक व्यवस्था हो। कक्षा के सामान्य कमरों में इस अन्तिम शर्त को पूरा कर सकना कठिन हो सकता है, किन्तु जिन कमरों में नियमित रूप से फिल्में दिखाई जाती हों उनमें आदर्श स्थितियों की व्यवस्था अवश्य की जा सकती है। कलकत्ता के समीप एक प्रशिक्षण-केन्द्र में जिसके साथ लेखक का भी कुछ सम्बन्ध था—कुछ वर्ष पहले एक महत्त्वपूर्ण फिल्म दिखाई गई थी। उसकी शैक्षणिक उपयोगिता और महत्ता

प्रभावहीन रही क्योंकि जिस कमरे में उसे दिखाया गया वह सन्तोषजनक नहीं था। मई का महीना, लगभग तीन बजे अपराह्न का समय, नालीदार चादरों की छत सभी दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द और हवा के आने-जाने की कोई व्यवस्था नहीं ; छोटा-सा कमरा इतना ठसाठस और गरम हो गया कि फ़िल्म देखनेवालों (जिनमें लेखक भी था) का सारा ध्यान केवल इस बात पर रहा कि फ़िल्म कब ख़त्म होती है।

सामान्य अप्रक्षेपित साधनों के प्रयोग में भी ऊपर बताई चारों शर्तें साधारणतः लागू होती हैं। श्यामपट्ट अथवा फ्लैनेलपट्ट अच्छी हालत में होने चाहिए। हमारे देश के अधिकांश स्कूलों में इन्हें न तो ठीक ढंग से रखा जाता है और न ठीक ढंग से उनकी मरम्मत ही कराई जाती है। शायद ही कहीं वे ठीक हालत में और उपयुक्त रंग के रह पाते हैं। साधारण साधनों के प्रयोग में भी प्रशिक्षण उतना ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है जितना वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग में। भलीभाँति प्रशिक्षित अध्यापक के हाथों में श्यामपट्ट अथवा फ्लैनेलपट्ट नया ही रूप ले लेता है। बोर्डपिनें, रंगीन खड़िया, गत्ता, रंगीन कागज़, फ्लैनेल और रेगमाल के टुकड़े, पोस्टर बनाने के रंग-रोगन जैसा सामान हमेशा स्टाक में रहना चाहिए। बुनियादी औज़ार जैसे कैंचियाँ, चाकू, हथौड़ी, जम्बूर आदि भी विद्यालय में हमेशा होने चाहिए। अनिवार्य संभरण उपलब्ध न होने के कारण अनेक रोचक शिक्षण-स्थितियों को हानि पहुँची है। फ्लैनेलपट्ट, सूचनापट्ट और श्यामपट्ट से युक्त कमरे काफ़ी बड़े होने चाहिए; और उनमें प्रकाश तथा संवातन की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। आरामदेह सीटों की व्यवस्था तो हर कमरे में अनिवार्य है।

पर्याप्त अनुक्रिया

अनुक्रिया विषय के अनुसार बदलती है। सामान्यतः महत्त्वपूर्ण बातों पर ज़ोर दिया जाता है और सम्बन्धित प्रकरण पर चर्चा होती है। यदि अध्यापक देखता है कि विद्यार्थियों ने सारी बातें स्पष्ट रूप से नहीं समझीं तो, उन्हें भलीभाँति समझाने के उद्देश्य से, फ़िल्म को दुबारा पर्दे पर प्रक्षिप्त कराने या संबंधित साधन को फिर प्रदर्शित करने की व्यवस्था करता है। भौगोलिक सन्दर्भों को नक्शेपर दिखाना चाहिए। यदि प्रदर्शित साधन दस्तकारी से सम्बन्धित हों तो प्रदर्शित तकनीकों का व्यावहारिक अभ्यास अनुक्रिया में शामिल करना चाहिए। कुछ विषयों के साधन स्कूली यात्रा में रुचि उत्पन्न कर सकते हैं। सीखने की इच्छा स्थायी नहीं भी हो सकती, इसलिए इस प्रकार की यात्राएँ यथासम्भव शीघ्र ही पूरी की जानी चाहिए।

दूसरा भाग

दृश्य-श्रव्य साधन

६ क्षेत्रिक यात्राएँ (अथवा यात्राएँ)

क्षेत्रिक यात्राएँ तथा यात्राएँ दृश्य-श्रव्य साधनों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। दुर्भाग्यवश भारत में अनेक शैक्षणिक संस्थाएँ इस साधन का उतना उपयोग नहीं करतीं जितना उन्हें करना चाहिए। क्षेत्रिक अथवा स्कूली यात्रा की परिभाषा यह की जा सकती है कि विद्यार्थियों का अनुभव बढ़ाने के लिए अध्यापकों द्वारा आयोजित कोई भी अध्ययन-यात्रा एक स्कूली-यात्रा है।

माता-पिता अथवा अध्यापक बच्चों को जो कुछ बताते-समझाते हैं उससे बच्चे सम्बन्धित वस्तु के विषय में एक धारणा बना सकते हैं। किसी वस्तु के सम्बन्ध में पढ़ कर भी वे अपने विचार स्थिर कर सकते हैं। चित्र उनके ज्ञान को अधिक सार्थक बनाने में सहायता करते हैं; किन्तु प्रत्यक्ष यथार्थ अनुभूति द्वारा उपलब्ध ज्ञान इन सब से बिल्कुल भिन्न प्रकार का होता है। पुस्तकों में दिए गऐ फूलों के चित्र वाटिका के यथार्थ फूलों से, जिन्हें बच्चे सूँघ सकते हैं और अँगुलियों से स्पर्श कर सकते हैं, बिल्कुल भिन्न होते हैं।

फिर भी, यह सोचना ग़लत है कि बच्चे प्रत्यक्ष अनुभूति द्वारा ही सीख सकते हैं। हो सकता है कि वाटिका में कोई पुष्प—मान लीजिए गुलाब—वाटिका के किसी एक भाग में दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक भरे-पूरे और रंगीन दिखाई दें। वे उन फूलों की प्रशंसा अवश्य करेंगे किन्तु दूसरे भाग के फूलों की अपेक्षा वे अधिक अच्छे क्यों हैं इसका कारण उनकी समझ में तब तक नहीं आ सकता जब तक अध्यापक उहें यह न समझाएँ कि बड़े फूलों को धूप और सम्भवतः खाद अधिक प्राप्त हुई है। उपयुक्त मार्ग-दर्शन और सहायता प्राप्त होने पर सम्भावना यही है कि

बच्चे नई चीज़ों के सम्बन्ध म ज्ञान प्राप्त करने के लिए और अधिक प्रश्न पूछेंगे। विद्यार्थियों को यात्रा और भ्रमण से जो ज्ञान प्राप्त होना चाहिए उसे प्राप्त करने में यदि उनको अध्यापकों से मार्ग-दर्शन और सहायता नहीं मिलती तो ऐसी यात्राओं का कोई मूल्य या महत्त्व नहीं रह जाता।

बच्चे चाहे किसी वाटिका में जाएँ या किसी डाकघर, रेलवे स्टेशन या हवाई अड्डे पर जाएँ, जो बातें वे वहाँ सीख सकते हैं उनकी संख्या अनन्त है। इसलिए यह बात महत्त्वपूर्ण है कि यात्रा में बच्चे जो कुछ सीखना चाहते हों उनके सम्बन्ध में एक योजना बना लें। योजना चाहे जो हो, सभी बच्चे एक ही ढंग से सारी बातें नहीं सीखेंगे। कुछ बच्चों को सामान्य उत्तरों से ही सन्तोष हो जाता है; किन्तु जो बच्चे बौद्धिक दृष्टि से सजग होते हैं वे बातों की गहराई तक जाते हैं। जब तक उनकी जिज्ञासा तुष्ट नहीं हो जाती, जब तक उनकी पूर्वानुभूतियों के साथ वर्तमान अनुभूतियों का मेल नहीं बैठता, तब तक वे प्रश्न पूछते ही रहेंगे। हो सकता है कि उन्हें इस उत्तर से सन्तोष न हो कि गुलाब के बड़े फूलों को धूप और खाद अधिक मिली है। वे पूछ सकते हैं: एक ही क्यारी में एक समान खाद और धूप की सुविधा पाने पर भी कुछ गुलाब छोटे क्यों हैं? इस प्रकार के अंतर का कोई अन्य कारण होना ही चाहिए; हो सकता है कई कारण हों। क्या लगाई गई क़लमों में अन्तर था? हमें बताया गया है कि गुलाब के हर पौधे पर ध्यान देना ज़रूरी होता है। तो क्या हर पौधे पर एक-सा ध्यान नहीं दिया गया?

व्यक्ति के विचारों और भावों को प्रभावित करके किसी स्थिति या संस्था को पूर्ण रूप से समझने में क्षेत्रिक-यात्रा सहायता कर सकती है। बच्चे जब किसी खान को देखने जाते हैं और खनिकों के कठोर और खतरनाक काम को देखते-समझते हैं तो स्वभावतः उनके प्रति उन्हें सहानुभूति होती है। उस समय उनके मन में अनेक प्रश्न उठ सकते हैं। क्या खनिकों को नवीनतम औज़ार और सुरक्षा-साधन दिए गए हैं? क्या खान में खनिकों को सस्ता और स्वास्थ्यप्रद भोजन देने की व्यवस्था की गई है? किसी दुर्घटना के समय तत्काल सहायता देने के लिए क्या उस क्षेत्र में कोई डाक्टर रहता है? संकट की स्थिति में उपयोग के लिए कितनी लिफ़्टें हैं?

क्षेत्रिक यात्राओं के और भी लाभ और महत्त्व हैं। अपने जीवन की वृत्ति का चयन करने में विद्यार्थियों को सहायता देने के उद्देश्य से किसी यात्रा की योजना बनाई जा सकती है। किसी मेडिकल कालेज या इंजीनियरी फ़र्म का भ्रमण और निरीक्षण करने वाले किसी विद्यार्थी के मन में डाक्टर या इंजीनियर बनने की महत्त्वाकांक्षा उत्पन्न हो सकती है। किसी उपचर्या महाविद्यालय का निरीक्षण करने के बाद कोई लड़की उपचर्या-वृत्ति को अपनाना पसन्द कर सकती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक सहायता के लिए यात्राएँ आयोजित की जा सकती हैं। हमारे गावों में स्वास्थ्य, सड़कें, अशिक्षा या निरक्षरता जैसी कुछ-न-कुछ समस्याएँ हमेशा रहती हैं।

इनके हल करने में विद्यार्थियों की सेवा का उपयोग किया जा सकता है। बच्चों को अपने समाज में किए जानेवाले विभिन्न कार्यों का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए। सुनियोजित यात्राओं में जब बच्चे कुम्हारों, जुलाहों, लोहारों व्यापारियों आदि के काम को और उनके जीवन को देखते हैं तब उनकी समझ में आता है कि समाज के जीवन को सम्भव बनाने में किस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपना काम करता है।

क्षेत्रिक यात्राएँ : पाठ्यचर्या के नियमित अंग के रूप में

ज्ञानार्जन का सुन्दर साधन होने के कारण क्षेत्रिक-यात्रा को पाठ्यचर्या का नियमित अंग बनाना आवश्यक है। ज्ञानार्जन की इस पद्धति का उपयोग पाठ्यचर्या के प्रायः सभी विषयों में किया जा सकता है। जैसा पहले कहा जा चुका है, हमारे देश की बहुत ही कम शैक्षणिक संस्थाओं में क्षेत्रिक यात्राओं का नियमित कार्यक्रम रहता है। पश्चिमी देशों में स्थिति इससे नितान्त भिन्न है। अमरीका के प्रसिद्ध दृश्य-श्रव्य विशेषज्ञ एडगर डेल ने लिखा है, "·····सामान्य रूप से हमारे स्कूल क्षेत्रिक यात्राओं का व्यापक और अधिकाधिक प्रभावपूर्ण उपयोग कर रहें हैं। यात्राएँ निश्चित करने और उनकी योजना बनाने में अध्यापकों की सहायता के लिए स्कूल के व्यवस्थापक बुलेटिन और संदर्शिकाएँ प्रकाशित करते हैं। उदाहरण के लिए लास एंजिल्स के स्कूल 'इट्स वर्थ ए विज़िट' नाम से स्कूली यात्राओं का एक सूचीपत्र प्रकाशित करते हैं जिसमें १५० क्षेत्रिक यात्राओं की सूची दी गई है और प्राथमिक स्कूल-कार्यक्रम के सन्दर्भ में इन यात्राओं का विवेचन किया गया है।"[११] हमारे देश में ऐसी संदर्शिकाएँ उपलब्ध नहीं हैं (आशा की जाती है कि दृश्य-श्रव्य शिक्षा का राष्ट्रीय संस्थान शीघ्र ही ऐसी सामग्री तैयार करेगा), पर हमारे देश में ऐसे स्थानों की कमी नहीं है जहाँ विद्यार्थियों को जाना चाहिए ; हमारे अध्यापक उपयुक्त योजना बनाने में पूर्ण सक्षम हैं। बड़े नगरों में या उनके समीप संग्रहालय, अजायबघर, दमकल स्टेशन, फ़ार्म, समाचारपत्र, फ़ैक्टरियाँ, बहुविभागीय भंडार, बैंक, सरकारी संस्थाएँ, आदि स्थानों को प्रति वर्ष पढ़ाई के घंटों में कम खर्च में आसानी से देखा जा सकता है।

क्षेत्रिक यात्राओं के विभिन्न प्रकार

प्रयोजन के अनुसार क्षेत्रिक यात्रा विविध प्रकार की हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में गाँव के हाट की, खेतों की, रेलवे स्टेशन की या डाकघर की लघुयात्रा हो सकती है। फूलों और पौधों के अध्ययन के लिए स्कूल की वाटिका का ही निरीक्षण किया जा सकता है। ऐसी यात्राएँ एक स्कूली घंटे में ही पूरी की जा सकती हैं। नगरों में किसी फ़ैक्टरी, संग्रहालय,

---

११। ई० डेल—'ऑडियो-विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग'।

अजायबघर, नक्षत्रशाला अथवा किसी ऐतिहासिक स्मारक को देखने के लिए आधे दिन के लिए—प्रायः मध्याह्न अवकाश के बाद वाले सारे घंटों के लिए—यात्राएँ की जा सकती हैं। ऐतिहासिक स्थानों अथवा परियोजना-क्षेत्रों की यात्राओं में अधिक समय लगता है—दो-तीन दिन अथवा पूरा सप्ताह। कुछ शैक्षणिक संस्थाएँ छुट्टियों के दौरान देश के महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्राओं की व्यवस्था भी करती हैं। स्थानों की निर्धारित संख्या के अनुसार ऐसी यात्राओं में दो तीन सप्ताह या और अधिक समय भी लग जाता है। पश्चिमी देशों में क्षेत्रिक यात्राओं को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है कि कभी-कभी पूरा स्कूली वर्ष ही क्षेत्रिक यात्रा में लगा दिया जाता है और विदेशों की यात्रा कराई जाती है।

यात्राओं की संख्या सीमित करनेवाली कठिनाइयाँ

क्षेत्रिक यात्राओं की संख्या सीमित करनेवाली प्रमुख समस्याएँ हमारे देश में तीन हैं। योंतो सभी स्कूलों में कुछ उद्योगी और उत्साही अध्यापक होते हैं जो ऐसी यात्राओं को आयोजित



अपने अध्यापक के निर्देशन में सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता के छोटी कक्षाओं के कुछ विद्यार्थी एक उद्यान में स्वतः अन्वेषण की आनन्ददायक पद्धति से पौधों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं।

करने के लिए उत्सुक और सक्षम हैं, पर यदि स्कूल का प्रधान पुरानी परंपरा का हुआ तो उन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं मिलता। लेकिन जैसे-जैसे भारत में दृश्य-श्रव्य शिक्षा का विकास होगा वैसे-वैसे क्षेत्रिक यात्रा की शैक्षणिक सम्भावनाओं को लोग अधिकाधिक समझते जाएँगे और यह कठिनाई क्रमशः दूर होती जाएगी। आशा है कि दृश्य-श्रव्य शिक्षा की राज्य परिषद् इस बात की निश्चित व्यवस्था करेगी कि राज्य के प्रत्येक मान्यताप्राप्त हाई स्कूल अथवा उच्चतर माध्यमिक स्कूल द्वारा स्कूली यात्राओं का एक न्यूनतम कार्यक्रम पूरा किया जाए।

एक कठिनाई और है। क्षेत्रिक यात्राओं में पैसा खर्च होता है, इसलिए इनका विचार ही छोड़ दिया जाता है। जब सरकार से पर्याप्त अनुदान मिलने लगेगा और स्कूल स्वयं अपने फ़ंड एकत्र करेंगे तब यह कठिनाई भी दूर हो जाएगी। अनेक राज्य सरकारें अब दूरस्थ स्थानों की उन स्कूली यात्राओं के लिए पचास प्रतिशत खर्च देती हैं जिनके लिए राज्य के शिक्षा संचालक का अनुमोदन प्राप्त हो। दूर-दूर के स्थानों की यात्रा करने के लिए अभिभावकों से भी विशिष्ट योगदान माँगा जा सकता है। जिन बच्चों के माँ-बाप बहुत ग़रीब हों उन्हें ऐसी आयोजनाओं से अलग न किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में ग़रीब विद्यार्थी कोष से सहायता ली जा सकती है, जो स्कूलों में प्रायः एकत्र किया जाता है।

यद्यपि स्कूल शैक्षणिक यात्राओं का महत्त्व भलीभाँति समझते हैं फिर भी प्रयोजना-केन्द्रों तथा ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्ववाले स्थानों पर विद्यार्थियों की बड़ी-बड़ी टोलियों के लिए भोजन और ठहरने के स्थान की व्यवस्था करने में उन्हें कठिनाई का सामना करना पड़ता है। रेल द्वारा टोलियों को उसी दिन घर वापस ला सकना प्रायः असम्भव होता है। इस समस्या के दो समाधान हैं। कुछ स्कूल उन युवक-छात्रावासों से लाभ उठा सकते हैं जिनका संगठन अभी हाल ही में देश के विभिन्न भागों में किया गया है। बच्चों और उनके साथ जानेवाले अध्यापक के लिए इन छात्रावासों में निःशुल्क आवास की व्यवस्था की जाती है। खाना बनाने के बर्तन भी दिए जाते हैं और टोलियाँ स्वयं अपना भोजन बना सकती हैं। अधिकांश राज्यों में राज्य-परिवहन मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्रा की व्यवस्था करता है। स्कूल इस व्यवस्था से लाभ उठा सकते हैं। उदाहरण के लिए पश्चिम बंगाल में राज्य-परिवहन सस्ते किराए पर प्रतिवर्ष डायमंड हार्बर, बोटैनिकल गार्डेन्स, हरिनघाटा की राजकीय डेयरी और डी० वी० सी० क्षेत्र जैसे महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्रा की व्यवस्था करता है। पिछले कुछ वर्षों में दिल्ली परिवहन ने दिल्ली के आस-पास के महत्त्वपूर्ण स्थानों के लिए यात्राओं की व्यवस्था विद्यार्थियों और पर्यटकों के लिए की है। दिल्ली की 'आटो-इण्डिया को-अपारेटिव सोसाइटी' ने दिल्ली और जयपुर के बीच उपयुक्त किराए पर एक पर्यटक यात्रा-सेवा चालू की है। गुजरात

में भावनगर, राजकोट, पोरबन्दर, जूनागढ़ और द्वारका जैसे स्थानों के लिए राज्य परिवहन द्वारा विद्यार्थियों और पर्यटकों के लिए विशिष्ट यात्रा की व्यवस्था की जाती है।

क्षेत्रिक यात्रा की सफलता की शर्तें

किसी क्षेत्रिक यात्रा का प्रयोजन चाहे जो हो, यदि उससे अधिकतम लाभ उठाना हो तो नीचे लिखी शर्तें अवश्य पूरी की जानी चाहिए :

(१) स्कूली यात्रा अनिवार्यतः स्कूल के कार्य से सम्बन्धित होनी चाहिए ताकि वह केवल दृश्य-दर्शन या मनबहलाव की सैर मात्र न रह जाए।

(२) यात्रा भलीभाँति सम्पन्न की जानी चाहिए। इसके लिए पहले से सावधानी पूर्वक योजना बनाना आवश्यक है। जिस स्थान की यात्रा करनी हो उसका निश्चय कर लेने के बाद यात्रा के लिए उत्तरदायी अध्यापक को सम्बन्धित अधिकारियों से अनुमति (यदि आवश्यक हो) ले लेनी चाहिए। इसके बाद उसे परिवहन सम्बन्धी सुविधाओं का पता लगाना चाहिए। उसे निश्चय कर लेना चाहिए कि समूची कक्षा यात्रा पर जाएगी या कक्षा की एक चुनी हुई टोली। यदि किसी दूरस्थ स्थान की यात्रा करनी हो तो अभिभावकों की अनुमति प्राप्त कर लेनी चाहिए। अभिभावकों की अनुमति प्रत्येक यात्रा के लिए अलग अलग ली जा सकती है या पूरे वर्ष भर के लिए एकबार सामान्य अनुमति प्राप्त की जा सकती है। किसी विशेष यात्रा के लिए अभिभावकों/माता-पिता को नीचे लिखे ढंग का पत्र भेजकर अनुमति ली जा सकती है :

अभिभावक का नाम और पता	संस्था का नाम और तिथि

प्रिय श्री/श्रीमती........................

इस संस्था की कक्षा......... के विद्यार्थी..................की एक शैक्षणिक यात्रा की योजना बना रहे हैं।

क्या आप कृपा करके..................को इस यात्रा में शामिल होने की अनुमति दे सकेंगे/सकेंगी ?

भवदीय
(अध्यापक के पूरे हस्ताक्षर)

प्रति विद्यार्थी खर्च का हिसाब लगा लेना चाहिए और आवश्यक रक़म जमा कर लेनी चाहिए। हो सकता है कुछ बच्चे यात्रा का ख़र्च न दे सकें। ऐसे योग्य विद्यार्थियों के लिए आवश्यक ख़र्च की माँग अध्यापक संस्था से कर सकता है। अथवा, जैसा पहले कहा जा चुका है, वह ग़रीब विद्यार्थी फ़ंड से सहायता ले सकता है। भोजन और आवास-जैसी समस्याएँ यात्रा प्रारम्भ करने से काफ़ी पहले लिखा-पढ़ी करके हल कर लेनी चाहिए। यात्रा के दौरान पहली जानेवाली पोशाक और साथ ले जानेवाले सामान के बारे में विद्यार्थियों को सख्त हिदायतें दी जानी चाहिए। यात्रा में साथ जानेवाले उत्तरदायी अध्यापक के पास प्राथमिक उपचार की औषध-पेटी अवश्य होनी चाहिए। उसे ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे बहुत अधिक थक न जाएँ और उनके नहाने-धोने आदि की पूरी व्यवस्था हो। यह वांछनीय है कि उत्तरदायी अध्यापक को उन सभी चीज़ों का पूरा-पूरा ज्ञान हो जो विद्यार्थियों को दिखानी हों। ऐतिहासिक इमारतों की यात्रा करते समय सामान्य पथ-निर्देशकों से बचना चाहिए।

(३) यात्रा के लिए विद्यार्थियों को पर्याप्तरूप से तैयार किया जाना चाहिए। उन्हें मालूम होना चाहिए कि यात्रा का प्रयोजन क्या है और उससे वे क्या सीख सकते हैं। यात्रा के प्रति विद्यार्थियों की रुचि और उत्सुकता जगाने के लिए पुस्तकों, नक्शों, चित्रों, अथवा अन्य उपलब्ध साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। मार्ग में और गन्तव्य स्थान पर जो वस्तुएँ देखी जा सकती हों उनकी एक सूची (साइक्लोस्टाइल की हुई अच्छी होगी) टोली के प्रत्येक सदस्य को दी जानी चाहिए। प्रश्न पूछने, अपनी टिप्पणियाँ तैयार करने, नक्शे या रेखाचित्र बनाने और फ़ोटो खींचने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(४) यह जानने के लिए कि यात्रा से बच्चों ने क्या सीखा, यात्रा के बाद पर्याप्त अनुवर्ती कार्य किया जाना चाहिए। चर्चा और विवेचन के लिए अवसर देना अत्यन्त आवश्यक है। यदि विद्यार्थी अपने स्कूली कार्य के साथ यात्रा का सम्बन्ध न समझें या यात्रा से प्राप्त जानकारी का महत्त्व न समझें तो क्षेत्रिक यात्रा दृश्य-दर्शन के लिए की गई सैर मात्र रह जाती है।

सामाजिक शिक्षा में क्षेत्रिक यात्राओं का महत्त्व

सामाजिक शिक्षा के कार्य में भ्रमण या क्षेत्रिक यात्रा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दृश्य-श्रव्य साधन का काम देती है। यदि चुने हुए ग्रामीणों को यह देखने-समझने का अवसर मिले कि अन्य क्षेत्रों में समस्याएँ कैसे सुलझाई जा रही हैं, तो न केवल इन समाधानों को वस्तुतः कार्यान्वित होते देखने का अवसर उन्हें मिलता है, बल्कि इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे अपने गाँव की समस्याओं के प्रति भी सजग हो जाते हैं। आगन्तुकों की उपस्थिति उन लोगों में अपने महत्त्व, अपनी सार्थकता और अपनी योग्यता की भावना उत्पन्न करती है, जो अपनी समस्याएँ सुलझाने में लगे होते हैं। इससे उन्हें प्रेरणा भी मिलती है

७ श्यामपट्ट या चाकबोर्ड

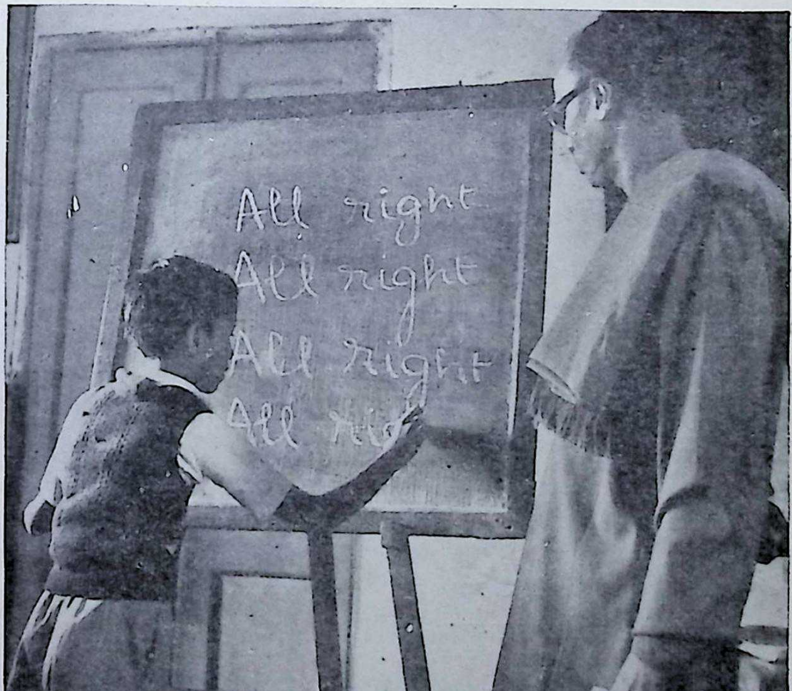
भारत में उपेक्षित एक स्कूल उपकरण

अध्यापकों को उपलब्ध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधनों में से एक है श्यामपट्ट। दुर्भाग्यवश भारत में वह सर्वाधिक उपेक्षित स्कूल उपकरण है। स्कूल भवनों का निर्माण करते समय कक्षाओं में श्यामपट्ट के लिए पर्याप्त स्थान रखने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। स्कूलों में श्यामपट्ट न तो उपयुक्त स्थान पर रखे जाते हैं और न उनकी हालत ही ठीक रहती है। सामान्यतः श्यामपट्ट साफ़ करनेवाले उपकरण का उपयोग ही नहीं किया जाता। जहाँ ये उपकरण हैं भी वहाँ या तो वांछनीय ढंग के नहीं हैं या बहुत ही उपेक्षित हालत में हैं।

यह सचमुच खेदजनक स्थिति है कि आज भारत में श्यामपट्टों का उतना प्रयोग नहीं किया जाता जितना तीस-चालीस वर्ष पहले अध्यापक करते थे। जब तक हमारे देश के प्रशिक्षण महाविद्यालय इस सम्बन्ध में अधिक ध्यान नहीं देते, तब तक इस महत्त्वपूर्ण साधन का ठीक-ठीक उपयोग नहीं किया जाएगा। दिल्ली स्थित दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान द्वारा श्यामपट्ट के उपयोग के सम्बन्ध में समय-समय पर विशिष्ट अल्पावधि पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाए तो अच्छा होगा।



छोटे बच्चे चाकबोर्ड पर लिखना पसंद करते हैं।



लेक व्यू हाईस्कूल, कलकत्ता के बालक-विभाग द्वारा वर्तनी सिखाने में श्यामपट्ट का प्रभावपूर्ण उपयोग किया जा रहा है।

श्यामपट्ट का महत्त्व

श्यामपट्ट या चाकबोर्ड आकर्षक वस्तु नहीं हैं, विशेषकर काले रंग का। किन्तु जब उसका ठीक-ठीक उपयोग किया जाता है तब वह बहुत ही प्रेरणादायक हो जाता है। स्वच्छता, शुद्धता और तेज़ी के मानक स्थापित करने में इसका महत्त्व बहुत अधिक है। वर्तनी को समझने में यह बच्चों की बड़ी सहायता करता है। किसी पाठ के दौरान श्यामपट्ट पर बनाया गया कोई निदर्श-चित्र समूची कक्षा का ध्यान पाठ की ओर आकृष्ट कर सकता है। श्यामपट्ट पर लिख कर और रेखा चित्र बनाकर अध्यापक पाठ की तात्त्विक बातों पर ज़ोर दे सकता है। कुछ रेखाओं के सहारे वह कोई नक्शा या चित्र बच्चों के सामने तत्काल प्रस्तुत कर सकता है। श्यामपट्ट एक ऐसा साधन है जो कक्षा में सदा उपलब्ध रहता है। उसके उपयोग के लिए न किसी तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता है, न उच्चकोटि के कलात्मक कौशल की। कोई अतिरिक्त उपकरण पास रखना भी ज़रूरी नहीं। कमरे में अँधेरा करने की प्रक्रिया में समय की बर्बादी भी नहीं करनी पड़ती।

किसी फिल्म या रेडियो प्रसारण-जैसे साधनों के प्रयोग में भी श्यामपट्ट एक अनिवार्य साधन होता है।

श्यामपट्ट के उपयोग से संबंधित महत्त्वपूर्ण बातें

श्यामपट्ट का उपयोग करते समय यदि नीचे लिखी बातें ध्यान में रखी जाएँ तो एक दृश्य-साधन के रूप में श्यामपट्ट की प्रभावकारिता और उपयोगिता बहुत बढ़ सकती है :

(१) स्वच्छ करनेवाले साफ़ उपकरण से या कपड़े से श्यामपट्ट को साफ़ करें, हाथ से या अंगुलियों से नहीं।

(२) ऊपर के बाएँ कोने से प्रारम्भ करें और सीधी पंक्तियों में लिखें।

(३) केवल महत्त्वपूर्ण बातें ही श्यामपट्ट पर लिखें। स्मरण रखें कि श्यामपट्ट विस्तारपूर्ण कार्य के लिए उपयुक्त नहीं होता।

(४) बड़े अक्षरों में और साफ़-साफ़ लिखें ताकि पीछे बैठे हुए विद्यार्थी भी आसानी से पढ़ लें।

(५) सामान्यतः प्रयोग में आनेवाले शब्दसंक्षेपों के अलावा अन्य शब्द-संक्षेपों का प्रयोग न करें।

(६) पहले से योजना बना लें कि श्यामपट्ट पर क्या लिखेंगे। कभी भी कोई नक्शा पहले से श्यामपट्ट पर बनाकर न रखें, न किसी पुस्तक का लगातार सहारा लेकर बनाएँ। ऐसा करने से बच्चों की दृष्टि में नक्शा बनाना एक सरल काम न रह जाएगा।

(७) कक्षा का कार्य प्रारम्भ होने से पहले ही श्यामपट्ट के लिए आवश्यक सब वस्तुएँ एकत्र कर लें—सफ़ाई-उपकरण, खड़िया, पटरी, परकार, फ़र्मे, स्टेंसिल अथवा अन्य सामग्री जो चित्रादि बनाने में सहायक हो। इन साधनों का प्रयोग करने का यह अर्थ नहीं कि अध्यापक में श्यामपट्ट का उपयोग करने का कौशल नहीं है।

यदि आपकी संस्था में कोई अपारदर्शी प्रक्षेपी (पार चित्र दर्शी) है तो उसका उपयोग नक्शों और रेखाचित्रों के खाके खींचने में किया जा सकता है। लेकिन खाके बनाने का काम बहुत जल्द पूरा करना चाहिए। एक नक्शे का खाका पूरा करने में दो मिनट से अधिक न लगना चाहिए।

(८) नक्शा या रेखाचित्र बना लेने के बाद विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित करने के लिए संकेतक का प्रयोग अवश्य करें।

(९) श्यामपट्ट के एक ही ओर खड़े हों।

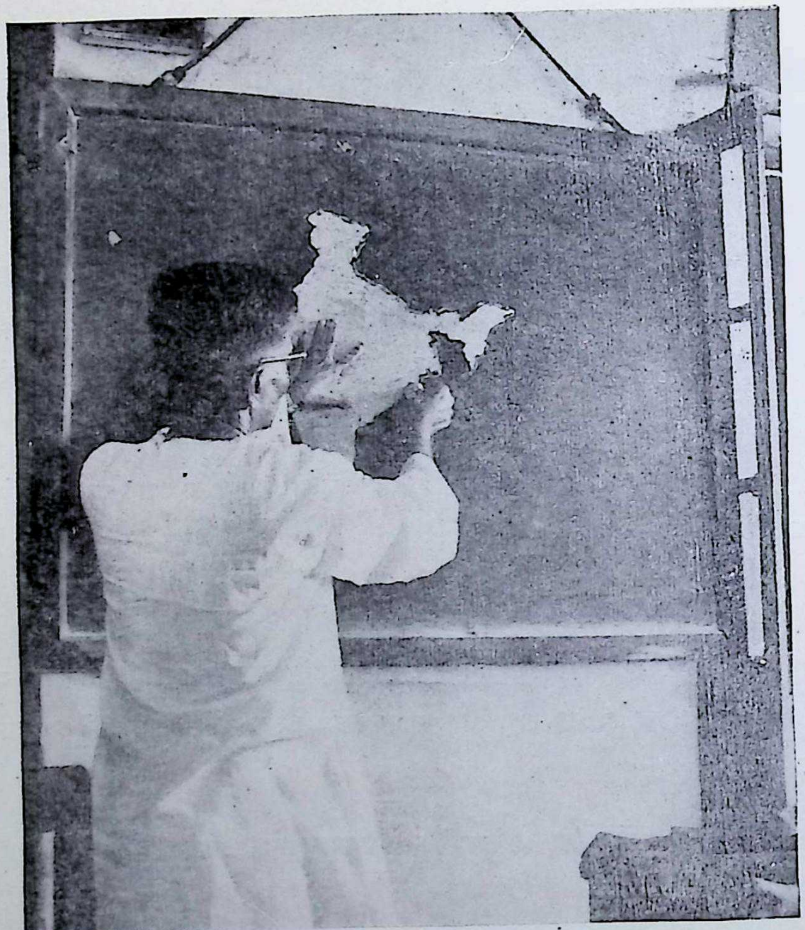
(१०) ध्यान रखें कि श्यामपट्ट बच्चों के दृष्टि-स्तर से बहुत ऊँचा न हो, प्राकृतिक या कृत्रिम प्रकाश श्यामपट्ट पर बराबर पड़ता रहे और सामनेवाली डेस्कों की पहली पंक्ति श्यामपट्ट से कम-से-कम आठ फुट दूर हो।

(११) ध्यान रखें कि प्रतिवर्ष कम-से-कम एक बार श्यामपट्ट को अवश्य सुधारा-सँवारा जाए।

फ़र्मे और स्टेंसिल

श्यामपट्ट पर फ़र्मे के चारों ओर अनुरेखन करके अच्छे रेखाचित्र बहुत जल्द बनाए जा सकते हैं। फ़र्मा एक ढाँचा होता है जिसे श्यामपट्ट पर रखकर रेखाचित्र बना लिया जाता है। फ़र्मा टीन, पतली लकड़ी या गत्ते से बनाया जा सकता है। भूगोल, विज्ञान और गणित के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों द्वारा ठीक-ठीक रेखाचित्र तत्काल बनाने के लिए फ़र्मों का उपयोग किया जा सकता है। अधिक आसान चीज़ों के रेखाचित्र श्यामपट्ट पर इन साधनों के बिना

ही बनाने की क्षमता होनी चाहिए। जानवरों, चिड़ियों, रेलों, वायुयानों तथा अन्य मनोरंजक चीज़ों के रेखाचित्र श्यामपट्ट पर फ़र्मों की सहायता से बनाना छोटे बच्चे बहुत पसन्द करते हैं।



यह अध्यापक बिना किसी साधन की सहायता लिए भारत का सुन्दर मानचित्र श्यामपट्ट पर बना सकता है। काम जल्दी पूरा करने के लिए वह फर्मे की सहायता लेता है। लेक न्यू हाईस्कूल, कलकत्ता के बालक-विभाग में अध्यापन का एक दृश्य।

स्टेंसिल बनाने के लिए पहले एक कागज़ पर वांछित रेखाचित्र बनाते हैं। फिर रेखाओं पर छेद करते जाते हैं। स्टेंसिल को श्यामपट्ट पर रखकर छिद्रित रेखाओं को डस्टर से थपथपाते हैं तो श्यामपट्ट पर एक धूमिल रेखाकृति बन जाती है। इस रेखाकृति को खड़िया से स्पष्ट कर देते हैं और एक सुन्दर रेखाचित्र बन जाता है।

श्यामपट्ट या चाकबोर्ड बनाने में प्रयुक्त सामग्री

श्यामपट्ट बनाने के लिए लकड़ी, स्लेट, शीशा, प्लास्टिक, कागज़ और सीमेंट के मिश्रण आदि का उपयोग किया जाता है। सस्ती होने के कारण लकड़ी का उपयोग सबसे अधिक किया जाता



इन्स्टीट्यूट आफ़ मेडिकल एजुकेशन, एस्० एस्० कर्नानी मेमोरियल अस्पताल, कलकत्ता में प्रयोग में आनेवाला शीशे का श्यामपट्ट।

है। अमरीका में स्लेट का उपयोग अधिकतर किया जाता है। स्लेट खर्चीली होती है। बड़े आकार के श्यामपट्ट के लिए यह कठिनाई से मिलती है। जहाँ दीवाल में श्यामपट्ट बनाना हो वहाँ शीशे के श्यामपट्ट बनाने की बात सोची जा सकती है। शीशे के श्यामपट्ट लकड़ी की अपेक्षा अधिक खर्चीले होते हैं, पर अधिक उपयोगी और टिकाऊ होते हैं। स्काटलैण्ड की शिक्षा-परामर्शदात्री परिषद् की १९४८ की रिपोर्ट में कहा गया है: "हमें शीशे के बने श्यामपट्टों के सम्बन्ध में बताया गया कि लगभग चालीस वर्ष पहले एक तकनीकी कालेज में ऐसे श्यामपट्ट लगवाए गए थे और आज भी वे सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।"

हमारे देश में शीशे के श्यामपट्टों का परीक्षणात्मक प्रयोग किया जाना चाहिए। सामान्यतः निम्नकोटि की लकड़ी से बनाए जानेवाले, श्यामपट्टों की अपेक्षा शीशे के श्यामपट्टों का बहुत बड़ा लाभ यह है कि इन पर मौसम का असर नहीं होता। काँचवाले की दूकान से चिकने काँच की एक चादर लें। उसकी चिकनी सतह पर जैतूनी हरा रंग लगा दें। शीशे का यह श्यामपट्ट कम खर्च में बन सकता है। काँच की खुरदरी सतह लिखने के काम आ जाती है। इस रंगीन काँच के लिए मामूली लकड़ी का फ्रेम बनवाया जा सकता है।

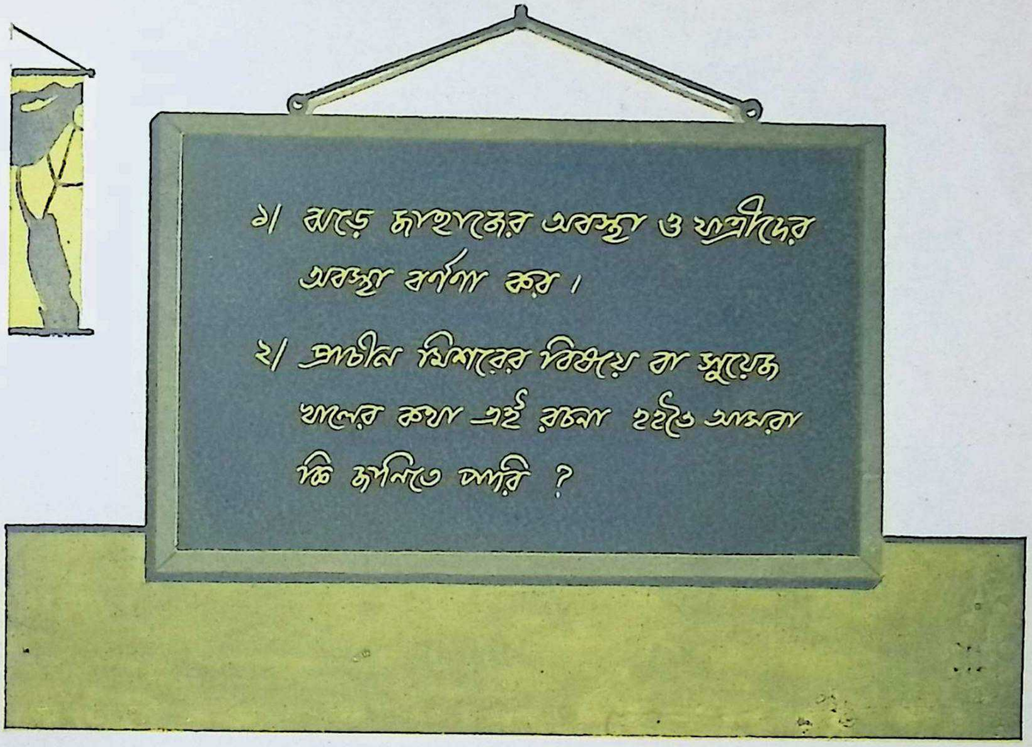
हाल ही में ब्रिटेन में श्यामपट्ट के लिए प्लास्टिक की चादरों का उपयोग किया जाने लगा है। ये चादरें विभिन्न रंगों में उपलब्ध हैं। लपेटा जा सकनेवाला श्यामपट्ट मोटे बेठनी कागज़ (रैपिंग पेपर) का बनाया जा सकता है। लेकिन यह टिकाऊ नहीं होता और इस पर लिखना भी आसान नहीं होता। फिर भी इसे लाने-लेजाने में आसानी होती है, इसलिए गाँव-गाँव में सभाएँ और विचार-विवाद करते समय सामाजिक कार्यकर्ता इसे साथ रखते हैं। कागज़ का ऐसा श्यामपट्ट सरलता से इस तरह बनाया जा सकता है :

एक मोटे बेठनी कागज़ के दोनो ओर फ्रेंच पालिश लगाइए। जब कागज़ भलीभाँति सूख जाए तब बिना चमकवाला जैतूनी हरा रंग कागज़ के केवल एक ओर लगाइए। एकबार लगाया गया रंग भलीभाँति सूख जाने पर, दुबारा फिर लगाइए। लगभग एक इंच व्यासवाली दो गोल लकड़ी की छड़ें कागज़ के इस गोल मुड़े हुए श्यामपट्ट के दोनों सिरों पर लगा दी जाती हैं।

भारत में अनेक स्कूलो में दीवाल में बने श्यामपट्ट हैं। ये सीमेंट के मिश्रण से बनाए गए हैं और काले रंग के हैं, लेकिन सामान्यतः सन्तोषजनक नहीं हैं क्योंकि विशेषकर मानसून के दौरान ये नमी से प्रभावित होते हैं।

पीले अथवा जैतूनी हरे रंग के चाकबोर्ड या श्यामपट्ट

भारत में श्यामपट्ट अभी तक काले रंग के ही बनते हैं। अमरीका और ब्रिटेन में पीले या जैतूनी हरे रंग के श्यामपट्ट बनते हैं। हाल ही में अमरीका में औद्योगिक मनोविज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान (नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ़ इण्डस्ट्रियल साइकालोजी) ने इस बात के प्रमाण दिए हैं कि पीले श्यामपट्ट पर नीली खड़िया की लिखावट बच्चों की आँखों पर कम ज़ोर डालती है और कक्षा में सामान्यतः आह्लाद की वृद्धि करती है। अमरीका में तथाकथित श्यामपट्ट के लिए रंगों

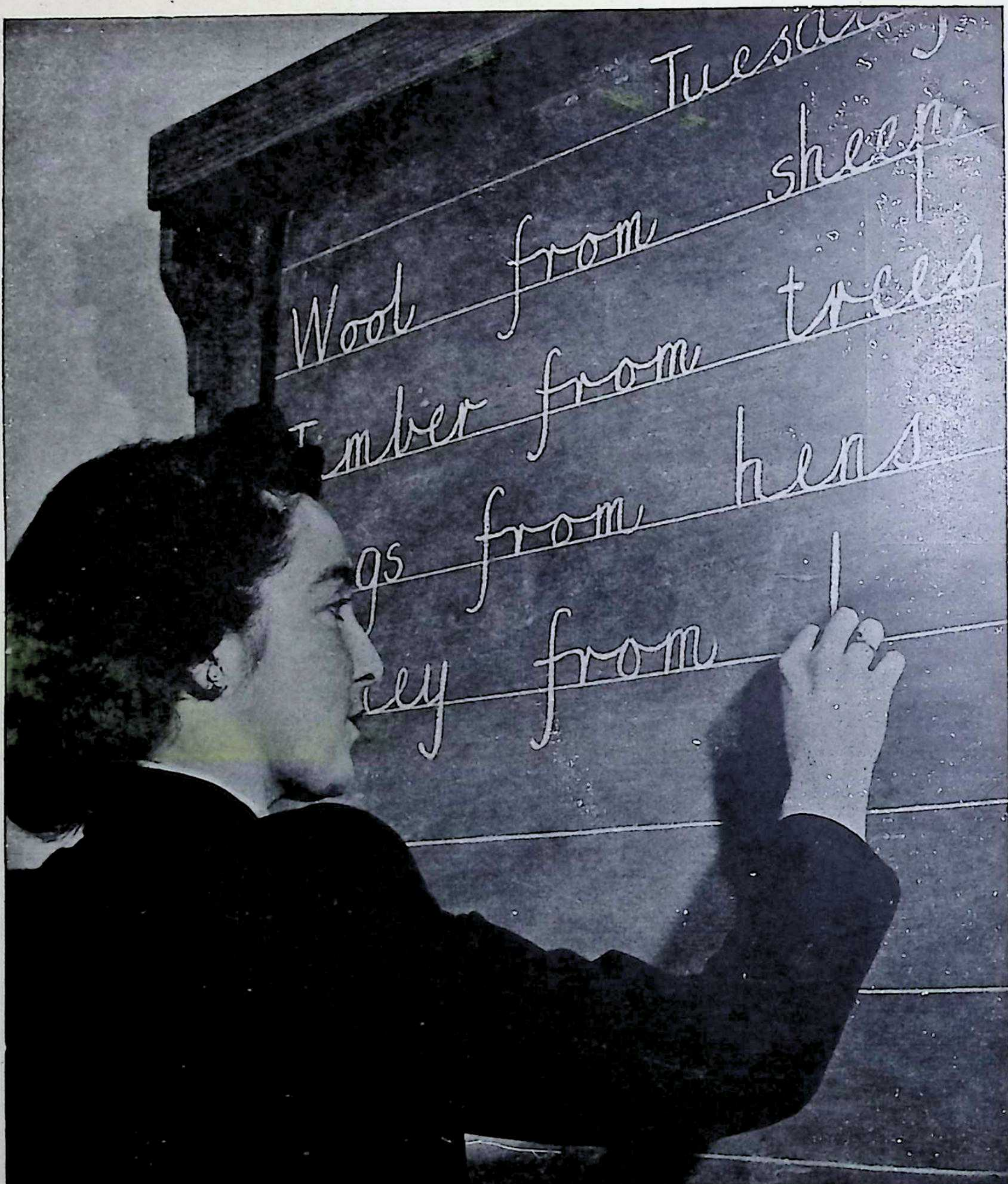


जैतून हरित धरातल पर पीली खड़िया का प्रयोग सर्वाधिक सन्तोषप्रद परिणाम देता है।

के प्रयोग ने नए शब्द 'चाकबोर्ड' (खड़ियापट्ट) को जन्म दिया है। स्काटलैण्ड की शिक्षा-परामर्शदात्री परिषद् ने सुझाव दिया है कि जैतूनी हरे पट्ट पर पीली खड़िया का प्रयोग सर्वाधिक सन्तोषजनक होता है। पश्चिम बंगाल के कुल्टी नामक स्थान में लेखक द्वारा कुछ वर्ष पहले स्थापित एक नर्सरी और किंडरगार्टन स्कूल में सामान्य श्यामपट्टों की अपेक्षा जैतूनी हरे रंग के पट्टों का प्रयोग अधिक सन्तोषप्रद सिद्ध हुआ है।

श्यामपट्ट के विविध प्रकार

छोटी कक्षा में कला सम्बन्धी विषय पढ़ाने के लिए चौखटे में लगा मामूली श्यामपट्ट ठीक हो सकता है, किन्तु गणित और विज्ञान पढ़ाने के लिऐ वह बिल्कुल अनुपयुक्त होता है। इन विषयों को पढ़ाने के लिए बिना चमकवाले धरातल के लपेटदार श्यामपट्ट ज़्यादा अच्छे होते हैं। ब्रिटेन के

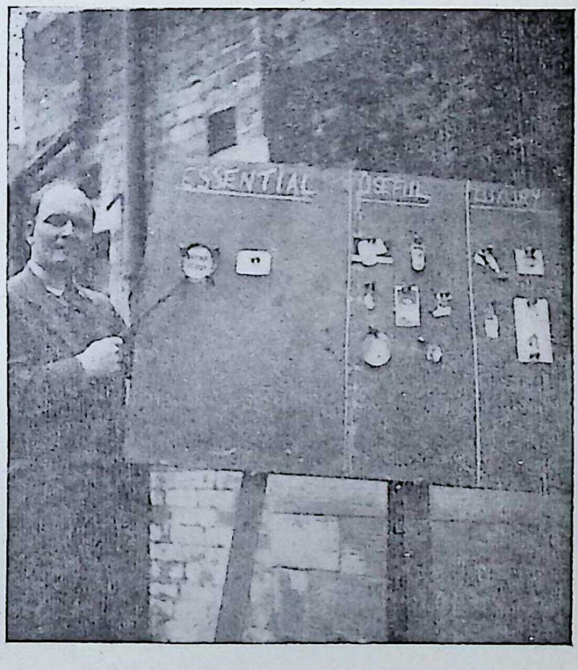


छोटे बच्चों के स्कूलों में ऐसे श्यामपट्ट होना चाहिए। (ब्रिटिश इन्फ़र्मेशन सर्विस के सौजन्य से)

सेकेण्डरी, माडर्न और इन्फ़ैण्ट स्कूलों में ऐसे ही श्यामपट्ट प्रचलित हैं। यदि लपेटनेवाले श्यामपट्ट का प्रयोग किया जाए तो सुलेख, प्रारम्भिक अंकगणित और उच्चतर गणित आदि पढ़ाने के लिए उसके एक हिस्से में रेखाएँ अथवा वर्ग बना दिए जा सकते हैं।

चुम्बकीय श्यामपट्ट या चाकबोर्ड

हाल ही में ब्रिटेन में चुम्बकीय श्यामपट्टों का उपयोग शुरू हुआ है। यह बड़ा उपयोगी और मनोरंजक है। यह इस्पात का बना होता है जिस पर चुम्बक लगाए जा सकते हैं। चुम्बकीय श्यामपट्ट प्राइमरी स्कूलों में विशेषरूप से उपयोगी होता है क्योंकि किसी पाठ को दोहराते समय अभ्यास के लिए जब बच्चे इस पर कोई चीज़ चिपकाते हैं तो उनका रचनात्मक आवेग अंशतः जाग उठता है। और वे मनोरंजक कार्यकलाप के माध्यम से सीखते हैं। यह श्यामपट्ट अध्यापक के लिए भी बहुत उपयोगी होता है। चुम्बकों की सहायता से वह श्यामपट्ट पर चित्र, चार्ट आदि ठीक ढंग से तुरंत लगा सकता है।



लीड्स विश्वविद्यालय में चुम्बकीय श्यामपट्ट पर एक पाठ का प्रदर्शन। (चित्र लेखक द्वारा)

सुन्दरबन के एक हाईस्कूल के कुछ उत्साही अध्यापकों ने (लेखक द्वारा इंगलैण्ड से कुछ वर्ष पूर्व लाए गए) चुम्बकीय श्यामपट्ट का बहुत ही मनोरंजक उपयोग किया है। यह श्यामपट्ट न केवल छोटे बच्चों को पढ़ाने में सहायक हुआ बल्कि ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों को विज्ञान और स्वास्थ्यविज्ञान जैसे विषय पढ़ाने में भीं उपयोगी जान पड़ा।

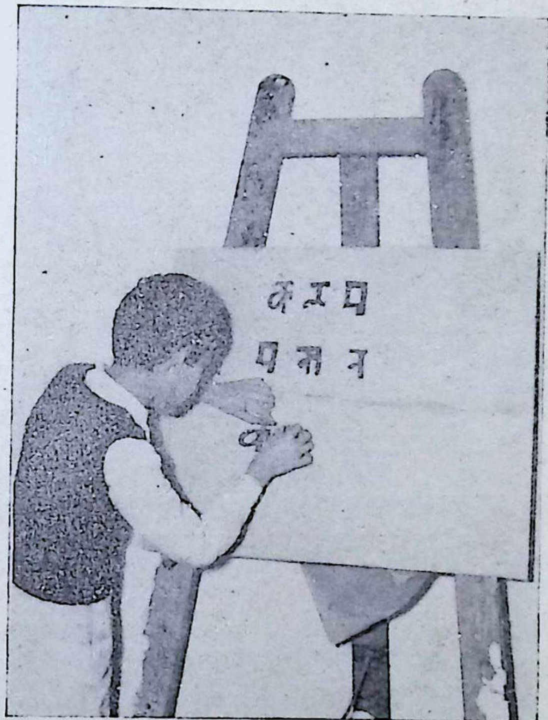
८ फ्लैनेल पट्ट

चुम्बकीय श्यामपट्ट की भाँति फ्लैनेल पट्ट भी हाल ही में ब्रिटेन और अमरीका में प्रचलित हुआ है। छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाने में यह जितना उपयोगी सिद्ध हुआ है उतना ही ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाने में भी।

फ्लैनेल अथवा रेगमाल के टुकड़े थोड़ा-सा दाब देने पर इस पट्ट पर चिपके रह जाते हैं ; इसलिए चित्रों, रेखाचित्रों आदि के दूसरी ओर इनके छोटे-छोटे टुकड़े चिपका दिए जाते हैं ताकि इन्हें फ्लैनेल पट्ट पर टिकाया जा सके। यदि श्यामपट्ट पर लगाई जानेवाली चीज़ें फ्लैनेल, स्याही सोख या रेगमाल काटकर ही बनाई गई हों तो किसी और खुरदरी सतह वाली चीज़ की ज़रूरत न-होगी।

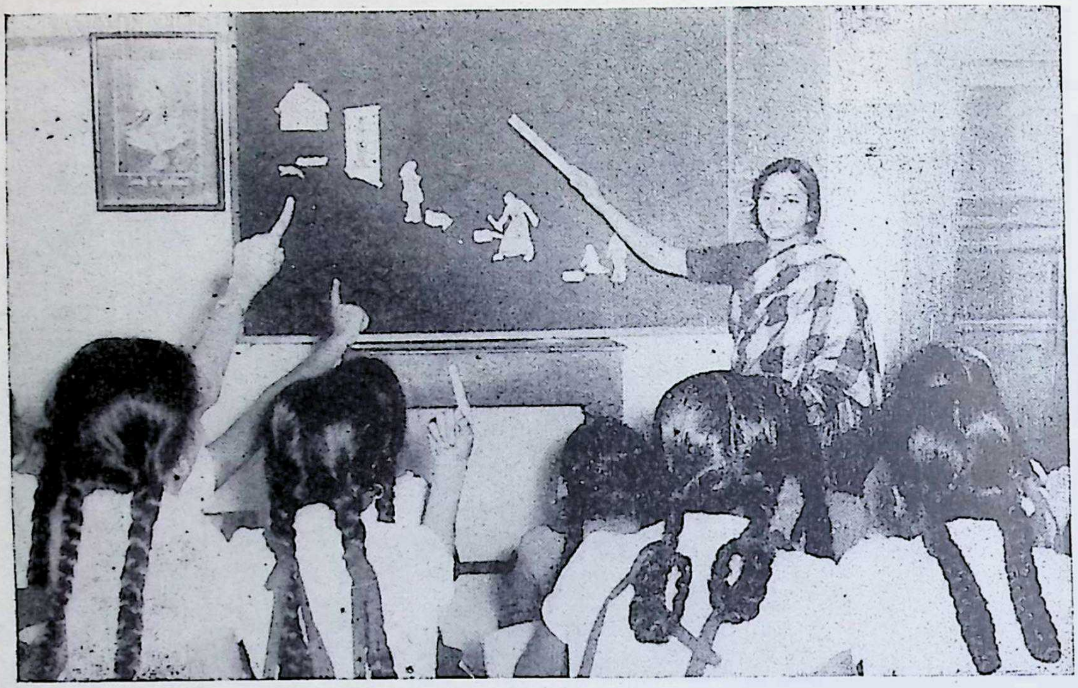
फ्लैनेल पट्ट का उपयोग भी सामान्य श्यामपट्ट की भाँति पूरी चर्चा के दौरान किया जा सकता है ; अन्तर केवल यह है कि श्यामपट्ट पर हमें चित्र, रेखा चित्र आदि खींचने पड़ते हैं, शब्द लिखने पड़ते हैं जबकि फ्लैनेल के पट्ट पर हम तैयार की हुई चीज़ें लगाकर दिखाते हैं और ज़रूरत पड़ने पर हटा लेते हैं। प्राइमरी स्कूलों में छोटे-छोटे लड़कों-लड़कियों को ये चीज़ें फ्लैनेल पट्ट पर जमाने के लिए प्रायः दी जाती हैं ताकि उनका रचनात्मक आवेग जागृत हो।

इस साधन की सहायता से अंकगणित, व्याकरण, स्वास्थ्यविज्ञान, क्रियाविज्ञान, प्रकृति-अध्ययन, भूगोल, भाषाएँ आदि विषयों की पढ़ाई बहुत मनोरंजक और सार्थक हो सकती है। नक़्शे और कहानियाँ फ्लैनेल पट्ट पर नाटकीय ढंग से प्रदर्शित की जा सकती हैं। भारत के विभिन्न राज्यों की

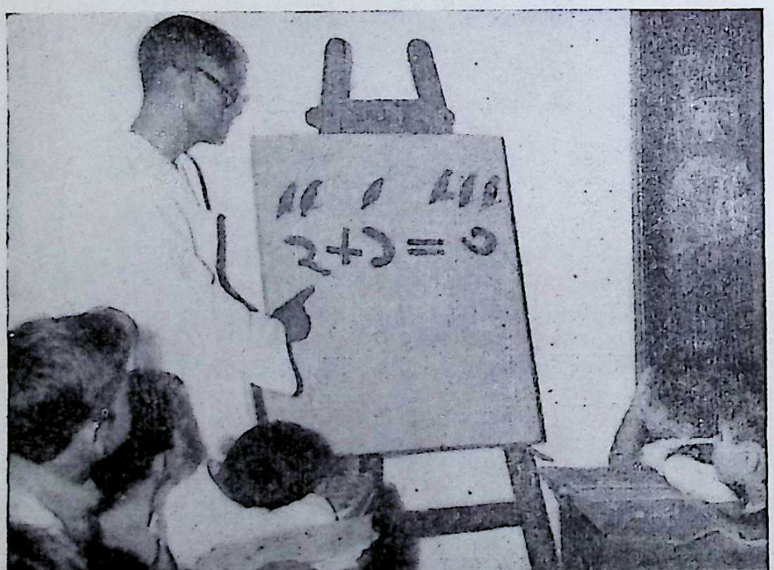


सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता के माध्यमिक विभाग की एक छोटी कक्षा का विद्यार्थी फ्लैनेल पट्ट की सहायता से हिन्दी सीख रहा है।

स्थिति समझाने के लिए पहले फ्लैनेल पट्ट पर रेगमाल का बना भारत का खाका रखें। फिर रेगमाल पर काटकर बनाए गए विभिन्न राज्यों के खाके एक के बाद एक उस पर जमाते जाएँ ताकि पूरे देश का नक़्शा बन जाए। भारत का खाका और राज्यों के आकार रेगमाल के बदले अनमिल रंगों की फ्लैनेल के भी बनाए जा सकते हैं। बच्चों के लिए हो और या वयस्कों के लिए ज्यों-ज्यों कहानी अथवा चर्चा आगे बढ़े त्यों-त्यों यदि तदनुरूप चित्र भी फ्लैनेल पट्ट पर लगाए जाएँ तो वह अधिक सार्थक और आनन्दप्रद हो सकती है। ध्यान यही रखना होगा कि फ्लैनेल पट्ट पर दिखाए जानेवाले चित्र आकर्षक हों और इतने बड़े हों कि सभी उपस्थित लोगों को साफ़-साफ़ दिखाई दें। यदि कमरे में प्रकाश कम हो तो स्लाइड या फिल्मपट्टी के प्रक्षेपी से पट्ट पर प्रकाश की व्यवस्था की जा सकती है।



फ्लैनेल पट्ट की सहायता से कहानी का विस्तार करती हुई शिक्षिका (बंबई स्थित पी० वी० टी० डी० महिला शिक्षातत्व महाविद्यालय के सौजन्य से)



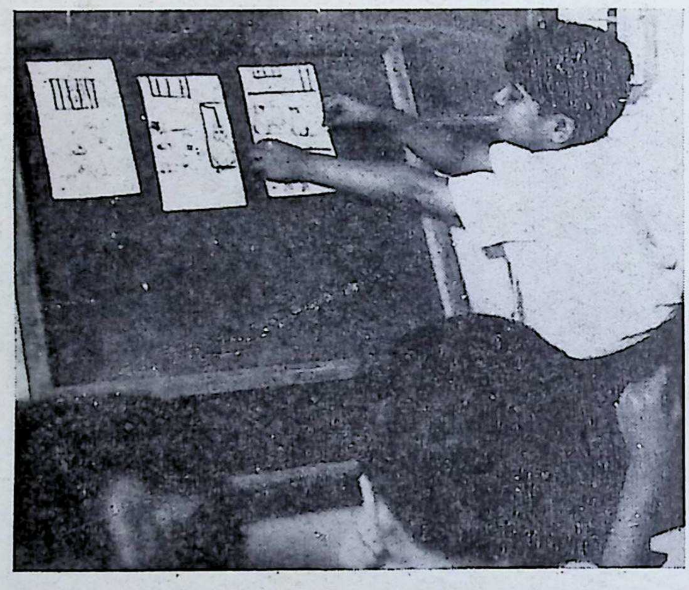
फ्लैनेल पट्ट पर दिखाए गए चिड़ियों के ये चित्र अंकगणित के पाठों को वास्तविक और मनोरंजक बना देते हैं। पाठ बदलने के लिए चित्रों और अंकों को नए ढंग से तुरंत व्यवस्थित किया जा सकता है। (सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता की एक छोटी कक्षा)



लेक व्यू हाईस्कूल, कलकत्ता के बालिका-विभाग की बच्चियाँ फ्लैनेल पट्ट की सहायता से तीन भाषाओं (अंगरेजी, हिन्दी और बंगाली) में जानवरों के नाम सीख रही हैं। इस शिक्षा में उनका मनोरंजन भी हो रहा है। क्या कोई उनके लिए शिक्षा का इससे और अच्छा ढंग सुझा सकता है ?

फ्लैनेल के पट्ट खर्चीले नहीं होते। उन्हें तैयार करने में कठिनाई भी नहीं होती। नमदे या फ्लैनेल के टुकड़े को कसकर फैलाया जाता है और फिर सरेस से उसे पतली प्लाई, मैसोनाइट या मोटे गत्ते के साथ चिपका देते हैं। कुछ समय पहले कलकत्ते के एक श्यामपट्ट-विक्रेता ने लेखक के लिए बहुत ही आकर्षक और मज़बूत फ्लैनेल पट्ट केवल बीस रुपए में बना दिया था। कक्षाओं के लिए बनाए जानेवाले फ्लैनेल पट्ट का आकार ६ फुट×४ फुट से छोटा न होना

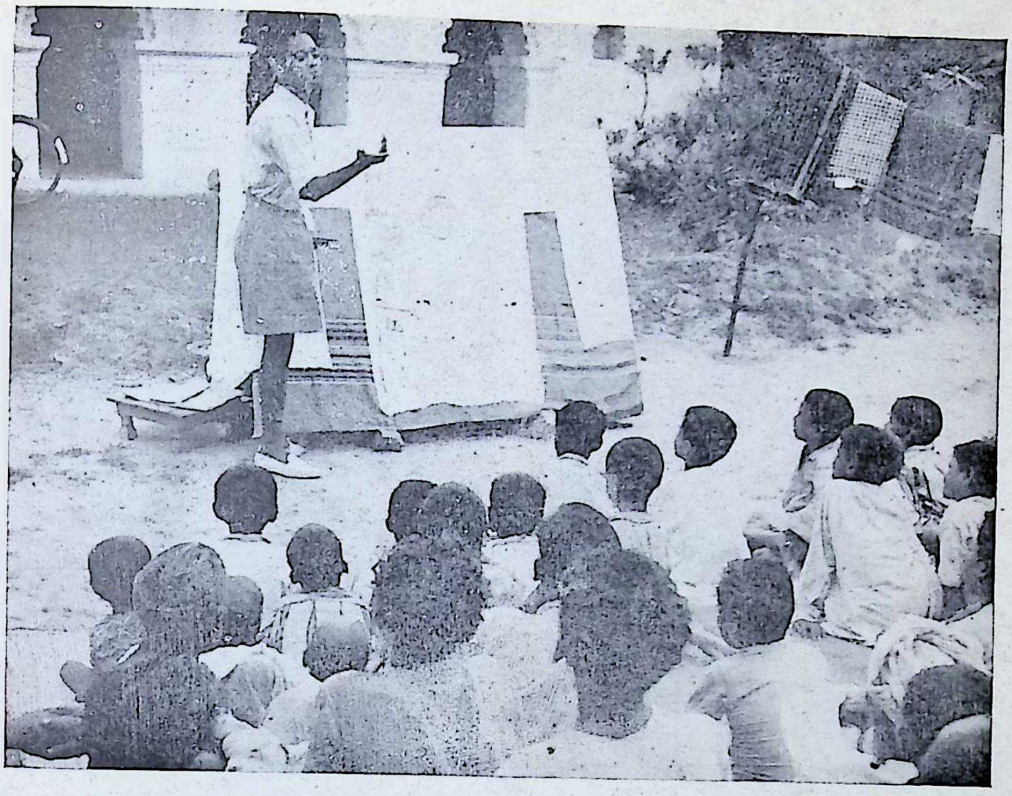
चाहिए। यदि फ्लैनेल पट्ट छोटा हुआ तो अध्यापक को विषम स्थिति का सामना करना पड़ता है और अत्यन्त उत्सुक विद्यार्थियों से कहना पड़ता है कि अत्यन्त मनोयोग और सावधानी से जो चीज़ें उन्होंने रेगमाल से तैयार की हैं उन्हें लगाने के लिए पट्ट पर जगह नहीं है। (यह स्थिति



बालक फ्लैनेल पट्ट की सहायता से स्वकल्पना प्रसूत कहानी कह रहा है।
प्रदर्शन के लिए चित्रभी उसी ने बनाये थे।

लेखक के सामने कई बार आ चुकी है)। किसी भी रंग की फ्लैनेल का प्रयोग किया जा सकता है, पर कुछ गहरा हरा अथवा नीला रंग अपेक्षाकृत अधिक अच्छा होता है। हलके रंग गंदे हो जाते हैं और रंगों की विषमता भलीभाँति स्पष्ट नहीं हो पाती।

यदि फ्लैनेल पट्टों का प्रभावपूर्ण उपयोग सामाजिक शिक्षा-कार्य में किया जाए तो वयस्कों को सारी उपयोगी जानकारी मनोरंजक ढंग से दी जा सकती है। मनोरंजक ढंग से कही गई कहानियों को ग्रामीण बहुत पसंद करते हैं। सामाजिक शिक्षा के संगठनकर्त्ता, यदि चाहें तो, चित्रांकन के अल्प कौशल से ही, फ्लैनेल पट्ट के लिए कहानियों के लिए मनोरंजक चित्र तैयार कर सकते हैं।



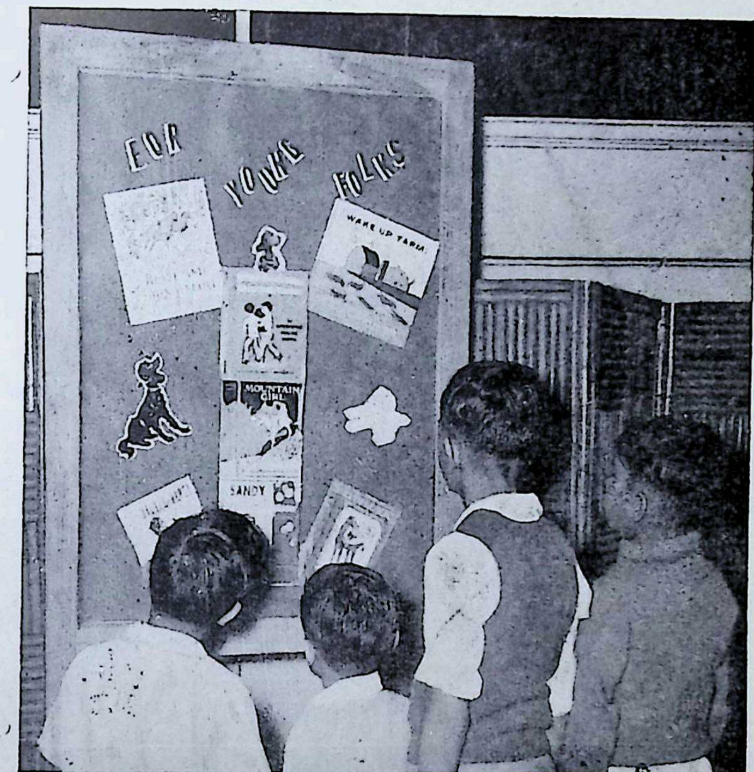
राँची के निकट एक सामुदायिक विकास खंड में एक ग्राम-सेवक फ्लैनेल पट्ट की सहायता से होनहार नौजवान किसानों को खेती के नए तरीक़े समझा रहा है।
(यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विस के सौजन्य से)

९ विज्ञप्ति पट्ट

विज्ञप्ति पट्ट की उपयोगिता

दृश्य-श्रव्य साधन के रूप में विज्ञप्ति पट्ट का शैक्षणिक महत्त्व बहुत अधिक है। दुर्भाग्यवश हमारे देश में ऐसे बहुत ही कम आधुनिक स्कूल हैं जिनमें कक्षा विज्ञप्ति पट्ट उपलब्ध हों। जिन स्कूलों में हैं भी, उनमें आयोजित या व्यवस्थित ढंग से इनका उपयोग सामान्यतः नहीं किया जाता। कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली जैसे नगरों के स्कूलों और कालेजों की कक्षाओं की दीवालें सूनी दिखाई देती हैं। शिक्षण सम्बन्धी कोई भी दृश्य-सामग्री वहाँ नहीं होती। इस स्थिति के पक्ष में कोई कारण नहीं हो सकता क्योंकि ऐसी सभी सामग्री आसानी से मिल सकती है। संसार के किसी भी भाग में किसी निष्ठावान् अध्यापक को विज्ञप्ति पट्ट पर प्रदर्शित करने योग्य उपयुक्त सामग्री उपलब्ध करने में कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। मुख्य कठिनाई है इस साधन को महत्त्व देने की तत्परता की। हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा प्रशिक्षण महाविद्यालय हो जो इस साधन को वैसा महत्त्व देता हो जैसा वस्तुतः देना चाहिए। दिल्ली स्थित दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान को इस उद्देश्य से एक अलग कक्ष तैयार करना चाहिए कि संस्थान में आनेवाले प्रशिक्षार्थियों और संस्थाओं के प्रधानों को एक आदर्श कक्ष के रूप में उसे दिखाया जा सके। उन्हें समझाया जा सके कि प्रत्येक कक्षा में कम-से-कम तीन साधारण और कम खर्चीले साधन—श्यामपट्ट, फ्लैनेल पट्ट और विज्ञप्ति पट्ट—होना बहुत आवश्यक है। राष्ट्रीय संस्थान में ये सभी पट्ट निस्सन्देह सभी दृष्टियों से आदर्श होंगे।

दृश्य-श्रव्य शिक्षा के सम्बन्ध में जुलाई, १९५६ में हुए अखिल भारतीय अध्यापक सम्मेलन ने सुझाव दिया था कि विद्यार्थियों द्वारा विज्ञप्ति पट्ट के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए अध्यापकों को नीचे लिखे तीन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए :

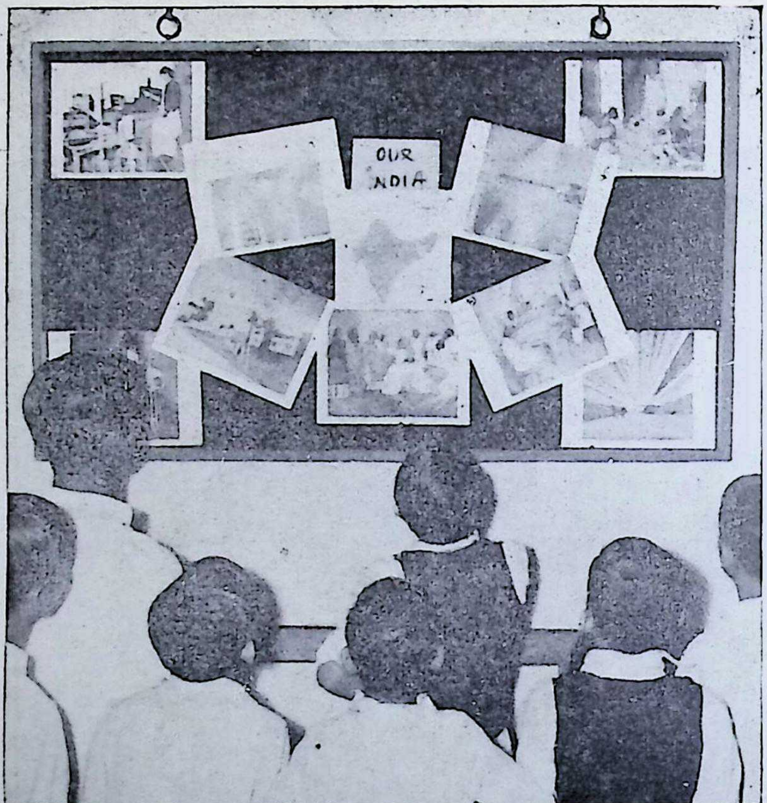


एक आकर्षक विज्ञप्ति पट्ट के बिना कोई भी कक्षा परिपूर्ण नहीं कही जा सकती।
(यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सार्विसेज़ के सौजन्य से)

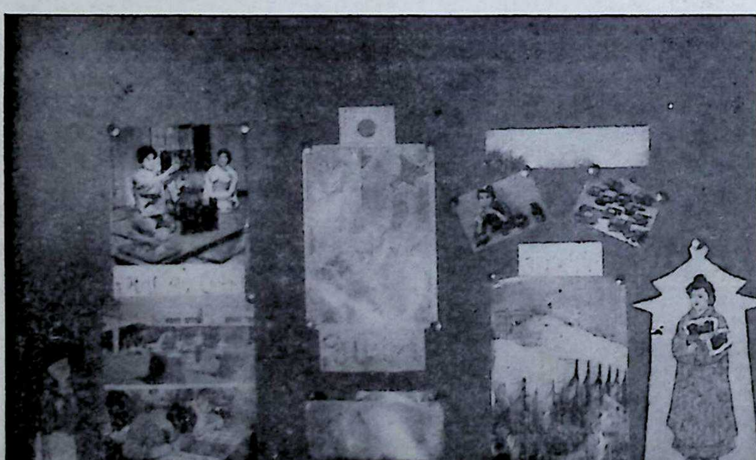
"(क) विज्ञप्ति पट्ट कक्षा अथवा स्कूल की सर्वकालीन पत्रिका है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को उनसे सम्बन्धित प्रत्यक्ष जानकारी देना तथा ज्ञान के प्रति उनकी जिज्ञासा और इच्छा को उकसाना है;

(ख) विज्ञप्ति पट्ट के विविध तत्त्वों के विन्यास और निदर्शन में एक संगति और समरसता सदा रहनी चाहिए ;

(ग) विज्ञप्ति पट्ट की सारी सामग्री विद्यार्थियों के रचनात्मक प्रयासों का परिणाम होनी चाहिए, भले ही ये प्रयास अध्यापक के सामान्य निर्देशन में किए गए हों। यह काम सब विद्यार्थियों द्वारा विद्यार्थियों के लिए किया गया विद्यार्थियों का होना चाहिए।"



सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता के माध्यमिक विभाग का स्कूल विज्ञप्ति पट्ट।



जापानी वस्तुएँ तथा चित्र प्रदर्शित करता हुआ विज्ञप्ति पट्ट
(बंबई स्थित पी० वी० टी० डी० महिला शिक्षातत्व
महाविद्यालय के सौजन्य से)।

विज्ञप्ति पट्ट कई प्रकार से उपयोगी होता है :

(१) विद्यार्थियों के सभी प्रकार के रचनात्मक कार्य को प्रदर्शित करने के लिए विज्ञप्ति पट्ट उपयुक्त स्थान प्रस्तुत करता है।

(२) चित्रों, समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की कतरनों, निदर्श-चित्रों तथा विशिष्ट पाठों या सामयिक रुचि के प्रकरणों से सम्बन्धित उत्पादन के छोटे-छोटे नमूनों के प्रदर्शन के लिए यह उपयुक्त स्थान होता है।

(३) सूचनाओं, नियतकार्यों व विशेषयोग्यताओं आदि के नोटिस चिपकाने के लिए उपयुक्त स्थान होता है।

(४) बच्चों को एक टोली के रूप में काम करने का अवसर देता है।

(५) कक्षा के वातावरण को समृद्ध करता है।

(६) गाँवों में वयस्कों को पढ़ाने के लिए बहुमूल्य साधन है

विज्ञप्ति पट्ट को उपयुक्त स्थान पर लगाना

श्यामपट्ट की भाँति विज्ञप्ति पट्ट को भी कक्षा में उपयुक्त और प्रकाशपूर्ण स्थान पर रखना चाहिए-प्रकाश प्राकृतिक हो या कृत्रिम। जब स्कूल की ईमारत बन रही हो तभी विज्ञप्ति पट्ट के लिए स्थान निश्चित कर देना चाहिए। भारत की जिन कुछ संस्थाओं में विज्ञप्ति पट्ट हैं उनमें सामान्यतः समूची संस्था के लिए केवल एक विज्ञप्ति पट्ट दरवाज़े के पास रहता है। उसे किसी उपयुक्त स्थान पर नहीं रखा जाता। विज्ञप्ति पट्ट को बच्चों के दृष्टि-स्तर के बराबर रखा जाना चाहिए। गाँव के वयस्कों के लिए बनाए गए विज्ञप्ति पट्ट को ऐसे सुविधाजनक स्थान पर रखना चाहिए ताकि अधिकाधिक लोग प्रदर्शित वस्तुओं को देख सकें।

विज्ञप्ति पट्ट के उपयोग से संबंधित महत्त्वपूर्ण बातें

विज्ञप्ति पट्ट का उपयोग करते समय नीचे लिखी बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

(१) केवल विषय से सम्बन्धित और उपयुक्त सामग्री प्रदर्शित की जानी चाहिए।

(२) प्रदर्शित सामग्री सफ़ाई के साथ सुव्यवस्थित ढंग से दी जानी चाहिए।

(३) प्रदर्शित सामग्री का जमघट न होना चाहिए।

(४) प्रदर्शित सामग्री का आकार ऐसा अवश्य हो कि सामान्य दूरी से उसे साफ़ देखा जा सके।

(५) सामग्री बदलने की अवधि बहुत लम्बी न होनी चाहिए।

(६) प्रत्येक सामग्री का उपयुक्त शीर्षक होना आवश्यक है।

(७) रेखनपिने पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों।

(८) विशिष्ट पाठों के सम्बन्ध में उपयुक्त सामग्री के संकलन और प्रदर्शन का दायित्त्व प्रायः विद्यार्थियों को सौंपना चाहिए।

विज्ञप्ति पट्ट कैसे बनाएँ

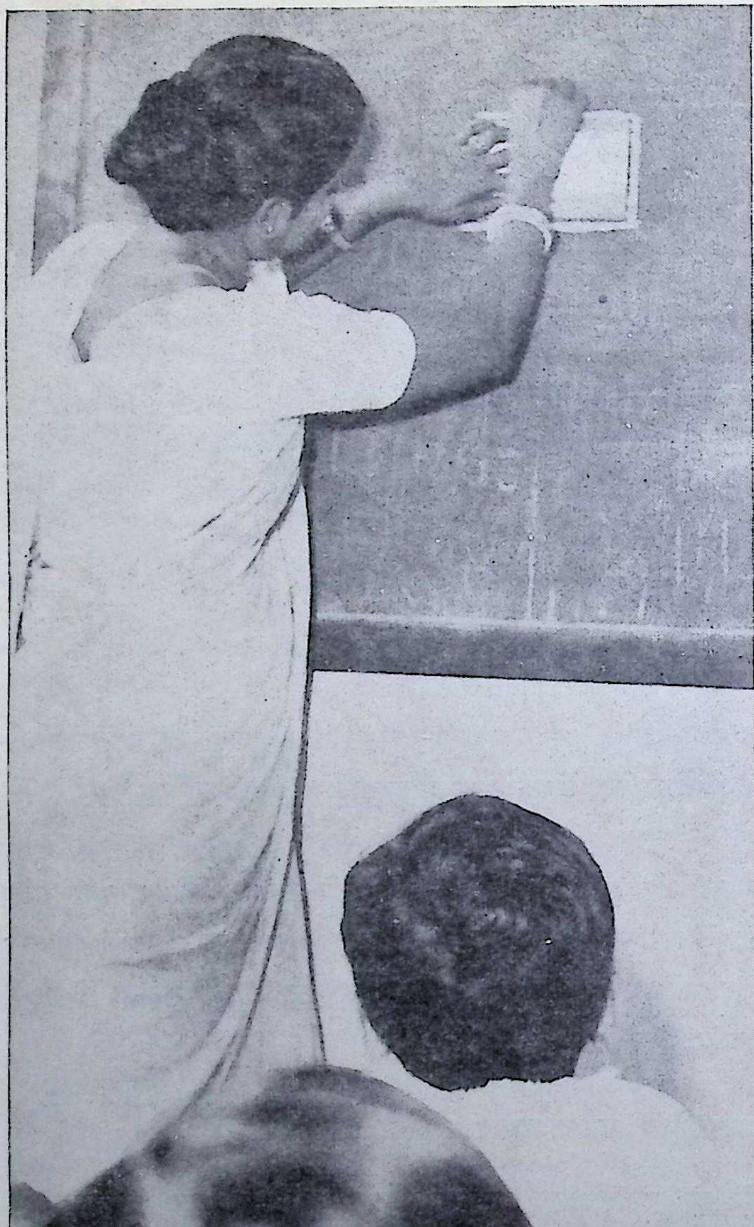
विज्ञप्ति पट्ट बनाना बहुत आसान है। ५ फुट × ३ फुट ६ इंच आकार का एक फ़्रेम बनाएँ (कक्षा के आकार के अनुसार फ़्रेम का आकार छोटा-बड़ा हो सकता है) और उसे प्लाई से या रेशा तख्ते से भर दें। आकर्षक बनाने के लिए उसे रंग दें। विभिन्न रंगों की लिनोलियम और मैसोनाइट चादरें भी विज्ञप्ति पट्ट बनाने के लिए उपयुक्त होती हैं।

१० मानचित्र और ग्लोब

कक्षा में सर्वाधिक प्रयुक्त अध्यापन-साधनों में से एक है मानचित्र ; उसकी सहायता से ही भूगोल ठीक-ठीक पढ़ाया और सीखा-समझा जा सकता है। संभवतः यह कथन सत्य है कि ९९ प्रतिशत भूगोल नक़्शों में प्रस्तुत किया जा सकता है। मानचित्र की सहायता से हम किसी स्थान की स्थिति, उसकी दूरी और उस दूरी के बीच क्या-क्या है यह सब ठीक-ठीक समझ लेते हैं। यद्यपि मानचित्र कक्षा में सर्वाधिक प्रयुक्त साधनों में से है फिर भी दुर्भाग्यवश वह सबसे कम समझा जानेवाला साधन है। कारण यह है कि मानचित्र में निहित वास्तविकताओं को समझने के लिए बच्चों को बहुधा सहायता नहीं मिल पाती।

बच्चों को मानचित्र का अध्ययन सिखाने का सरल तरीक़ा

बच्चों को मानचित्र का अध्ययन करना सिखाने का एक बहुत ही उपयोगी तरीक़ा है। श्यामपट्ट पर अध्यापक कोई सामान्य वस्तु, उदाहरण के लिए एक पुस्तक रखे और उसके चारों ओर एक रेखा खींच दे। पुस्तक हटा लेने पर एक रेखाकार दिखाई देगा जो चित्र नहीं होगा। इसे एक खाका या नक़्शा कह सकते हैं। बच्चों से कहा जा सकता है कि ऐसे ही विविध उपलब्ध वस्तुओं के खाके तैयार करें। इसके बाद कक्षा के कमरे का खाका या नक़्शा तैयार किया जाना चाहिए, पर वह इतना बड़ा होता है कि उसके पूरे आकार का खाका नहीं बनाया जा सकता। इसीलिए पैमाने का उपयोग आवश्यक हो जाता है। यह आवश्यक है कि कक्षा के कमरे का मानचित्र किसी उद्देश्य



मानचित्र समझने में बालकों की सहायता (कलकत्ता स्थित साउथ प्वाइंट स्कूल के सौजन्य से)

से ही तैयार कराया जाए। यह मानचित्र खाका मात्रा नहीं होना चाहिए बल्कि कक्ष के सम्बन्ध में कुछ अन्य बातें दर्शानेवाला मानचित्र होना चाहिए। उसे 'मेरी कक्षा के कमरे का मानचित्र' नाम देना सुविधाजनक होगा।

किसी मानचित्र की कसौटी यह नहीं है कि वह देखने में अच्छा लगता है या नहीं ; उसकी कसौटी यह है कि जिस उद्देश्य से वह बनाया जाय उसे पूरा करता है या नहीं । मानचित्र सफ़ाई से बने हुए होने चाहिए, पर सफ़ाई ही काफ़ी नहीं है । स्वच्छ और शुद्ध मानचित्र सर्वोत्तम होते हैं। परन्तु स्वच्छ और अशुद्ध मानचित्र तो गन्दे नक़्शों से भी बुरे होते हैं, क्योंकि उन्हें तैयार करने में अनावश्यक बातों पर समय लग जाता है ।

मानचित्र बनाने की अवस्थाएँ

पहिला मानचित्र तैयार करने में कुछ-न-कुछ भूलें हो ही जाएंगी ; उसे दुबारा बनाना होगा । इसीलिए बच्चों को ऐसा न लगे कि उन्हें वही काम दुबारा करना पड़ रहा है। उसी मानचित्र को दूसरा शीर्षक देकर इस स्थिति से बचा जा सकता है, जैसे, "मेरे बैठने की जगह का मार्ग।"

पैमाने के अनुसार नापजोख कर ठीक-ठीक मानचित्र बनाने की कोशिश पहले-पहल नहीं की जानी चाहिए । शुद्ध मानचित्र बनाने से पहले बच्चों को पैमाने का आशय समझाना चाहिए । यह समझ धीरे-धीरे अभ्यास से आती है ।

मानचित्र बनाने की दूसरी अवस्था में स्थान का क्षेत्रफल बढ़ा दिया जाता है पर कागज़ का आकार उतना ही रहता है । इस अवस्था में खेल का मैदान, पड़ोस की सड़कें आदि, कक्षा के कमरे से बाहर की चीज़ों को नक़्शे में दिखाया जाता है। पैमाने का आशय अब अधिक स्पष्ट होता है । दीवाल से बाहर की चीज़ों को सोचने-समझने की प्रक्रिया से शेष संसार की कल्पना करने की क्षमता बच्चों को प्राप्त होने लगती है ।

इसके बाद मानचित्र में दिखाया जानेवाला क्षेत्रफल क्रमशः बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, दिल्ली के स्कूल में इस प्रकार के नक़्शे बनाए जा सकते हैं : 'स्कूल से राष्ट्रपति भवन का मार्ग', 'स्कूल से लाल किले का मार्ग ।'

क्षेत्र की व्याप्ति बढ़ाकर बच्चों को उन क्षेत्रों से परिचित कराया जाता है जिन्हें वे नहीं जानते इस तरह मानचित्र की सहायता से वे नई चीज़े सीखने लगते हैं। नए क्षेत्रों को उन वस्तुओं से संबंधित करके दिखाना चाहिए जिनसे बच्चों का प्रत्यक्ष परिचय हो ।

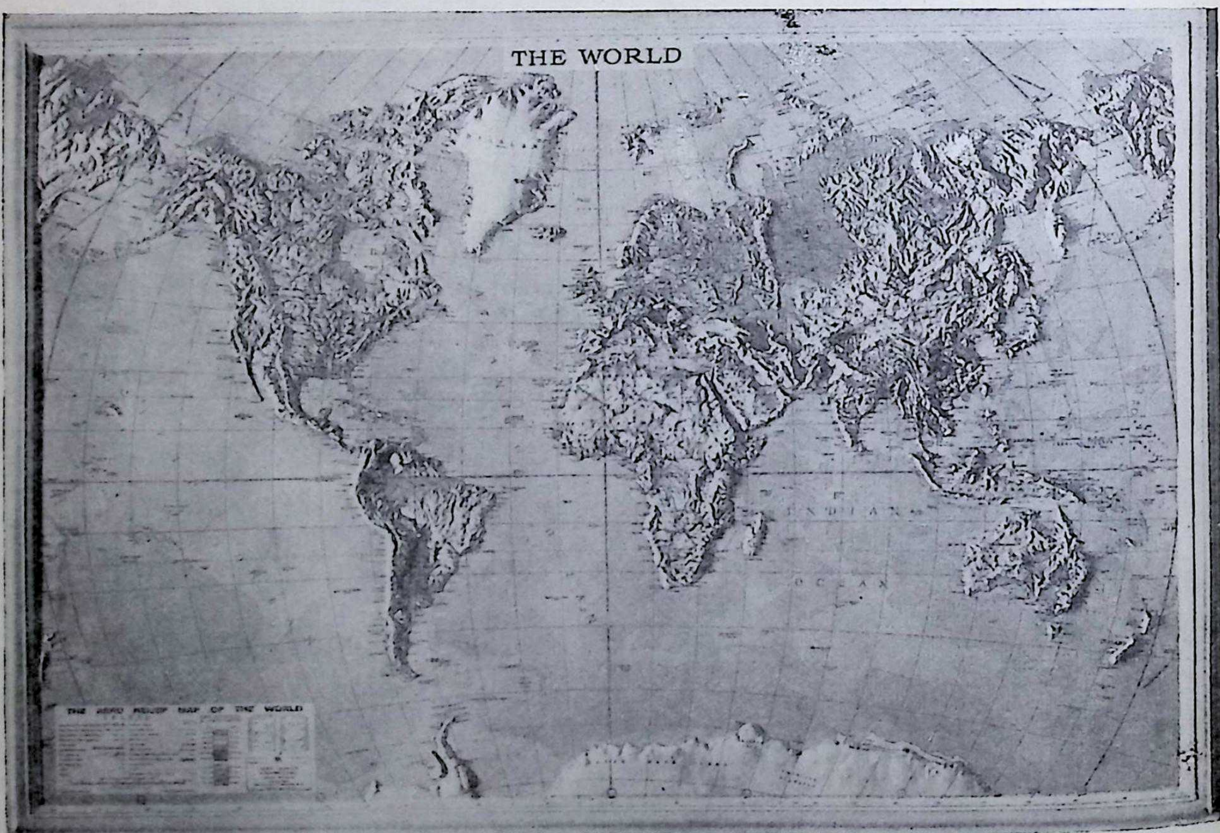
मानचित्र की व्याख्या से संबंधित भूलें

हमारे स्कूलों में मानचित्रों की सहायता से जो भूगोल पढ़ाया जाता है वह बहुधा यथार्थ नहीं होता । 'भारत का ऊपरी सिरा', 'अफ़्रिका का निचला सिरा', 'नक़्शे में ऊपर की ओर बढ़ते हुए'—ऐसी पदावली का प्रयोग प्रकट करता है कि मानचित्रों का विचार मात्र मस्तिष्क में रहता है ;

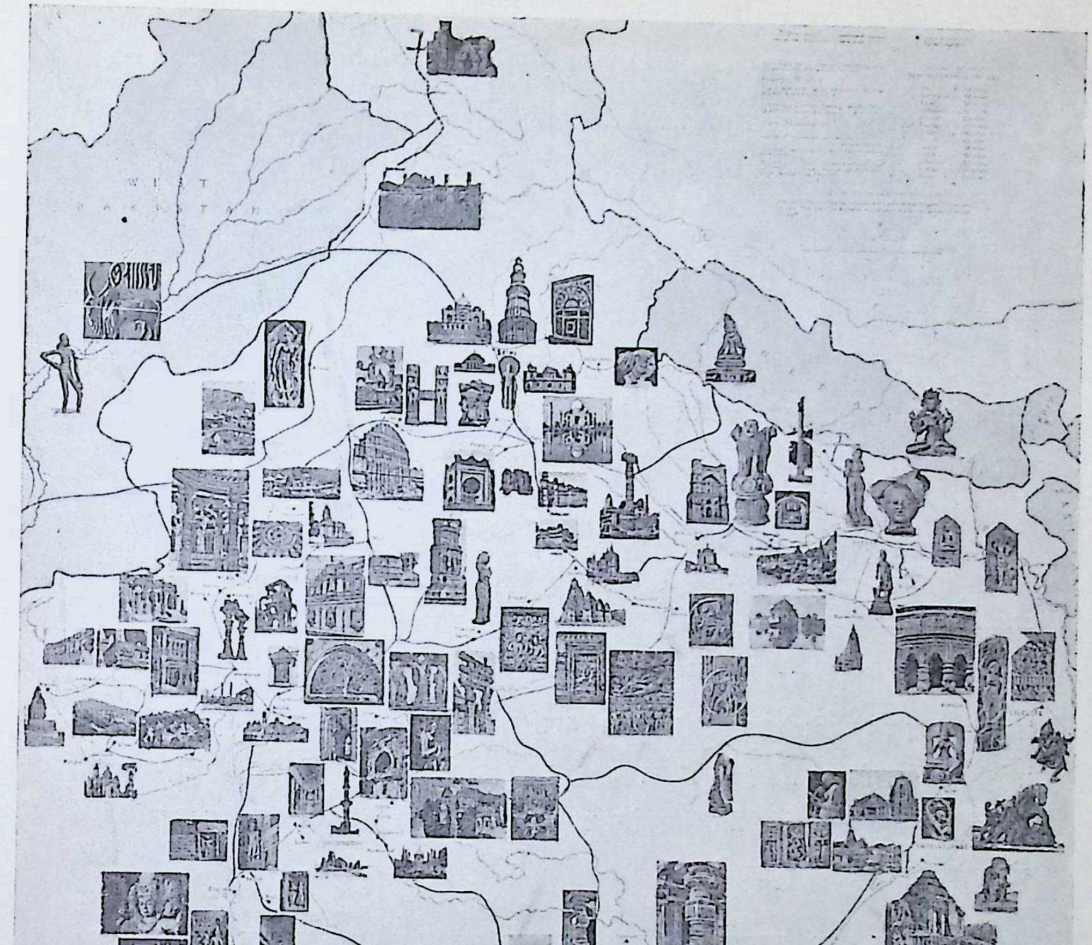
मानचित्र अध्यापन की यथार्थ पृष्ठभूमि नहीं बना पाते। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की भूलें नक्शों को दीवाल पर टाँगने की प्रथा के कारण होती हैं। फिरभी ऐसी अवांछनीय शब्दावली से बचने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए।

विविध प्रकार के मानचित्रों का प्रयोग

यद्यपि सभी अच्छे माध्यमिक स्कूलों में सामान्यतः विविध प्रकार के मानचित्र रहते हैं, फिरभी भौतिक-राजनैतिक मानचित्रों पर अधिक ध्यान दिया जाता है और अन्य मानचित्रों का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। किसी देश की सीमाओं को अथवा उसके भीतर प्रशासनिक क्षेत्रों पहाड़ों, नदियों तथा रेगिस्तानों आदि को जान लेना आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है, किन्तु जिन मानचित्रों में देश की आबादी की सघनता, उसकी जलवायु, मिट्टी, ऊँचाई, वनस्पति, उद्योग आदि दिखाए गए हों उनका अध्ययन भी साथ ही साथ होना चाहिए।



संसार का उच्चावच (रिलीफ़) मानचित्र (अमरीका के 'एयरो सर्विस कार्पोरेशन, फ़िलाडेल्फ़िया के सौजन्य से)।



भारत का चित्रीय (पिक्टोरिअल) मानचित्र। (भारत सरकार के पर्यटन कार्यालय के सौजन्य से)

स्थलरूप रेखा (टोपोग्राफ़िकल कान्सेप्ट) समझाने के लिए त्रिविमितीय (थ्री डायमेन्सनल) उच्चावच मानचित्रों की भी आवश्यकता है। अब अपेक्षाकृत कम मूल्य पर प्लास्टिक के बने हलके पर मज़बूत उच्चावच मानचित्र उपलब्ध हैं। लकड़ी, मिट्टी या प्लास्टर से अध्यापक और विद्यार्थी ऐसे मानचित्र बना सकते हैं। तो भी, विद्यार्थियों को यह बात स्पष्ट रूप से समझा दी जानी चाहिए कि उच्चावच मानचित्र में दिखाई गई ऊँचाइयाँ किसी अर्थ में भी सही नहीं हैं। उन्हें इसलिए बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है ताकि वे आसानी से देखी जा सकें। कुछ भूगोलवेत्ता इन अशुद्ध मानचित्रों के विरुद्ध हैं, किन्तु ये मानचित्र इतने अधिक यथार्थ लगनेवाले होते हैं कि इनके बिना हम काम नहीं चला सकते। फ़ोटोग्राफ़ी की आधुनिक तकनीकों के परिणामस्वरूप सपाट मानचित्र चाहे कितना ही त्रिविमितीय क्यों न दीखे, यथार्थ त्रिविमितीय उच्चावच मानचित्र का स्थान नहीं ले सकता।

चित्रीय मानचित्र प्रेरणा और जानकारी देनेवाले होते हैं। अच्छे स्तर की प्राथमिक शालाओं में इनका उपयोग किया जाता है। लेकिन भूगोल के कुछ लेखकों ने इन मानचित्रों के सम्बन्ध में रोष प्रकट किया है; यों, कुछ अन्य अनेक लेखक ऐसी आशंकाओं को उचित नहीं समझते। पहिले वर्ग के लेखकों ने दो विशेष आपत्तियाँ उठाई हैं। चित्रीय मानचित्र यथार्थ नहीं होता, जबकि मानचित्र में दर्शित वस्तुएँ ठीक-ठीक दी जाती हैं। मानचित्र का अध्ययन सिखाने के लिए चित्रीय मानचित्रों के उपयोग का परिणाम यह होता है कि वास्तविक मानचित्रों को समझ पाना और भी कठिन हो जाता है।

अध्यापक द्वारा श्यामपट्ट पर खींचे जा सकनेवाले मानचित्र की व्यापक उपयोगिता का अनुभव भारतीय स्कूलों में बहुधा नहीं किया जाता। प्रकाशित मानचित्र उपयोगी और महत्त्वपूर्ण तो होता है; पर उसमें इतने अधिक विवरण रहते हैं कि उसे पढ़ने और समझने में कठिनाई होती है। प्रकाशित मानचित्र की अपेक्षा मानचित्र का खाका (आउटलाइन) अधिक उपयोगी जान पड़ता है। खाका अनावश्यक चीज़ों से मुक्त रहता है, इसलिए चर्चागत प्रकरण को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त ज़ोर दिया जा सकता है। बच्चों द्वारा भरे जाने के लिए यदि मानचित्र के छोटे-छोटे खाके ज़रूरी हों तो अनुलिपित्र की सहायता से अथवा सम्बन्धित देश का गत्ते का प्रतिरूप लड़कों से बनवाकर और उसके चारों ओर रेखांकन करके प्रतियाँ बनाई जा सकती हैं।

मानचित्रों का चयन और उनकी सँभाल

हमारे बहुत से स्कूलों में आज जो नक़्शे प्रयोग में आ रहे हैं वे या तो निम्न कोटि के हैं या उपेक्षित स्थिति में हैं। कुछ स्कूलों में तो वे फ़र्श पर पड़े मिलते हैं। यह स्थिति सचमुच खेदजनक है। मानचित्रों की सामान्य सुरक्षा और उनके चुनाव में नीचे लिखी बातें सहायक होती हैं:



एक उच्चावच भूगोलक (एयरो सर्विस कार्पोरेशन, फ़िलाडेल्फ़िया, अमरीका के सौजन्य से)।

(१) मानचित्रों की सतह चमकदार न होनी चाहिए। दीवाल पर टँगे चमकदार सतह वाले मानचित्रों को ठीक-ठीक देख सकने में कक्षा के कुछ भागों में बैठे विद्यार्थियों को कठिनाई हो सकती है।

(२) मानचित्र अत्यधिक विवरणात्मक न होने चाहिए। मानचित्रों में प्रयुक्त नाम और प्रतीक सामान्यतः विद्यार्थियों की समझ में आनेवाले होने चाहिए।

(३) मानचित्रों में पैमाने का अंकन स्पष्ट और विश्वसनीय होना चाहिए।

(४) मानचित्रों का आकार काफ़ी बड़ा होना चाहिए ताकि कक्षा में पीछे बैठे विद्यार्थी भी साफ़-साफ़ देख सकें।

(५) रंग मानचित्रों की अनेक बातों को स्पष्ट करने में सहायक हो सकता है, फिरभी बहुत अधिक रंगों वाले मानचित्रों से बचना चाहिए।

(६) मानचित्र इतने मज़बूत होने चाहिए कि कक्षाओं में होनेवाले दैनिक उपयोग के लिए मिल सकें।

मानचित्र ऐसे बक्सों में रखे जाने चाहिए जिनमें धूल न जा सके। समय-समय पर मानचित्रों की जाँच-परख होती रहनी चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार छोटी-मोटी मरम्मत की जा सके।

ग्लोब या भूगोलक : एक अपरिहार्य साधन

हमारे युग में हवाई यात्रा के कारण लोग अधिकाधिक अन्तर्राष्ट्रीय वृत्ति वाले होते जा रहे हैं अतः भूगोलक एक अपरिहार्य दृश्य-श्रव्य साधन हो गया है। कुछ प्रयोजनों के लिए सपाट मानचित्र की अपेक्षा भूगोलक श्रेष्ठ सिद्ध होता है। भूगोलक की सहायता से हम संसार की भौतिक एकता, उसके एक भाग का शेष भागों के साथ सम्बन्ध तथा संसार के एक भाग से दूसरे भाग की दिशा-स्थिति देख और समझ सकते हैं। भूगोलक की सहायता से अक्षांश और देशांश, समय-परिवर्तन और ऋतु-परिवर्तन सरलता से समझे जा सकते हैं।

भूगोलक शिशुशालाओं के छोटे-छोटे बच्चों के लिए भी उपयोगी साधन है। दूरस्थ देशों के लोगों और वहाँ की घटनाओं के बारे में बच्चे प्रायः पढ़ते-सुनते रहते हैं। अभी उस दिन मिहिर सेन ने जिब्राल्टर की प्रसिद्ध जलसंधि को तैरकर पार किया था। कहाँ है यह जलसंधि? अफ़्रीका और यूरोप के महाद्वीपों को यह कैसे विभक्त करती है? शास्त्रीजी का निधन ताशकंद में हुआ। मंजू के चाचा ने यह चित्र एडिनबर्ग से भेजा है। कहाँ हैं ये स्थान? इन प्रश्नों के उत्तर मानचित्रों की अपेक्षा भूगोलक अधिक सार्थकता से दे सकते हैं।

उच्चावच भूगोलक

जैसा पहले कहा जा चुका है, भूगोल के कुछ लेखक भूगोलक अथवा मानचित्र में ऊँचे भूखण्डों को उच्चावच पद्धति से दिखाने के विरोधी हैं क्योंकि इस प्रकार इनमें ऊँचाई ठीक-ठीक नहीं दिखाई जा सकती। यदि अठारह इंच व्यास वाले भूगोलक में एवरेस्ट की ऊँचाई ठीक-ठीक दिखानी हो तो उसे एक इंच के शतांश से कम ही रखनी होगी। "भूगोलक संतरे की अपेक्षा कहीं अधिक चिकना होता है। यदि उसका धरातल ज़रा भी ऊबड़खावड़ रहा तो बिल्कुल ही ग़लत असर पड़ेगा।"[१२]

यह तर्क निस्सन्देह सही है, फिरभी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि विद्यार्थियों को ऐसा भूगोलक देखने को मिले जिसमें उच्चावच और प्राकृतिक रंग-पद्धति अपनाई गई हो तो भूमण्डल के संबंध में उनकी धारणा अधिक स्पष्ट हो सकेगी।

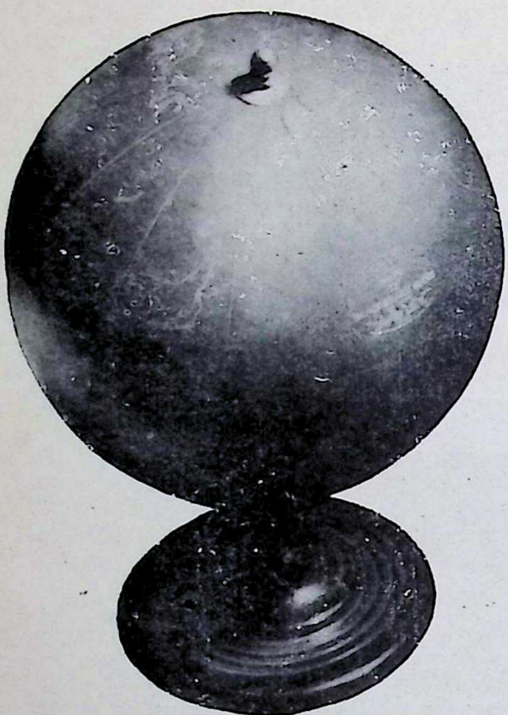
भूगोलक का उपयुक्त आकार-प्रकार

आजकल हमारे अधिकांश स्कूलों में भूगोलक रखे जाते हैं, फिरभी न तो वे वांछित ढंग के होते हैं और न उनका आकार ही उपयुक्त होता है। फिर, उनका उपयोग जितना किया जाना चाहिए उतना नहीं किया जाता। कक्षा में काम आनेवाले भूगोलक १६ इंच व्यास से कम के न होने चाहिए, यद्यपि १६ इंच व्यास वाला भूगोलक भी पूरी कक्षा के देखने के लिए पर्याप्त बड़ा नहीं होता। दूकानों में इससे बड़े आकार के भूगोलक नहीं मिलते, इसलिए कुछ स्कूलों में अध्यापक और विद्यार्थी स्वयं ही उपयुक्त आकार के बड़े भूगोलक बना लेते हैं। भूगोलक बनाने में बच्चों को आनन्द भी आता है। बड़े आकार का भूगोलक बनाना बहुत सरल है और उसे कम खर्च में बनाया जा सकता है। काफ़ी बड़े आकार के गोलक घासफूस और टाट से या अन्य ऐसी ही वस्तुओं की मदद से पहिले बनाए जाते थे। लेई की सहायता से उस पर कई पर्तों में अखबारी कागज़ चिपका दिया जाता था। उन्हें चिकना और समतल बनाने के लिए काग़ज़ की लुगदी लगाई जाती थी। फिर उसे सुखाया जाता, उस पर रंग लगाया जाता और मानचित्र खींचा जाता था।

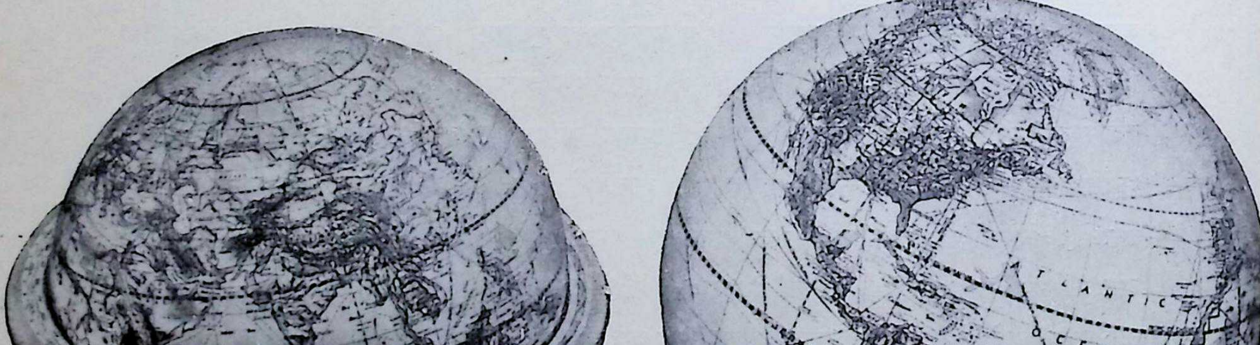
काग़ज़ की लुगदी बहुत ही कम खर्च में कोई भी बना सकता है; अखबार के छोटे-छोटे टुकड़े किसी बर्तन में भरें। फिर ऊपर तक गरमपानी भर दें। रात भर कागज़ों को पानी में भीगने दें। इसके बाद छलनी से या दबाकर कागज़ का अतिरिक्त पानी निकाल दें। फिर आटे की लेई उसमें मिलाएं। अखबार के जितने ताव प्रयोग में लाए गए हों लगभग उतने चम्मच आटे का

---

१२ जेम्स फ़ेयरग्रीव—'ज्योग्रैफ़ी इन स्कूल'।



एक स्लेट-पृष्ठीय भूगोलक (जार्ज फ़िलिप एण्ड सन तथा ओरिएंट लांगमैन्स प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता के सौजन्य से)।



पालना-पीठिका में रखे भूगोलक (वेबर कास्टेलो कं०, शिकागो, अमरीका के सौजन्य से)

प्रयोग करें। लेई डालकर तब तक खूब घोटें जब तक सारा पदार्थ चिपकने वाली लसदार लुगदी न बन जाए।

स्कूलों में काम आनेवाले भूगोलक तीन प्रकार के होते हैं: राजनैतिक भूगोलक, भौतिक-राजनैतिक भूगोलक और स्लेट-पृष्ठीय भूगोलक। प्राइमरी कक्षाओं में राजनैतिक भूगोलक का उपयोग किया जाता है। इसमें न्यूनतम विवरण दिए रहते हैं। ऊँची कक्षाओं में भौतिक-राजनैतिक भूगोलकों का उपयोग किया जाता है। इनमें उच्चावचन अथवा रंग की सहायता से ऊँचे भूखण्ड दिखाए जाते हैं। स्लेट-पृष्ठीय भूगोलक सभी कक्षाओं के लिए उपयोगी होता है क्योंकि विशिष्ट आवश्यकता के अनुसार उस पर मानचित्र खींचा जा सकता है।

भूगोलक प्रायः पीठिकाओं पर रखे जाते हैं या झूले में, पर छत से लटकाए गए भूगोलक से ही सर्वाधिक लाभ हो सकता है। यदि छत से लटकानेवाले भूगोलक का उपयोग करें तो इस बात का ध्यान रखें कि बच्चों का अपना देश ऊपरी सिरे पर रहे।

मानचित्रों और भूगोलकों का अन्य सामग्री के साथ उपयोग

अन्य दृश्य-श्रव्य साधनों तथा सामग्री के साथ मानचित्र और भूगोलक ज्ञानार्जन के लिए अधिक प्रभावकारी होते हैं। भूगोल के अध्ययन में मानचित्रों और भूगोलकों के साथ फिल्मपट्टियों, स्लाइडों, त्रिविमितीय रेखाचित्रों और स्थिरवस्तु-चित्रों का घनिष्ट योग रहता है। विभिन्न देशों की टिकटें और मुद्राएँ तथा प्रस्तरों और खनिजों के नमूने मानचित्र के अध्ययन को अधिक सार्थक और प्रभावकारी बना देते हैं। १६ मि० मी० की भौगोलिक फिल्में, जो अब शैक्षणिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् तथा विदेशी दूतावासों से भी मिल सकती हैं, अत्यधिक उपयोगी होती हैं। इनमें से कुछ हैं: 'अंटार्कटिका' (सं० रा० अमरीका), 'नार्थ सी' (ब्रिटेन), 'ब्रेज़ द सी' (नेदरलैण्ड), 'मेकांग' (सं० रा० संघ) और 'होली हिमालयाज़' (भारत)। पर्दे पर प्रदर्शित ये फिल्में इतनी यथार्थ जान पड़ती हैं कि प्रत्यक्ष अनुभव ही इनकी समता कर सकता है।

११ चित्र और फ़ोटोचित्र

चित्र अध्ययन को सार्थक बनाते हैं

चित्र अध्ययन के अमूल्य साधन हैं। वे प्रकरण को अधिक स्पष्ट और रोचक बना देते हैं। जिन बातों का प्रत्यक्ष अनुभव बच्चों को नहीं होता वे चित्रों की सहायता से काफ़ी हद तक स्पष्ट और सार्थक हो जाती हैं। आइए, उस अध्यापक की स्थिति की कल्पना करें जो बच्चों को एक ऐसे पशु के बारे में बता रहा है जिसे बच्चों ने कभी नहीं देखा। अध्यापक पशु की ऊँचाई, उसके रंग सिर, पैर और कानों का वर्णन करता है, पर एकभी बच्चा उस पशु के बारे में ठीक-ठीक नहीं समझ पाता। यदि बच्चे उस पशु का चित्र देख पाएँ तो वे उसके बारे में कितनी जल्दी और ठीक-ठीक समझ लेंगे।

अध्ययन-अध्यापन की किसी ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकना कठिन है जिसमें चित्रों की मदद न ली जा सके। अंकगणित और गणित जैसे विषयों में भी चित्रों से मदद ली जा सकती है। पाँच की संख्या का अर्थ रोचक और यथार्थ ढंग से समझाने के लिए हम बच्चों को पाँच पक्षियों या अन्य किन्हीं चीज़ों के चित्र दिखाते हैं। सात बच्चे और चार आम दिखाने वाले चित्र से यह प्रश्न स्वतः पैदा होता है कि 'हर बच्चे को एक आम देने के लिए और कितने आमों की ज़रूरत है?' सामान्य भूमितीय आकारों—वृत्त, वर्ग, त्रिभुज, आयत आदि—के चित्र दिखाए जाने पर वे सब तुरंत बच्चों की समझ में आ जाते हैं। अंगरेज़ी, हिन्दी अथवा अन्य

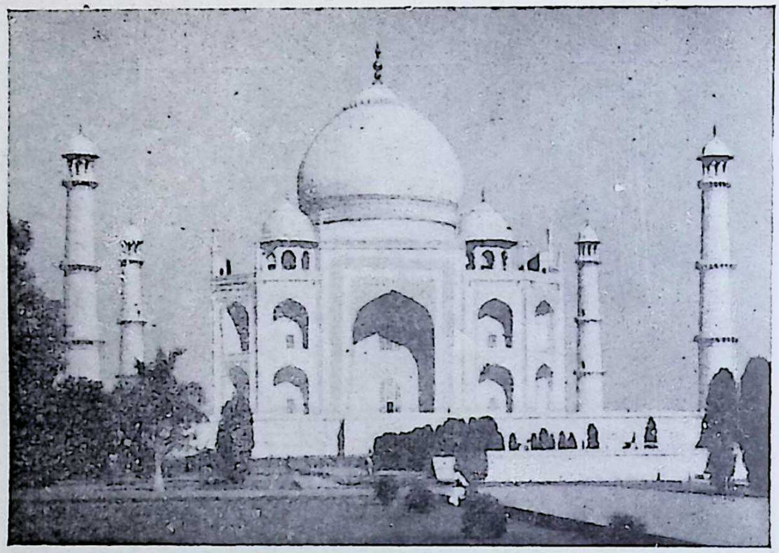
किसी भी भाषा को सीखते समय शब्दों और वाक्यों के अर्थ समझने में चित्र अत्यधिक सहायक होते हैं। स्वास्थ्य और स्वास्थ्य-विज्ञान के अध्ययन में भी चित्र अमूल्य साधन होते हैं। अभिभावक और अध्यापक यदि बच्चों को उपयुक्त चित्रों द्वारा सहायता करें तो वे सफ़ाई, आँखों और दाँतों



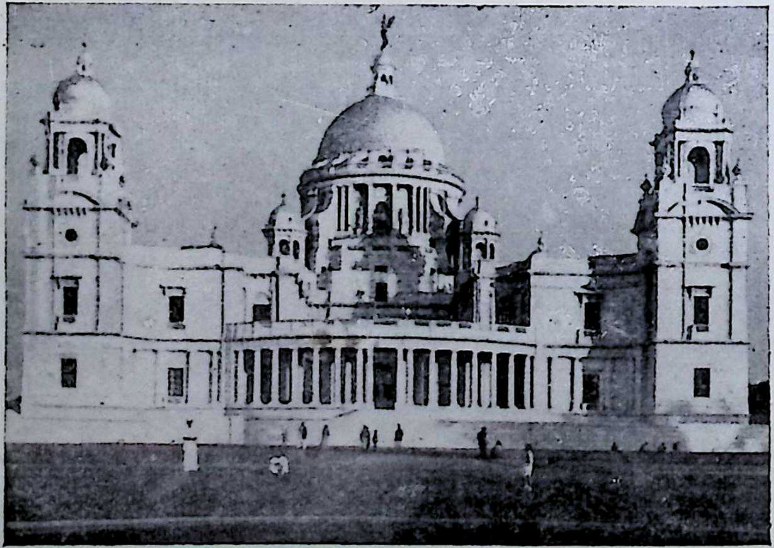
बच्चों के लिए प्रत्ययकारी साक्ष्य (चित्र, लेखक द्वारा)

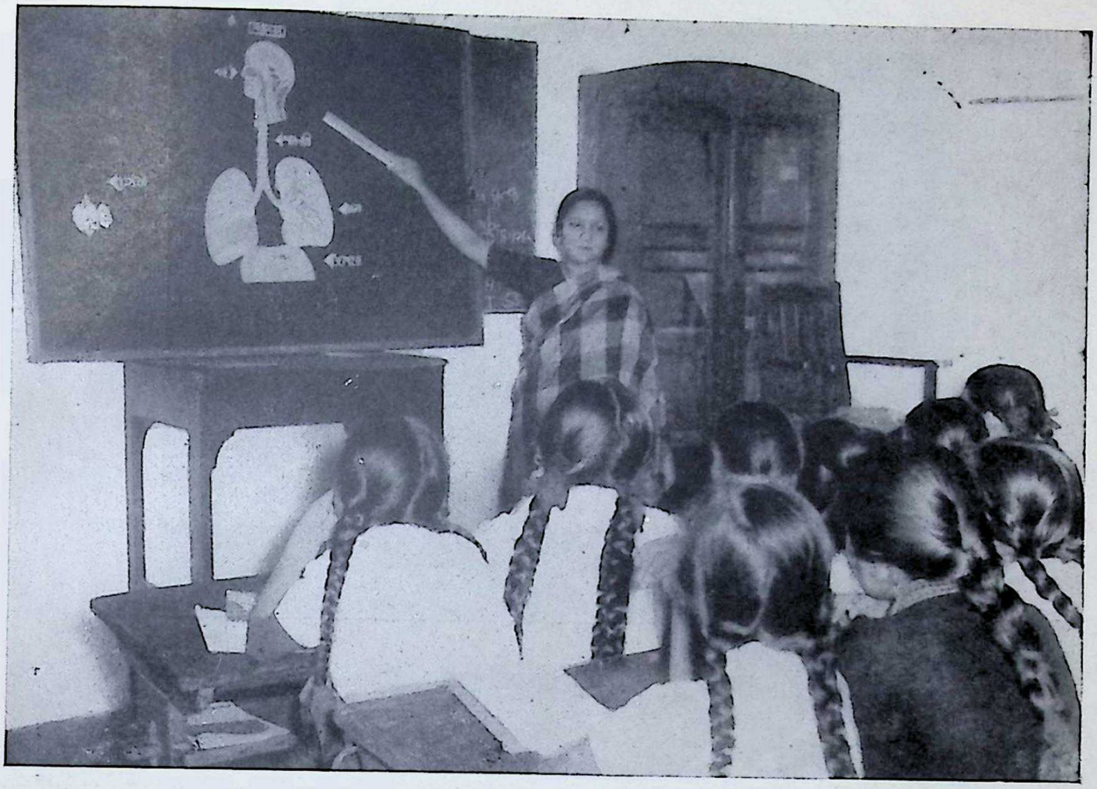
की देखभाल और आसनों के सम्बन्ध में बहुत जल्द बहुत-कुछ सीख सकते हैं। आजकल पत्रिकाओं में उपयोगी भोज्य पदार्थों के चित्रों की भरमार रहती है। इनमें से कुछ चित्रों को विज्ञप्ति पट्ट पर या फ्लैनेल पट्ट पर प्रदर्शित किया जा सकता है। बच्चों से कहा जा सकता है कि अपने नाश्ते या दोपहर के भोजन के लिए कुछ चीज़ें उनमें से चुन लें और अपने चुनाव के कारण भी बताएँ। शरीर के विभिन्न अंगों की क्रियाविधि समझने में अन्य किसी साधन की अपेक्षा 'मॉडेल' अधिक उपयोगी होते हैं, फिरभी उपयुक्त ढंग से उपयोग करने पर चित्र भी सहायक होंगे। स्वास्थ्य-विज्ञान की कक्षा में अनेक अध्यापकों ने विवेचन के साथ मानव शरीर के अंगों के चित्र एक-एक करके फ्लैनेल पट्ट पर प्रदर्शित किए हैं और ऐसे प्रदर्शन को बहुत उपयोगी पाया है।

चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने पर जीवनी एक मार्मिक जीवन्त अध्ययन बन जाती है। महापुरुषों के सम्बन्ध में बच्चों के सामने चित्र अथवा फ़ोटोचित्र प्रदर्शित किए बिना कोई चर्चा करनी ही न चाहिए। चित्र, चाहे अच्छे हों या बुरे, यथार्थ का आभास तो देते ही हैं। फिर भी, यथासम्भव सर्वोत्तम उपलब्ध चित्रों को ही चुनना चाहिए।



फ़ोटो चित्रों के प्रयोग से चर्चा मनोरंजक हो जाती हैं।
(चित्र, लेखक द्वारा)





श्वसन-तंत्र सम्बन्धी पाठ को फ्लैनेल बोर्ड पर बने चित्रों की सहायता से सार्थक बनाती हुई अध्यापिका। (पी० वी० टी० डी० कालेज आफ़ एजुकेशन फ़ार वीमन, बम्बई के सौजन्य से)

यथार्थ वस्तुओं के अभाव में, प्रकृति के अध्ययन में चित्रों से बड़ी सहायता मिलती है। हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि यथार्थ वस्तुओं और चित्रों या मॉडिलों-सभी के अभाव में छोटे बच्चों को जानवरों, पक्षियों, फूलों और कीड़ोंमकोड़ों के बारे में किस तरह समझाया जा सकता है।

चित्रों और मानचित्रों की सहायता से समझाने पर भूगोल के सूक्ष्म अर्थ वाले शब्द और प्रतीक सार्थक बन जाते हैं। अभिभावकों और अध्यापकों द्वारा समाचारपत्रों और पत्र-पत्रिकाओं में निकलनेवाले चुन हुए चित्रों को जब उपयुक्त शीर्षक देकर विज्ञप्ति पट्ट पर प्रदर्शित किया जाता है तो छोटे-छोटे बच्चे संसार की दैनिक घटनाओं में रुचि लेने लगते हैं। दुर्भाग्य की बात है कि समाचारपत्र और पत्र-पत्रिकाएँ जिनमें बहुमूल्य शिक्षण-साधन भरे रहते हैं, सामान्यतः पुराने बेकार रद्दी काग़ज़ की तरह बेच दिए जाते हैं।



चित्रों के माध्यम से जीवनचरित का अध्ययन सजीव और मार्मिक होता है।
(साउथ प्वाइंट स्कूल, कलकत्ता की एक शिक्षण-स्थिति)

संसार की विभिन्न जातियों के बीच सांस्कृतिक मानमूल्यों और जीवन-पद्धतियों के पारस्परिक आदान-प्रदान और विवेचन को प्रोत्साहित करने में भी चित्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पूर्व और पश्चिम के विद्वान बहुत समय से एक दूसरे की संस्कृतियों का अध्ययन करते आ रहें हैं; लेकिन जिस बोध और सद्भाव पर विश्व-शान्ति निर्भर है उस की उपलब्धि के लिए तब तक कोई यथार्थ प्रगति नहीं हो सकती जब तक जीवन की सर्वाधिक निर्माणात्मक अवधि में बच्चों को इन सांस्कृतिक विभेदों का ज्ञान नहीं कराया जाता। चित्रों द्वारा इस ज्ञान को सार्थकता से प्रस्तुत किया जा सकता है। साथ ही, अधिक महत्त्व की बात यह है कि सहानुभूति को जागृत करने के लिए भी चित्रों का उपयोग किया जा सकता है।

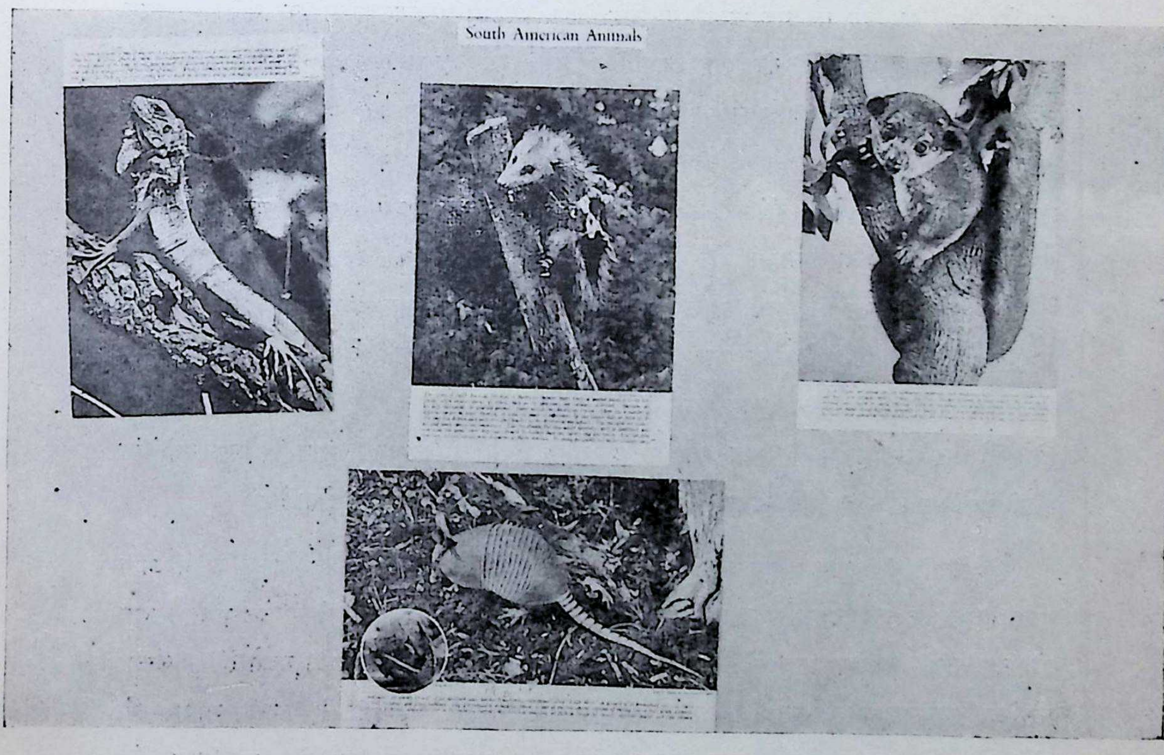
चित्र सस्ते साधन हैं

चित्रों का संग्रह हर घर और स्कूल में होना चाहिए। समाचारपत्रों, पत्र-पत्रिकाओं, कैलेंडरों, पर्यटक और प्रचार सामग्री आदि से, बिना खर्च किए, एक सुन्दर चित्र-संग्रह तैयार किया जा सकता है। व्यवसायिक फ़र्मों और विदेशी सरकारों के सूचना केन्द्रों को आवेदन करने पर मुफ़्त मिल जानेवाले चित्रों के सेट विशेषरूप से सहायक होते हैं। चित्र संग्रह के लिए सचित्र

प्रकाशन भी महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। इनमें ऐसे प्रकाशन भी होते हैं जिनके दाम अधिक नहीं होते पर चित्र बड़ी संख्या में रहते हैं ; इसलिए प्रति चित्र मूल्य कुछ पैसे ही पड़ता है।

चित्रों का उपयुक्त चयन और उपयोग

चित्रों का प्रभाव उनके उपयुक्त चयन और उपयोग पर निर्भर रहता है। अपने सीमित अनुभव के कारण बच्चे प्रायः ग़लत धारणाएँ बना लेते हैं। उपयुक्त चित्रों द्वारा इन भ्रान्त धारणाओं को दूर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि कलकत्ते में रहनेवाला कोई बच्चा यह समझता हो कि नारियल कलकत्ते के आसपास ही होते हैं, तो केरल के गाँवों के चित्र उसके इस भ्रम को दूर कर देंगे। अथवा, यदि किसी 'इग्लू' (बर्फ़ से बनी झोपड़ी) का चित्र देखकर या कैनेडा के हिमाच्छादित उत्तरी भाग के 'एस्किमो' लोगों के दैनिक जीवन पर रावर्ट फ़्लेहर्टी द्वारा बनाई गई प्रसिद्ध (किन्तु कुछ अंशों में अशुद्ध) फिल्म 'नैनुक आफ़ दि नार्थ' को देख



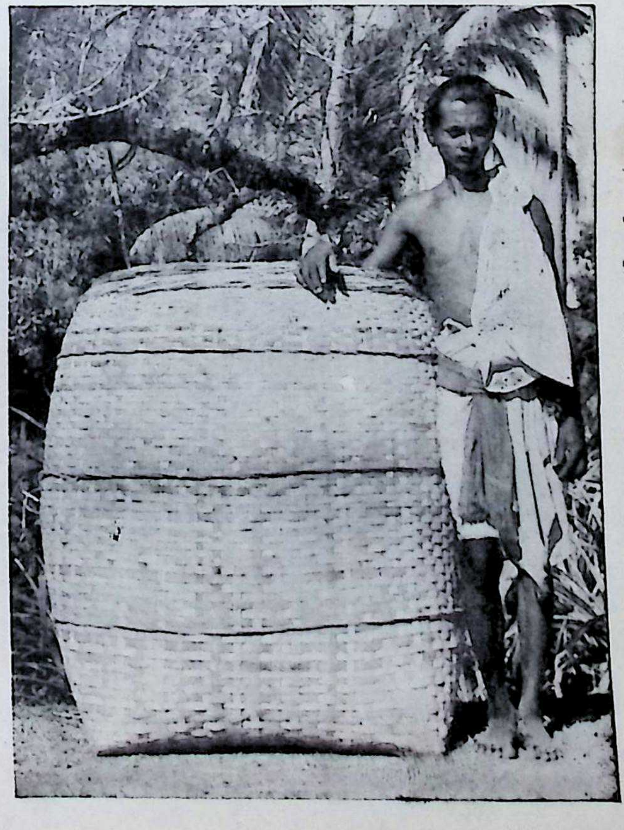
सस्ती पुरानी पत्रिकाओं से पशुओं, पक्षियों ; मछलियों, फूलों तथा परिवहन आदि के सम्बन्ध में अनेक मनोरंजक चित्र संग्रहीत किए जा सकते हैं जो प्राइमरी स्कूलों के लिए अत्यन्त उपयोगी होंगे। दक्षिण अमरीका के जानवरों के ये चित्र एक पुरानी पत्रिका से केवल १६ पैसे ख़र्च करके एकत्र किए गए थे। इनमें से कुछ का आकार ८इं०×१०इं० है।

कर बच्चे यह धारणा बना लें कि 'एस्किमो' केवल 'इग्लू' में ही रहते हैं, तो आर्कटिक प्रदेश के जीवन सम्बन्धी चित्र उनके इस भ्रम को दूर करके उन्हें विश्वास दिला देंगे कि इन क्षेत्रों के लोगों का सामान्य आवास 'इग्लू' नहीं है। यह सही है कि 'एस्किमो' 'इग्लू' बनाते हैं और उनमें शरण लेते हैं; किन्तु ऐसा वे केवल शीतकाल की असामान्य स्थितियों में ही करते हैं। जिन चित्रों के आधार पर बच्चे उपर्युक्त भ्रामक धारणाएँ बना सकते हैं वे रोज़मर्रा की सामान्य चीज़ों के चित्र नहीं हैं। अपने समाचार चित्र के लिए फ़्लेहर्टी ने 'इग्लू' के जो चित्र लिए थे उनमें नैनूक लोगों के सामान्य घर और परिवार का प्रदर्शन ही नहीं किया गया। इसलिए, विषय के पूर्ण विवेचन या दिग्दर्शन के लिए, असामान्य वस्तुओं या स्थितियों के चित्रों के साथ सार्वलौकिक सामान्य चित्रों का भी प्रदर्शन किया जाना चाहिए। यदि सामान्य सार्वलौकिक चित्र उपलब्ध न हों तो दिखलाए जानेवाले असामान्य चित्रों के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट किया जाना चाहिए।

किसी भी अध्यापन सामग्री के चयन की भाँति कक्षा के लिए चित्रों के चयन की पहली कसौटी यह है कि किस हद तक यह सामग्री या चित्र विद्यार्थियों की आवश्यकता पूरी कर सकेंगे? जिन चीज़ों का कक्षा के विद्यार्थियों को स्पष्ट ज्ञान है उनके चित्र दिखाना व्यर्थ है। केरल अथवा बंगाल का कोई भी अध्यापक कक्षा में नारियल के पेड़ों के चित्र सामान्यतः नहीं दिखाएगा। यदि वस्तु उपलब्ध हो तब उसके चित्र का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। जानवरों के चित्र दिखाने के बदले बच्चों को अजायबघर में ले जाना अधिक अच्छा होगा। यों, वस्तुओं को प्रत्यक्ष देख पाने के अवसर सीमित होते हैं, इसलिए पाठ्य प्रकरणों को स्पष्ट और रोचक बनाने के लिए जहाँ सम्भव हो, चित्रों का उपयोग करना चाहिए। अन्य दृश्य-श्रव्य साधनों के समान, चुने गए चित्र भी विद्यार्थियों के औसत स्तर के अनुकूल होना चाहिए। छोटे बच्चों के लिए चुने गए चित्र तेज़ रंगोंवाले होने चाहिए और उनमें विवरण अधिक न होना चाहिए। रंगीन चित्र आकर्षक होते हैं पर उनके रंग निश्चित रूप से प्राकृतिक होने चाहिए। शिक्षण के लिए चित्रों या फ़ोटोचित्रों का उद्देश्य बच्चों के सामने वस्तुओं का यथार्थ रूप प्रस्तुत करना ही होता है।

चित्रों के चुनाव में एक और प्रश्न महत्त्वपूर्ण है: क्या चित्र से अपेक्षित आकार का भी भान होता है? जब तक चित्र में कोई ऐसी चीज़ न हो जिसका आकार विद्यार्थियों को भलीभाँति मालूम हो तब तक चित्रगत वस्तु के आकार के सम्बन्ध में बच्चे ग़लत अनुमान लगा सकते हैं। अच्छा फ़ोटोग्राफ़र हमेशा ध्यान रखता है कि जिस वस्तु का फ़ोटो लिया जा रहा है उसके आकार को मोटे तौर से स्पष्ट करने के लिए मानव आकार या अन्य वस्तुएँ चित्र में अवश्य दिखाई दें। किसी कीड़े को पकड़े हुए मनुष्य का हाथ देखकर उस कीड़े के वास्तविक आकार का अनुमान लग जाता है। वयस्क लोग अन्य साधनों से भी आकार का अन्दाज़ लगा सकते हैं, पर बच्चों के लिए तो शायद यही सर्वोत्तम उपाय है।

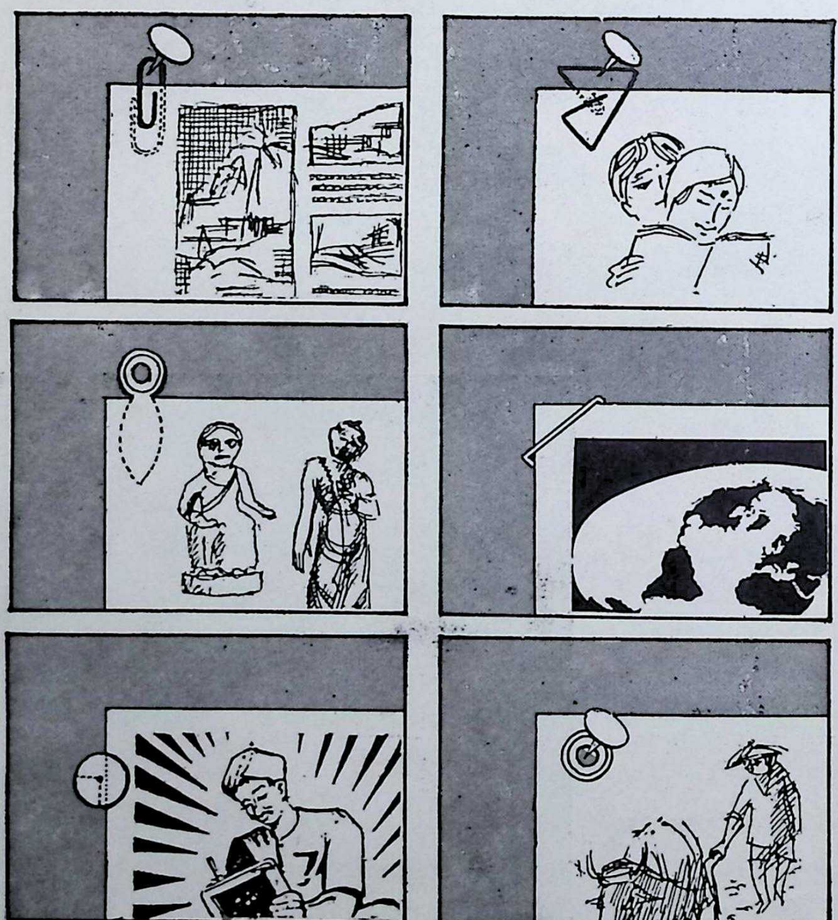




इन चित्रों में मनुष्य के आकार की तुलना से ढंडौली (धान रखने का झाबा) और हाथी के आकार का भान होता है। झाबे का चित्र श्री जे० घोष (उद्योग में कला का संस्थान) ने और हाथी का चित्र लेखक ने लिया था।

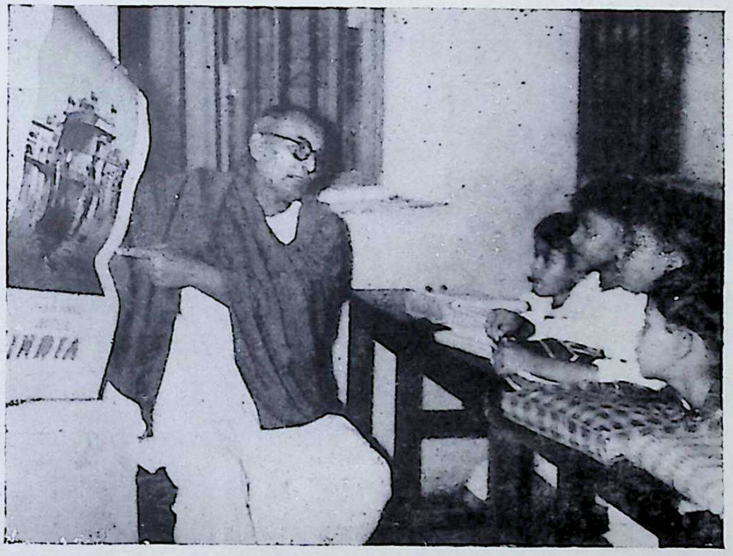
कक्षा में दिखाए जानेवाले चित्रों और फ़ोटोचित्रों का आकार इतना बड़ा और स्पष्ट होना चाहिए कि वे सभी बच्चों को साफ़-साफ़ दिखाई दें। फ़ोटोचित्रों की उपयोगिता उनके बहुत छोटे होने के कारण नष्ट हो जाती है। यदि छोटे चित्रों का उपयोग किया जाए तो उन्हें एक-एक बच्चे को अलग-अलग दिखाना होगा या अपारचित्रदर्शी की सहायता से पर्दे पर प्रक्षेपित करके दिखाना होगा।

यदि चित्र किसी कक्षा में या बहुत-से बच्चों को दिखाने हों तो उन्हें उपयुक्त स्थान पर रखना चाहिए। कुछ अध्यापक बच्चों की टोली को अपने हाथ में लेकर चित्र दिखाते हैं; ऐसा करना ठीक नहीं है। चित्र को हाथ में लेकर अध्यापक उसकी विशेषताओं या उसके लक्षणों को कैसे निर्दिष्ट करेगा? यह देखने के लिए कि सभी बच्चे चित्र ठीक-ठीक देख पा रहे हैं या नहीं



चित्रों के प्रदर्शन के सही ढंग। (चित्र शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद्, नई दिल्ली के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग के मुख्य कलाकार श्री डी० बख्शी द्वारा प्रस्तुत)

वह कमरे में किस तरह घूम-फिर सकेगा? यदि चित्र को किसी आधार पर सटका दिया जाए तो यह समस्या हल हो सकती है। चित्रों के प्रदर्शन के लिए आदर्श है विज्ञप्ति पट्ट जो कक्षाके प्रत्येक कमरे में उपलब्ध होना चाहिए। चित्रों का प्रदर्शन करने के लिए कुछ अध्यापक उन्हें ड्राइंग पिनों से विज्ञप्ति पट्ट पर जड़ देते हैं; किन्तु जो चित्रों महत्ता समझते हैं वे ड्राइंग पिनों को चित्रों पर लगाने के बदले उन्हें चित्रों की बग़ल में लगाते हैं, या चित्रफलक में छेद करके उनमें गोंददार अँखुए लगाकर पिनें फँसाते हैं, अथवा चित्रफलक में 'क्लिप' लगाकर उनमें पिन फँसाते हैं और इस प्रकार चित्रों को विज्ञप्ति पट्ट पर प्रदर्शित करते हैं।



बच्चों के लिए चित्र में जो विशेष बातें देखना आवश्यक हो उन्हें देखने-समझने में अध्यापक को सहायता करनी चाहिए।
(सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता की एक छोटी कक्षा)

चित्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में एक और महत्त्वपूर्ण बात है जो सदैव स्मरण रखनी चाहिए—आवश्यकता से अधिक चित्रों का एक साथ प्रयोग न किया जाय। अभिभावकों और अध्यापकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि चित्र और फ़ोटोचित्र हमेशा अपनी कहानी स्वतः कहनेवाले नहीं होते। बच्चे चित्र में जो देखते हैं वह उससे बिल्कुल भिन्न हो सकता है जो अध्यापक उन्हें दिखाना चाहता हो। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि सभी चित्र बच्चों में एकाएक अभिरुचि उत्पन्न नहीं कर पाते। चित्र दिखाने से पहले बच्चों की जिज्ञासा और उत्सुकता जगाने के लिए अध्यापकों को उन्हें यह बता देना चाहिए कि चित्रों में क्या-क्या देखना है। ऐसे प्रश्नों की तालिका, जिनके उत्तर सामग्री का सतर्कतापूर्वक निरीक्षण करके दिये जा सकते हैं, तैयार करके शिक्षक चित्र के सार्थक प्रयोग में छात्रों की सहायता कर सकता है।

चित्रों के कुछ पहलू ऐसे भी होते हैं जिनके अध्ययन का तरीक़ा बच्चों को सिखाया जाना चाहिए। पहले कहा जा चुका है कि एक अच्छे चित्र में ज्ञात आकार वाली एक-न-एक वस्तु हमेशा रहती है ताकि चित्रगत वस्तु के आकार का अनुमान किया जा सके। ऐसी तुलना करने की शिक्षा बच्चों को देने का काम अध्यापक का है। जानी-पहचानी चीज़ों को चित्र में देखकर उनके आकार के आधार पर दूरी का आन्दाज़ लगाने की शिक्षा भी बच्चों को दी जानी चाहिए। जिन वस्तुओं से उच्च या निम्न तापमान का संकेत मिलता हो उन्हें चित्र में देखकर परखने की हिदायत भी बच्चों को देनी चाहिए। हलकी पतली पोशाक, चालू बिजली के पंखे (गतिशील वस्तु में कुछ ऐसी विशेषताएँ होतो हैं जो गतिहीन वस्तु में नहीं होतीं। बच्चों में इन विशेषताओं को खोजने और समझने की क्षमता होनी चाहिए) और खुली हुई खिड़कियाँ गरम मौसम की सूचना देती हैं। पोशाक में शाल या कोट, घरों की धुँआ देती हुई चिमनियाँ और बन्द खिड़कियाँ सामान्यतः निम्न तापमान का संकेत देती हैं।

चित्रों को चित्रफलक पर चढ़ाकर, शीर्षक देकर फ़ाइलबद्ध करना चाहिए

जो भी फ़ोटोचित्र या चित्र उपयोगी हो उसे चित्रफलक पर चढ़ा देना चाहिए। ऐसा करने से चित्र को क्षति न पहुँचने पाएगी और उसे फ़ाइलबद्ध कर संग्रहीत करने में सुविधा होगी। कुछ संस्थाएँ चित्र चढ़ाने के लिए श्वेत चित्रफलकों का प्रयोग करती हैं। ऐसे फलक मज़बूत तो होते हैं और अनेक आकारों में मिलते हैं, पर खर्चीले होते हैं और थोड़े ही उपयोग के बाद गन्दे हो जाते हैं। देखा गया है कि सफ़ेद रंग समय बीतने पर पीला पड़ जाता है। भिन्न-भिन्न रंगों में उपलब्ध आवरण कागज़ (जो पत्रिकाओं और पैम्फ़लेटों के कवर के काम आता है) अधिक उपयुक्त व उपयोगी होता है। कागज़ हलके रंगों के ही होने चाहिए। गहरे रंगों की पृष्ठभूमि में चित्र नहीं जँचेंगे

चित्रों को फलक पर चढ़ाना बिल्कुल आसान काम है। सबसे सरल तरीक़ा यह है कि चित्र के पिछे गोंद लगाएँ, उसे फलक पर चिपका दें और कपड़े के टुकड़े से उसे दाबकर समतल कर दें। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गोंद सूखने पर चित्र सिमट या सिकुड़ न जाएँ। चित्र को फलक पर चढ़ाकर किसी वज़नदार चीज़ के नीचे कुछ देर दबाकर रखना चाहिए। चित्रों को फलक पर चढ़ाना महत्त्व की बात है। स्कूलों या घरों में इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि अध्यापक और माता-पिता चित्रों को महत्त्व दें तो बच्चे भी वैसा करेंगे और इस तरह उनका ज्ञान बढ़ेगा। चित्रों को चित्रफलक पर चढ़ाना पश्चिमी देशों में बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इस विषय पर फिल्में और फिल्मपट्टियाँ तैयार की जा चुकी हैं। इन में से एक—'वेट माउन्टिंग पिक्टोरिएल मैटीरियल्स'—११ मिनिट की १६ मि० मी० सवाक् फिल्मपट्टी है जो दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली में उपलब्ध है। 'माउन्टिंग पिक्चर'

नाम की रंगीन फिल्मपट्टी में विभिन्न प्रयोजनों के लिए चित्रों को फलक पर चढ़ाने की अनेक पद्धतियाँ दिखाई गई हैं। यह दिल्ली-स्थित 'कम्यूनिकेशन्स मीडिया सेंटर आफ़ द यू० एस० ए० आई० डी०' में उपलब्ध है।

स्कूलों में चित्रों का सूचीपत्र होना चाहिए। चित्रों को इस ढंग से रखा जाना चाहिए कि पढ़ाते समय अध्यापकों को जिन चित्रों की आवश्यकता पड़े, उन्हें आसानी से निकाला जा सके। चित्रों को संग्रह करने के अनेक ढंग हैं। एक सरल तरीक़ा यह है कि उन्हें गहरे खानोंवाली अलमारी में वर्णक्रमानुसार रखा जाए।

अच्छे चित्र बच्चों के बार-बार प्रयोग करने पर प्रायः पसीने आदि से गन्दे हो जाते हैं। चित्रावरण हमेशा सस्ते नहीं होते, फिरभी कुछ विशिष्ट चित्रों को पारदर्शी प्लास्टिक से आवृत करके रखना चाहिए। इस तरीक़े में एक यही खराबी है कि प्लास्टिक का आवरण चमक पैदा कर सकता है।

अच्छा चित्र अपने आपको स्वयं स्पष्ट कर देता है; फिरभी कक्षाओं में प्रयुक्त अधिकांश चित्र तब अधिक प्रभावकारी होते हैं जब उन्हें उपयुक्त शीर्षक दे दिए जाएँ। शीर्षक-हीन चित्रों का उपयोग बच्चों के ज्ञान की परख के लिए या उनकी आलोचनात्मक वृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए किया जाता है।

१२ पोस्टर

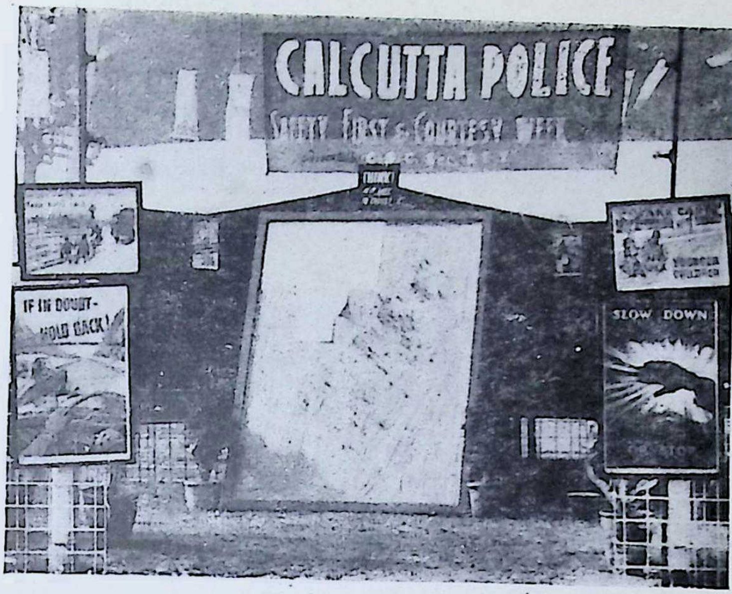
सरकार के विभागों और अधिकांश व्यापारिक फ़र्मों द्वारा किसी अभियान अथवा प्रचार के लिए पोस्टरों का व्यापक प्रयोग प्रायः किया जाता है। कलकत्ता, बम्बई अथवा दिल्ली जैसे नगरों की मुख्य सड़कों पर ऐसा स्थान खोज पाना कठिन होगा जहाँ कोई पोस्टर न लगा हो।

अच्छे पोस्टर के लक्षण

अच्छे पोस्टर में केवल एक ही विचार को सरल ढंग से व्यक्त किया जाता है। पोस्टर में अधिक शब्दों का प्रयोग कभी न करना चाहिए। प्रयुक्त निदर्शन—चित्र, व्यंगचित्र, रेखाचित्र—कुछ भी हो, ऐसा हो कि देखते ही समझ में आ जाए। पोस्टर पर नज़र पड़ते ही उसकी कहानी स्पष्ट हो जानी चाहिए। निदर्शन ओर शीर्षक इतने बड़े हों कि आसानी से देखे और पढ़े जा सकें। पोस्टर का आकार कम-से-कम २०″×३०″ होना चाहिए। पोस्टर रंगीन हो तो अच्छा, पर रंगीन होना अनिवार्य नहीं है। रंगीन पोस्टर सामान्यतः अधिक आकर्षक और प्रभावकारी होता है।

कक्षा में पोस्टरों का उपयोग

कक्षा में पोस्टरों की उपयोगिता सीमित होती है, फिरभी प्रेरणा देनेवाले साधन के रूप में वे बहुत सहायक होते हैं। विदेशी सरकारों के सूचना-केन्द्रों, यात्रा-एजेंसियों तथा परिवहन मंत्रालय द्वारा जारी किए जानेवाले आकर्षक पोस्टरों का उपयोग भूगोल पढ़ाते समय किया जा

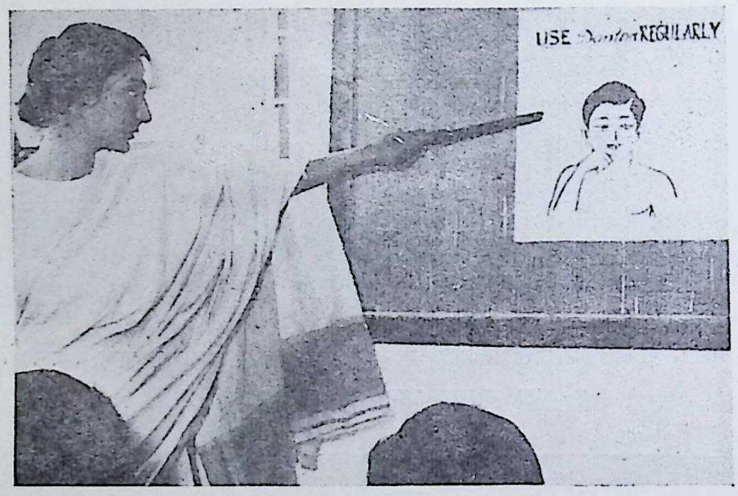


कलकत्ता पुलिस द्वारा प्रतिवर्ष मनाए जानेवाले सुरक्षा और विनम्रता सप्ताह में पोस्टरों का व्यापक उपयोग किया जाता है।



यह पोस्टर नज़र पड़ते ही अपनी बात कह जाता है।
(स्टैण्डर्ड वैकूअम आइल कं० के सौजन्य से)

सकता है। और वह लाभदायक होता है। सामुदायिक विकास मंत्रालय द्वारा जारी किए गए पोस्टर देश की विविध प्रयोजनाओं और विभिन्न कार्य-कलापों के सम्बन्ध में उपयोगी जानकारी दे सकते हैं। रेड क्रास तथा अन्य कल्याणमूलक संस्थाओं द्वारा जारी किए जानेवाले पोस्टरों से बच्चों को स्वास्थ्य और पोषण के सम्बन्ध में उपयोगी जानकारो मिल सकती है। आवेदन करने पर ये पोस्टर मुफ़्त मिल सकते हैं।



इश्तहार की मदद से अध्यापक बच्चों को समझा रहा है कि दातौन से दाँत साफ़ करना कितना ज़रूरी होता है। (साउथ प्वाइंट स्कूल, कलकत्ता के सौजन्य से)

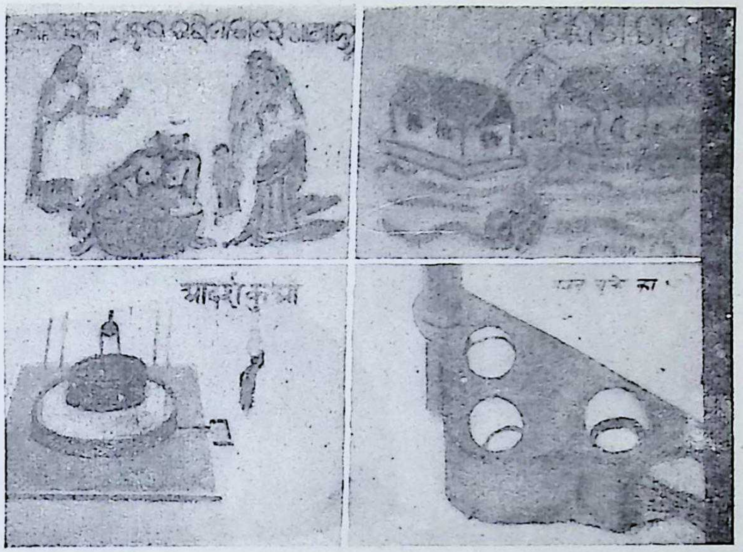
बच्चों को कुछ करने के लिए प्रेरित करने में भी पोस्टरों का उपयोग किया जा सकता है। जैसे : 'भोजन करने से पहले हाथ खूब साफ़ करें', 'नित्य स्नान करें', 'समाचारपत्र नियमित रूप से पढ़ें'।

गाँवों में पोस्टरों का उपयोग

सुविचारित योजना के अनुसार यदि ढंग के पोस्टर बनाए जाएँ तो वे गाँवों में शिक्षा के बहुमूल्य साधन होंगे। फ़ोटोचित्रों, फिल्मों और प्रदर्शन के अन्य साधनों के साथ मिलकर तो वे और भी अधिक कारगर होते हैं।

समाज शिक्षा आयोजक आसानी से पोस्टर बना सकते हैं। जो लोग भलीभाँति चित्र नहीं बना सकते वे पोस्टर तो बना ही सकते हैं। कुछ ही वर्ष पहले कलकत्ते के समीप एक समाज शिक्षा आयोजक-प्रशिक्षण केन्द्र में प्रायः सभी प्रशिक्षणार्थियों ने, उच्चकोटि के कलात्मक कौशल के बिना,

सामान्य निदर्शनों का पालन करके, उत्तम कोटि के पोस्टर तैयार किए थे। पोस्टर बनानेवाले में सफलता की कामना तो होनी ही चाहिए।



उच्चकोटी का कलात्मक कौशल न होते हुए भी, सफलता की कामना के बल पर, समाज शिक्षा आयोजक-प्रशिक्षण केन्द्र, बेलुरमठ के प्रशिक्षणार्थियों ने ये सुन्दर पोस्टर तैयार किए।
(मठ के सौजन्य से)

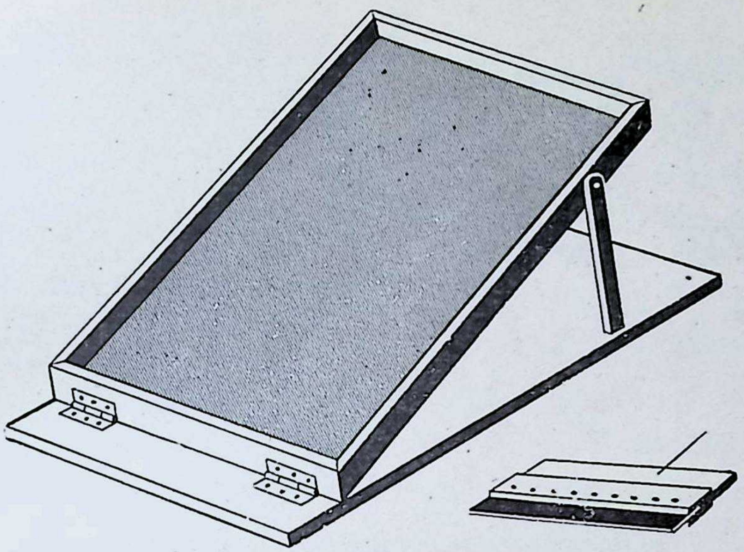
रेशमी पटल पद्धति—सेरीग्राफ़ी (सेरी=सिल्क या रेशम)

रेशमी पटल पद्धति पोस्टरों की प्रतियाँ निकालने की आसान पद्धति है। इस तकनीक की सहायता से पत्रिकाओं के आवरणपृष्ठ, निमंत्रण पत्र और कार्यक्रम आदि भी तैयार किए जा सकते हैं। रेशमी पटल मुद्रण के लिए सामान्य उपकरण की आवश्यकता होती है जो कमखर्च में ही तैयार किया जा सकता है। फ़्रेम मामूली सागौन की लकड़ी से बनाया जा सकता है। लकड़ी के हत्थे में लगी रबर की दाब से रोग़न या रोशनाई कौशेय पटल के पार कर दी जाती है। पटल के लिए रेशमी कपड़ा और डिज़ाइन काटने के लिए स्टेंसिल खरीदने में अधिक खर्च नहीं लगता।

छापी जानेवाली डिज़ाइन जिस स्टेंसिल पर काटी गई हो उसे छापनेवाले फ़्रेम में कसकर तने हुए रेशम के पटल पर चिपका दिया जाता है। फिर स्टेंसिल के पार कागज़ के तख्तों पर दाबी से कसकर स्याही या रंग पहुँचाया जाता है। साफ़ करके उसी रेशम का उपयोग फिर किया जा सकता है। रंगीन पोस्टरों के प्रत्येक रंग का मुद्रण अलग-अलग स्टेंसिलों की सहायता से किया जाता है।



दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली के वरिष्ठ कलाकार श्री डी० बख़्शी द्वारा तैयार किया गया, अवकाश के सदुपयोग पर एक पोस्टर।



रेशमी पटल का एक सामान्य फ़्रेम और दाबी

हमारे देश में रेशमी पटल मुद्रण की नीचे लिखी विधियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं :

(१) कागज़ के स्टेंसिल की विधि

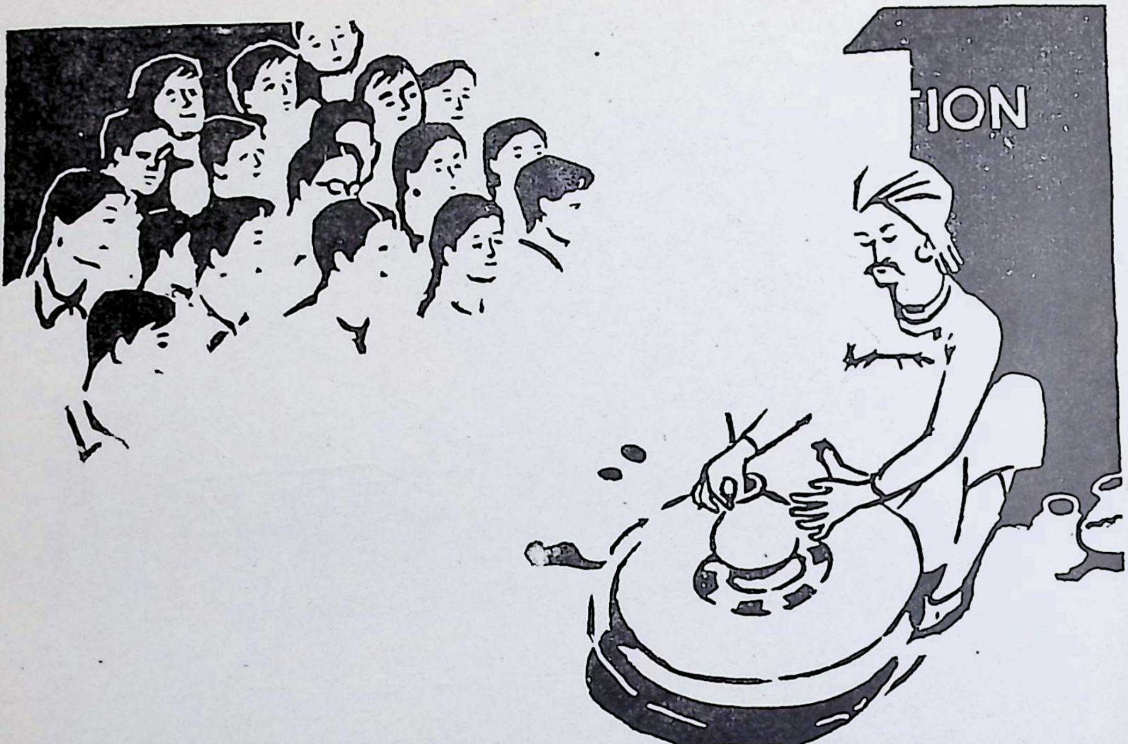
(२) चपड़ा लगे कागज़ के स्टेंसिल की विधि

(३) तुशी—नामक लिथोग्राफ़िक स्याही की पद्धति

(४) फ़ोटोग्राफ़ी पद्धति

कागज़ी स्टेंसिल की विधि :

रेशमी पटल की तकनीकों में यह सबसे अधिक सरल है। यदि बड़ी संख्या में प्रतियाँ छापनी हों तो इस पद्धति का न अपनाना चाहिए। स्टेंसिल का कागज़ पतला लेकिन मज़बूत होना चाहिए। इसके लिए नक़्शानवीस के अक्सी कागज़ का अथवा उच्चकोटि के हल्के बाण्ड-पेपर का उपयोग करना चाहिए। स्टेंसिल के लिए प्रयुक्त कागज़ पर डिज़ाइन का अनुरेखन मूल कागज़ से किया जा सकता है। फिर इस कागज़ को किसी सख़्त धरातल पर—जैसे काँच की पट्टी पर फैला देना चाहिए; धरातल पर कोई चिकना द्रव (जैसे अरण्डी का तेल) पहले ही लगा देना चाहिए। फिर तेज़ चाक़ू से डिज़ाइन काट लेनी चाहिए। इसके बाद मुद्रण फ़्रेम को स्टेंसिल पर लगा दिया जाय और दाबी की सहायता से स्याही रेशमी पटल पर लगा दी जाय। स्याही लगाने पर रेशमी पटल के नीचे रखा स्टेंसिल पटल से चिपक जाता है। तब स्टेंसिल सहित फ़्रेम को काँच की पट्टी पर से उठा लेना चाहिए। स्टेंसिल के अवांछनीय अंश पटल से हटा देने के बाद फ़्रेम मुद्रण के लिए तैयार हो जाता है।



चपड़ा लेपित कागज़ी स्टेंसिलों से मुद्रित सामग्री का एक नमूना (दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली के सौजन्य से)

चपड़ा लगे कागज़ के स्टेंसिल की विधि :

चपड़ा लगे कागज़ का स्टेंसिल निम्नलिखित ढंग से तैयार किया जा सकता है : नक्शानवीस के अक्सी कागज़ के दो तख्ते लेकर मोम से आपस में चिपका दीजिए। इस चिपके हुए कागज़ पर दो बार चपड़े का लेप लगाइए और सूखने दीजिए। यदि लेप करने से पहले चपड़े में अरण्डी के तेल की कुछ बूंदें मिला दें तो काटने में आसानी होगी। स्टेंसिल काटने के लिए पहले चपड़े से अनुलेपित कागज़ का ऐसा टुकड़ा लीजिए जो मूल प्रति से दो तीन इंच बड़ा हो। अब इस टुकड़े को चिपकनेवाली पट्टियों द्वारा चारों कोनों पर मूल प्रति के ऊपर इस तरह चिपकाइए ताकि चपड़े से अनुलेपित सतह ऊपर रहे। फिर एक तेज़ चाकू लेकर सावधानी के साथ स्टेंसिल इस तरह काटें ताकि पीछे लगा हुआ कागज़ न कटने पाए। स्टेंसिल कट जाने पर चपड़ा लेपित कागज़ के वे सारे अंश निकाल दें जो मुद्रित किए जानेवाले भाग को व्यक्त करते हैं। ध्यान रहे कि अक्षरों के केन्द्र अथवा डिज़ाइन के अन्य भागों में गड़बड़ी न होने पाए। अब इस स्टेंसिल को रेशमी पटल के फ्रेम के नीचे ठीक-ठीक रखें और फ्रेम को स्टेंसिल पर रखकर

उस पर गरम इस्तिरी (प्रैस) चलाएँ। ऐसा करने से चपड़ा पिघल जाएगा और स्टैंसिल पटल से चिपक जाएगा। इस्तिरी के बदले अल्कोहल की बूँदों से भीगा हुआ कपड़े का टुकड़ा भी काम में आ सकता है। जब स्टैंसिल का वांछनीय अंश रेशमी पटल से भलीभाँति चिपक जाए तब पीछे लगे कागज़ को धीरे से अलग कर देना चाहिए। फिर फ्रेम मुद्रण के लिए तैयार हो जायगा।

तुशी-नामक स्याही की पद्धति :

तुशी स्याही की पद्धति सामान्यतः उन चित्रों के मुद्रण के लिए अपनाई जाती है जिनमें छायांकन आवश्यक होता है। पहले छापे जानेवाले चित्र को रेशमी पटल पर खींचते हैं; फिर तुशी स्याही (अथवा तुशी स्याही की पैंसिल या मुद्रण पैंसिल) डिज़ाइन के उन सभी अंशों पर लगाई जाती है जिन्हें छापना हो। स्याही सूख जाने पर पूरे पटल पर सरेस का लेप करते हैं। पहला लेप भलीभाँति सूख जाने पर दुबारा लेप किया जाता है। दूसरे लेप के अच्छी तरह सूख जाने पर पटल के निचले पृष्ठ पर तारपीन से भीगा कपड़ा रख दिया जाता है। भीगे कपड़े के ठीक सामने वाले भाग को एक सूखे कपड़े से रगड़ते हैं। ऐसा करने से स्याही और उस पर लगा सरेस निकल जाता है और पटल के वे सभी हिस्से खुल जाते हैं जहाँ स्याही लगाई गई थी। स्मरण रखना चाहिए कि सूख जाने पर तुशी स्याही केवल तेल में ही घुल सकती है।

फ़ोटोग्राफ़िक पद्धति :

फ़ोटोग्राफ़िक स्टैंसिलों की पद्धति उच्चकोटि के सुन्दर व्यापारिक कार्य के लिए अपनाई जाती है। इस पद्धति में खर्चीले उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए शिक्षा संस्थाओं के लिए अभी हमारे देश में इसके प्रयोग की सिफ़ारिश नहीं की जाती।

रेशमी पटल के लिए स्याही

ग्लॉस, मैट और फ़्लोरोस्क्रीन—तीन प्रकार की रेशमी पटल स्याही भारत में उपलब्ध है। प्रथम दो प्रकार की स्याही; हलके पीले, गहरे पीले, सिन्दूरी, लाल, नील लोहित, गहरे नीले, हलके नीले, गहरे हरे, हलके हरे, काले और नीले-काले रंगों में मिलती है। तीसरे प्रकार की स्याही अत्यन्त चमकदार : पीले, नारंगी, लाल, गुलाबी, हरे और काले रंगों में मिलती है।

१३ चार्ट

भौगोलिक जानकारी को छोड़कर अन्य सभी तरह की जानकारी चार्ट में इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है कि उसे आसानी से समझा जा सके। चार्ट : "एक ऐसा दृश्य प्रतीक है जिसमें किसी विषयवस्तु को समझाने के लिए उसका संक्षेप प्रस्तुत किया गया हो, उसकी तुलना की गई हो, असमानता या विकल्प प्रस्तुत किया गया हो अथवा अन्य कोई गौण सहायता की गई हो।" १३

चार्ट-निर्माण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें

पोस्टरों की भाँति चार्ट बनाने में भी विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं है फिरभी, नीचे लिखी बातों का ध्यान रखा जा सकता है :

(१) अन्य किसी भी चित्रात्मक सामग्री की भाँति चार्ट भी बड़े आकार के होने चाहिए ताकि आसानी से देखे और पढ़े जा सकें। जिन स्थितियों में चार्टों को देखा और पढ़ा जाना हो उनका स्पष्ट ज्ञान चार्ट बनानेवाले को होना चाहिए। कितनी अधिकतम दूरी से चार्ट देखा जाएगा ? कक्षा के सभी बच्चे उसे एकसाथ देखें और पढ़ेंगे ? क्या एक छोटी टोली द्वारा चार्ट का अध्ययन किया जाएगा ?

(२) चार्टों में कहानी विवरण के साथ कही जा सकती है, पर उसमें शब्द अधिक न होने चाहिए।

१३। ई० डेल—'ऑडियो विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग।'

(३) चार्ट देखने में आकर्षक हों।

(४) चार्ट इतने मज़बूत हों कि थोड़ी-बहुत लापरवाही भी सह लें।

(५) किसी भी चार्ट की प्रमुख विशेषता यह होनी चाहिए कि जिनके अध्ययन के लिए वह बनाया जाए वे उसे ठीक-ठीक समझ लें ; उसमें ऐसा कोई चित्र न हो जो उनकी अनुभूति से असंबद्ध हो।

चार्टों के विविध प्रकार

चार्ट विविध प्रकार के हो सकते हैं, और प्रत्येक प्रकार किसी विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। महत्त्वपूर्ण प्रकार नीचे दिए जा रहे हैं :

तालिका चार्ट :

इनमें जानकारी सामान्य अनुक्रम से प्रस्तुत की जाती है। उदाहरणार्थः अस्पतालों में रखे जानेवाले मरीज़ों के चार्ट जिनमें निश्चित समय पर उन्हें दिए जानेवाले भोजन और औषधियों का विवरण रहता है ; ऐतिहासिक चार्ट जिनमें शासकों अथवा युद्धों की सूची कालक्रमानुसार दी जाती है तथा अन्य सम्बन्धित जानकारी भी रहती है।

वृक्ष की आकृति वाले चार्ट :

विकास या संवर्धन को प्रस्तुत करने के लिए ऐसे चार्ट उपयुक्त होते हैं। रेखा द्वारा या तने को व्यक्त करनेवाली अन्य किसी विधि से उद्भव को व्यक्त किया जाता है और बहु-विध विकास को शाखाओं के माध्यम से दर्शाया जाता है। इसके कुछ सुन्दर उदाहरण हैं : वनस्पति अथवा जीवविज्ञान सम्बन्धी चार्ट जिनमें वनस्पति अथवा जीव जगत् के अनेक समकालीन रूपों का उद्भव एक ही मूल स्रोत से दिखाया गया हो।

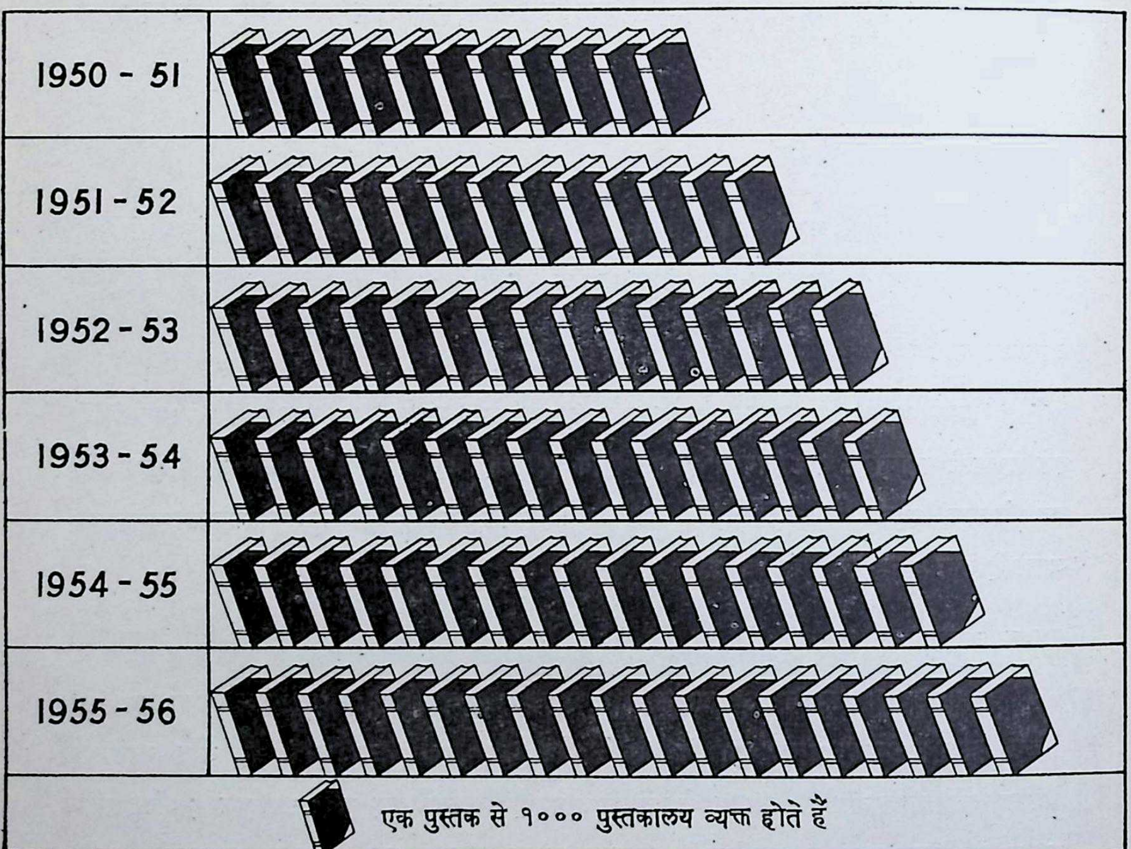
प्रवाह चार्ट :

प्रवाह चार्ट में रेखाओं, तीरों, आयतों आदि की सहायता से सरकार अथवा किसी बड़ी संस्था के संगठन या उसकी संरचना को व्यक्त किया जाता है।

आइसोटाइप चार्ट : (आइसोटाइप—मुद्रणचित्र-शिक्षा की अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति)

ये चार्ट आँकड़ों का चित्रात्मक प्रस्तुतीकरण होते हैं। सांख्यिकीय सामग्री को चित्रित करने के लिए चित्रलेखीय तकनीक के उपयोग को मुख्यतः डा० ओट्टो न्यूराथ ने विकसित किया था, तथापि चित्रात्मक चार्ट का उपयोग करनेवाले वे पहले व्यक्ति नहीं थे। अपनी पुस्तक

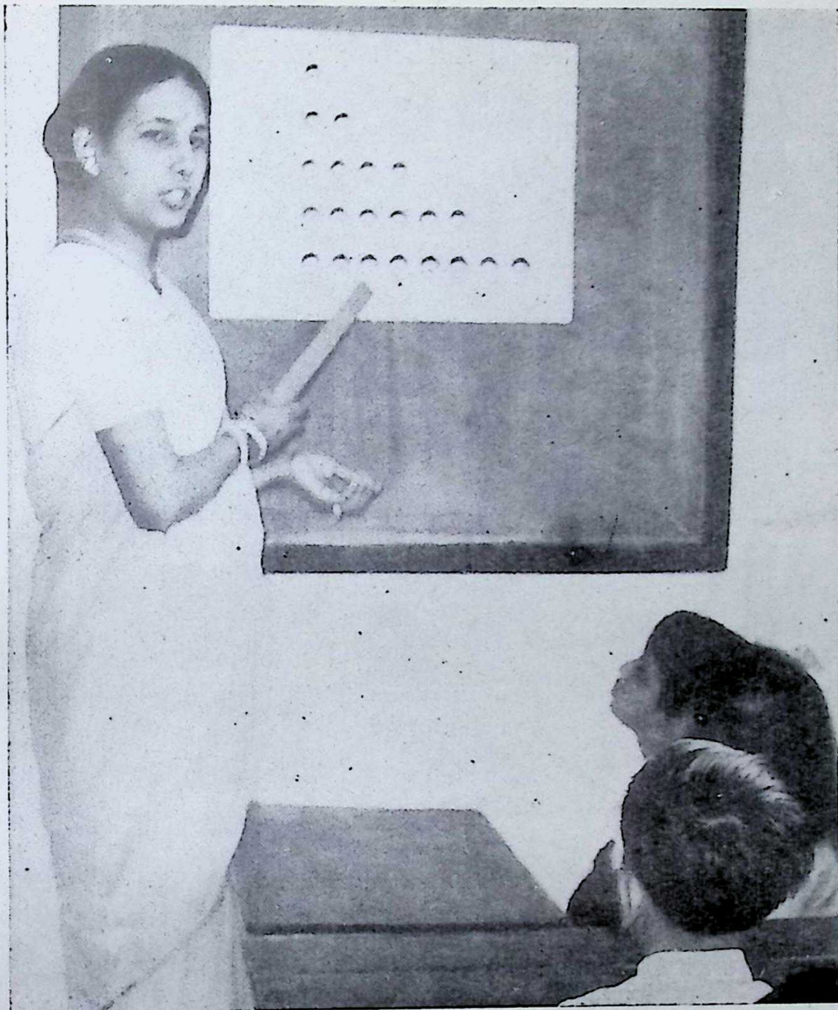
'ग्रैफ़िक मेथड फ़ार प्रेज़ेंटिंग फ़ैक्ट्स' में श्री विलर्ड सी० ब्रिंटन ने सन् १९१४ में अनेक चित्रात्मक चार्ट प्रस्तुत किए थे, यद्यपि प्रारम्भिक प्रतिपादन से आगे उन्होंने इस तकनीक को नहीं बढ़ाया।



सन् १९५० से १९५६ तक की अवधि में भारत में हुए पुस्तकालयों के विकास को प्रस्तुत करनेवाला एक आइसोटाइप चार्ट।

जिन बच्चों अथवा व्यक्तियों को वांछित जानकारी ग्राफ़ से नहीं मिल पाती उनके समक्ष आँकड़ों का अर्थ ऐसे चार्ट की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। इसीलिए यह साधन स्कूलों और वयस्क-शिक्षा केन्द्रों के लिए बहुत उपयोगी हो सकता है।

चित्रात्मक चार्ट यथा सम्भव सरल होना चाहिए और प्रयुक्त प्रतीक स्वतः स्पष्ट होने चाहिए। यदि चार्ट रेलों से सम्बन्धित हो तो एक रेल इंजन की रेखाकृति या छायाचित्र दिखाया जाना चाहिए; यदि जनसंख्या के सम्बन्ध में हो तो मानव आकृति या उसके छायाचित्र का प्रतीक

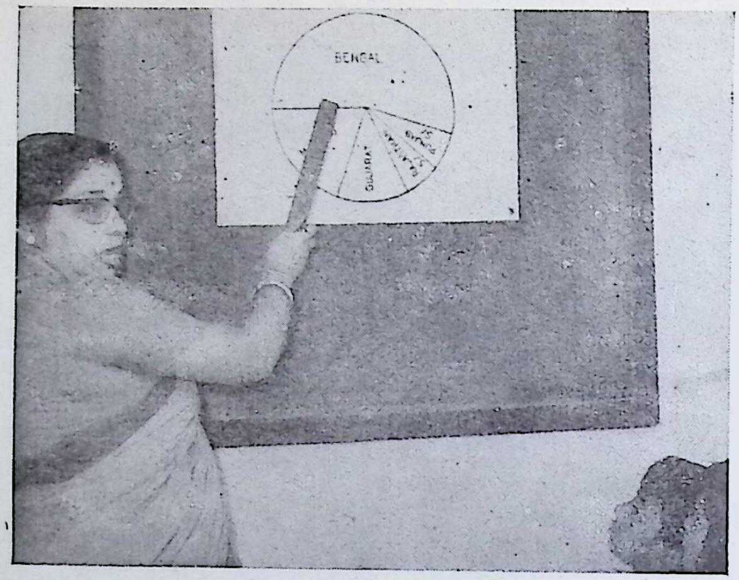


साउथ प्वाइंट स्कूल, कलकत्ता में एक चित्रात्मक चार्ट का उपयोग किया जा रहा है।

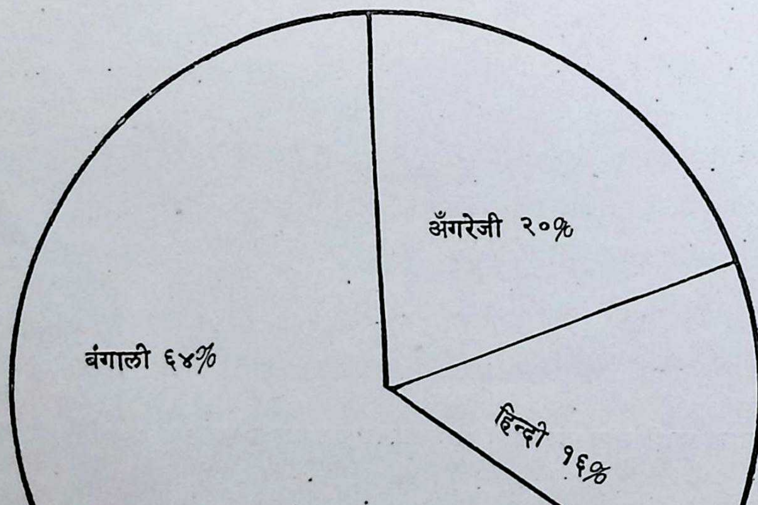
होना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि इस पद्धति से केवल स्कूल तुलनाएँ ही प्रस्तुत की जा सकती हैं। समग्र का आंशिक प्रतिशत दिखाने के लिए चित्रात्मक चार्ट उपयुक्त नहीं होते। इसके लिए वृत्ताकार चार्टों का उपयोग किया जाता है।

वृत्ताकार चार्ट :

वृत्ताकार चार्ट में एक वृत्त को खण्डों में विभाजित किया जाता है, प्रत्येक वृत्त समग्र के किसी एक प्रतिशत को व्यक्त करता है। यदि प्रतिशत बहुत छोटे-छोटे अंशों का हो तो प्रत्येक खण्ड में उसका वास्तविक प्रतिशत निर्दिष्ट कर दिया जाता है।



साउथ प्वाइंट स्कूल, कलकत्ता में अध्यापक वृत्ताकार चार्ट को उपयोग कर रहा है।



कलकत्ता के एक स्कूल-पुस्तकालय में विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों के प्रतिशत दिखानेवाला एक वृत्ताकार चार्ट।

अन्य साधनों के साथ चार्टों का उपयोग

चार्टों की सहायता से अध्यापन करते समय हम उसी सिद्धान्त का पालन करते हैं जिसका पालन अन्य किसी दृश्य-श्रव्य साधन की सहायता से किया जाता है। अन्य साधनों के साथ प्रयुक्त होने पर चार्ट अधिक कारगर साधन बन जाता है। मॉडेल के साथ प्रयुक्त होने पर चार्ट बहुधा अधिक स्पष्ट जानकारी देता है। किसी फिल्म या फिल्मपट्टी की किन्हीं बातों पर ज़ोर देने के लिए चार्टों का उपयोग किया जा सकता है। चार्टों और पोस्टरों का साथ-साथ प्रयोग कभी-कभी उपयोगी होता है।

१४ आरेख (डायग्राम)

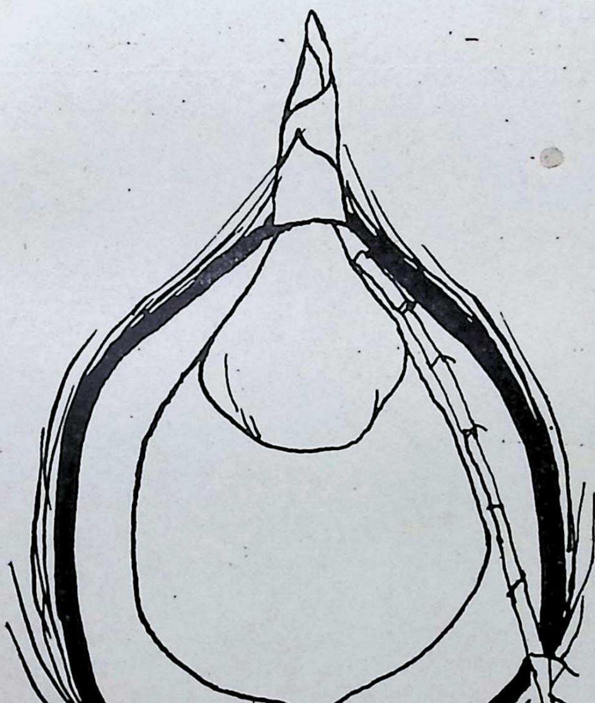
किसी चीज़ को स्पष्ट करने के उद्देश्य से रेखाओं और ज्यामितीय आकारों की सहायता से बनाए गए रेखाचित्र को आरेख कहते हैं। आरेखों में कोई चित्र नहीं होता।

आरेखों का प्रयोग प्रायः सभी विषयों के अध्यापन में किया जाता है। ज्यामिति में तो वे अपरिहार्य होते हैं। विज्ञान और इंजीनियरी के अध्यापन में वस्तुओं और उपकरण के कारणात्मक सम्बन्धों तथा उनकी संरचनाओं को स्पष्ट करने में चार्टों से महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती हैं। किसी भवन की रेखाकृति अथवा हाइड्रोजन परमाणु को स्पष्ट करनेवाला रेखाचित्र आरेख ही है। भूगोल के अध्यापन में किसी पदार्थ के उत्पादन और आयात अथवा निर्यात को समझाने के लिए हम बारंबार आरेखों की सहायता लेते हैं। वनस्पति विज्ञान के अध्यापन में फलों, फूलों और पौधों की अनुप्रस्थ काटों (क्रॉस सेक्शंस्) को दिखाने के लिए बहुधा आरेखों की सहायता ली जाती है।

आरेखों की सहायता से अध्यापन

श्यामपट्ट पर आरेख बनाने से पहले, अथवा किसी शिक्षण-स्थिति को सार्थक बनाने के लिए आरेख प्रस्तुत करने से पहले, अध्यापक को यह निश्चित व्यवस्था कर लेनी चाहिए कि उस आरेख को समझने के लिए आवश्यक पूर्व-ज्ञान पर्याप्त मात्रा में विद्यार्थियों को है।

आरेख अमूर्तरूप मात्र होते हैं, इसलिए जहाँ सम्भव हो, उनका उपयोग मूल वस्तु के साथ किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, प्रकृति-निरीक्षण की कक्षा में यदि आप किसी फूल का आरेख दिखा रहे हों तो उसके साथ-साथ फूल को भी दिखाना अच्छा होगा। यदि वास्तविक पदार्थ कक्षा में न लाया जा सके तो चित्रों, फिल्मपट्टियों, फिल्मों जैसे अन्य दृश्य-श्रव्य साधनों की सहायता लेनी चाहिए ताकि विद्यार्थी आरेख को भलीभाँति समझ सकें। आरेख के सारे पक्ष एक साथ न दिखाना चाहिए। पहले प्रमुख रूपरेखाएँ खींचनी चाहिए। फिर जैसे जैसे विश्लेषण किया जाय वैसे-वैसे अन्य पक्ष भी दिखाए जाएँ। तात्पर्य यह है कि विद्यार्थियों के सामने कक्षा में खींचे गए आरेख, पहले से तैयार कर लिए गए आरेखों की अपेक्षा अधिक लाभदायक होते हैं। किसी भी जटिल यंत्र-रचना का आरेख सामान्यतः पहले ही तैयार करना पड़ता है।



नारियल के आन्तरिक भाग का आरेख जिसमें अँखुआ निकलने के समय जड़ों का विकास दिखाया गया है।

आरेख बनाने के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बातें

आरेख बनाने में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(१) आरेख माप के अनुसार शुद्ध और साफ़ बनाने चाहिए।

(२) पटरी और परकार आदि का उपयोग करना चाहिए। औज़ारों की सहायता के बिना अच्छा आरेख बनाना कठिन होता है।

(३) आरेख यथासंभव सरल होना चाहिए। बातें तात्त्विक और अनिवार्य न हों उन्हें स्थान न देना चाहिए।

(४) तथ्य की बात को रंगीन बनाकर ज़ोर देना चाहिए। आरेख में बहुत अधिक रंगों का उपयोग नहीं करना चाहिए। आरेख का उद्देश्य होता है किसी अर्थ को स्पष्ट करना; सुन्दर तस्वीर बनाने का उद्देश्य नहीं होता।

(५) चित्रों और चार्टों की भाँति, आरेख का आकार भी बड़ा होना चाहिए ताकि कक्षा के सभी विद्यार्थी उसे ठीक-ठीक देख सकें।

१५ मॉडेल और अंशानुकृतियाँ

किसी पदार्थ का मॉडेल उसकी एक अभिज्ञेय त्रिविमितीय अनुकृति होता है। वह सम्बन्धित पदार्थ के समान आकार का अथवा उससे छोटा या बड़ा हो सकता है। उसे पकड़ा और सँभाला जा सकता है, प्रचालित किया जा सकता है और कई पार्श्वों से देखा जा सकता है। इसलिए एक चित्र या चार्ट की अपेक्षा—जो केवल द्विविमितीय अनुकृति होता है—मॉडेल सामान्यतः अधिक मनोरंजक और शिक्षाप्रद होता है।

मॉडेलों के उपयोग

मॉडेलों का उपयोग विविध शैक्षणिक स्थितियों में किया जाता है। मॉडेल अध्ययन अध्यापन को सार्थक और सरल बना देते हैं। पहले कहा जा चुका है कि यद्यपि प्रत्यक्ष अनुभव समस्त सफल ज्ञानार्जन का आधार है, फिरभी बहुधा कक्षा में उसकी उपलब्धि नहीं की जा सकती। कुछ यथार्थ पदार्थ इतने बड़े या इतने छोटे हो सकते हैं कि उनका अध्ययन उसी रूप में सम्भव ही न हो। कुछ एसी वस्तुएँ भी हैं जो आकार में इतनी बड़ी हैं कि उनका अध्ययन किया जा सकता है और वे आसानी से सुलभ भी हैं, पर उनके बाह्य स्वरूप से हम कुछ सीख ही नहीं सकते।

कुछ यथार्थ वस्तुएँ अतीत काल की या भविष्य की हो सकती हैं अथवा हमसे बहुत दूर हो सकती हैं। कतिपय यथार्थ और जीवित पदार्थों की ऐसी वृत्तियाँ और प्रक्रियाएँ होती हैं कि उनका प्रत्यक्ष ज्ञान उपलब्ध नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थितियों में हम "उपलब्ध यथार्थ को स्वायत्त करते हैं, उसे नए ढंग से व्यवस्थित करते हैं, उसे नया स्वरूप देते हैं, उसका सम्पादन करते हैं, कुछ बातों पर ज़ोर देते हैं और दूसरी बातों को संक्षिप्त कर देते हैं[१४]।"

छोटे आकार वाले मॉडेलों की सहायता से दुर्गापुर, राउरकेला और भिलाई की कई वर्गमीलों तक फैली हुई इस्पात की प्रयोजनाएँ विद्यार्थियों द्वारा सरलता और सुविधापूर्वक कक्षा में ही देखी और समझी जा सकती हैं। परमाणु, अणु, अति सूक्ष्म कीट या छोटा-सा-फूल आदि इतनी छोटी वस्तुएँ हैं कि उनका अध्ययन कठिन होता है। माप के अनुसार बनाए गए बड़े मॉडेलों से इन्हें सार्थक बनाया जाता है।

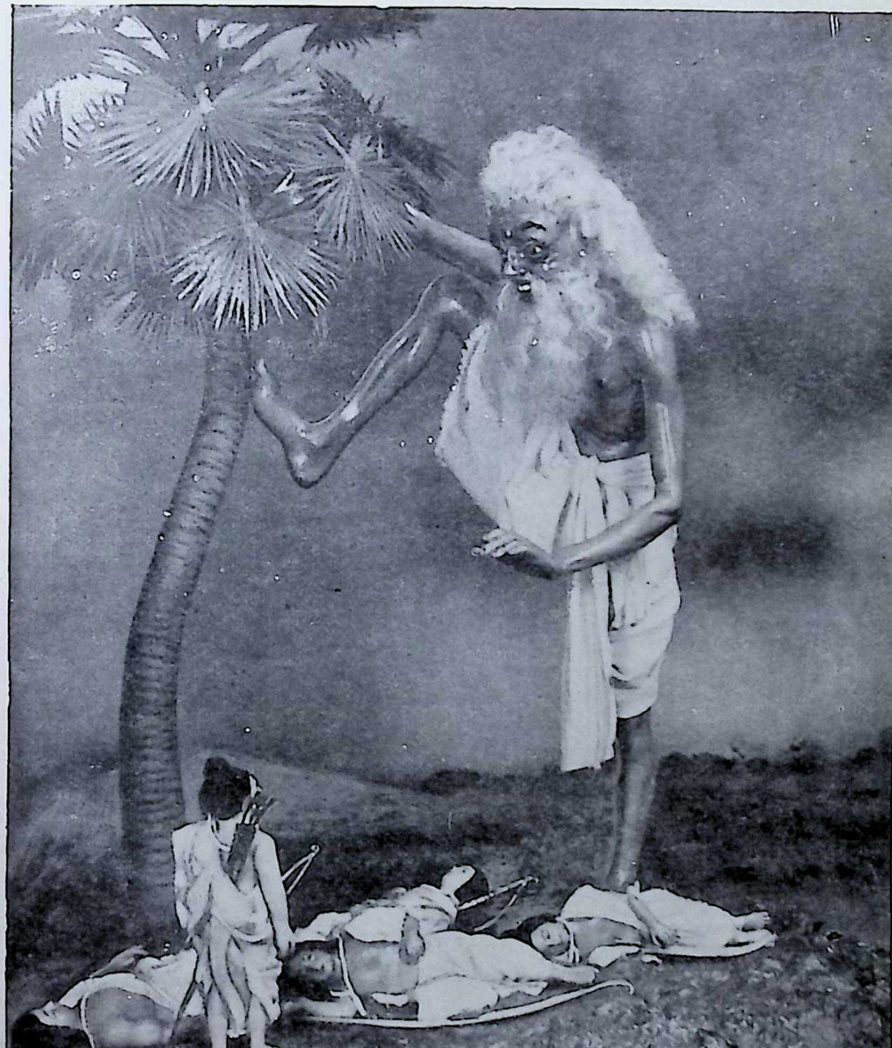
मानव शरीर के अंगों-जैसे आँखें, कान, नाक आदि—का अध्ययन केवल उन पर नज़र डालकर नहीं किया जा सकता। ऐसी चीज़ों के सम्यक् अध्ययन के लिए हमें इनके भीतरी भागों को दिखानेवाले मॉडेलों का सहारा लेना पड़ेगा। इसी प्रकार कुछ यांत्रिक युक्तियों—जैसे गीज़र, कारों की बैटरियाँ आदि—को उनके वाह्य रूप के प्रेक्षण से ही नहीं समझा जा सकता। इनके भीतरी स्वरूप को प्रत्यक्ष करानेवाले मॉडेलों की सहायता से ही इन यंत्रों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना सरल होता है।

इतिहासगत विषयों को जीवन्त बनाने के लिए भी मॉडेलों का उपयोग किया जाता है। सौ वर्ष पहले दिल्ली की क्या स्थिति थी यह जानने के लिए हम भले ही तमाम पृष्ठ पढ़ डालें किन्तु जब तक हम मॉडेलो का, अथवा कम-से-कम ऐसे द्विविभितीय दृश्य साधनों का प्रयोग नहीं करते, जिनमें तत्कालीन शहर के विभिन्न भागों को दिखाया गया हो, तब तक वह अतीत सजीव रूप में प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। मॉडेलों के माध्यम से प्रस्तुत किए जाने पर रामायण और महाभारत जैसे प्राचीन महाकाव्यों की कथा भी यथार्थ और आनन्दप्रद बन जाती है। कुछ वर्ष पहले कलकत्ते के राष्ट्रीय सांस्कृतिक-संघ द्वारा महाभारत की कथा प्रस्तुत करनेवाले मॉडेलों की एक मनोरंजक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था।

भविष्य की बातों की योजना बनाने या उन्हें प्रस्तुत करने में हमेशा मॉडेलों की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश को अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोजनाओं और इमारतों का निर्माण करने से बहुत पहले उनके मॉडेल तैयार किए गए थे और उनका अध्ययन किया गया था।

१४। ई० डेल—ऑडियो-विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग।

फिल्मों व चित्रों की भाँति मॉडेल भी ऐसी चीज़ों की अवधारणा में सहायक होते हैं जो बहुत दूर हों और आसानी से सुलभ या सुगम न हों। भूगोल के पाठ उस समय सार्थक और वस्तुतः अत्यन्त रोचक हो जाते हैं जब नारियल, गेहूँ, जूट, कपास आदि के छोटे-छोटे मॉडेल यह स्पष्ट करने के लिए देश के रेखाकृति मानचित्र पर यथा स्थान लगा दिए जाते हैं कि हमारे



यक्ष के रूप में धर्मराज द्वारा युधिष्ठिर के ज्ञान की परीक्षा महाभारत के इस सुन्दर मॉडेल में दिखाई गयी है।
(राष्ट्रीय सांस्कृतिक-संघ, कलकत्ता के सौजन्य से)

देश में वे कहाँ-कहाँ पैदा होते हैं। किसी भी अन्य शिक्षण-स्थिति को सार्थक और रोचक बनाने के लिए कल्पनाशील अध्यापक और अध्येता ऐसे छोटे-छोटे मॉडेलों का ही उपयोग करें।



महाभारत पर आधारित इस मनोरंजक मॉडेल में एक व्याध का वाण अचानक लग जाने से एक पेड़ के नीचे बैठे श्रीकृष्ण की मृत्यु दिखाई गई है।
(राष्ट्रीय सांस्कृतिक-संघ, कलकत्ता के सौजन्य से)

जहाँ भावसूक्ष्म संरचनाओं को समझने में विद्यार्थियों को कठिनाई हुई है वहाँ गणित के अध्यापकों ने उन्हें मॉडेलों का महत्त्व समझाया है। जिन स्थितियों का प्रत्यक्षीकरण खतरनाक होता है उनके प्रदर्शन में भी मॉडेलों का उपयोग लाभदायक होता है। स्कूली बच्चों को यातायात की सुरक्षा के नियम समझाने के लिए पुलिस-विभाग अब मॉडेलों की ही सहायता लेते हैं। अमरीका के कुछ पब्लिक स्कूलों में पैदल और साइकिल पर चलनेवालों के लिए बनाए गए नियम समझाने के लिए, मेज़ पर सुरक्षा-व्यवस्था के मॉडेलों का उपयोग किया जाता है। यातायात की सुरक्षा सिखाने के लिए कुछ स्कूलों ने खेल के मैदानों में नकली सड़कें बनाई हैं। आशा है कि अवसर आने पर हमारे अच्छे स्कूल न केवल बच्चों को बल्कि वयस्कों को भी यातायात की सुरक्षा सिखाने के लिए ऐसी ही युक्तियों का सहारा लेंगे।

मॉडेलों के भेद

प्रयोजन क अनुसार मॉडेलों के स्वरूप में बहुत विविधता रहती है। फिरभी, उन्हें चार प्रमुख प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

(१) मापमानीय मॉडेल

शिक्षण की कुछ स्थितियों में चीज़ों को मापमान के अनुसार नपे-तुले रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। स्वतंत्र भारत में प्रारम्भ किए गए बड़े-बड़े उद्यमों की उपयुक्त अभिधारणा करने में विद्यार्थियों तथा अन्य लोगों को सहायता देने के लिए बनाए गए दामोदर घाटी तथा अन्य प्रायोजनाओं के छोटे आकार के मॉडेल उपलब्ध हैं। स्वास्थ्य-विज्ञान के शिक्षण में हम मानव शरीर के अंगों के यथावत् नाप वाले मॉडेलों का प्रयोग प्रायः करते हैं।

(२) सरलीकृत मॉडेल

अध्यापन में ऐसी अनेक स्थितियाँ होती हैं जिनमें किसी पदार्थ के बाहरी रूप को मोटे तौर से प्रस्तुत करनेवाले मॉडेल ही बच्चों के लिए उपयुक्त होते हैं। प्राइमरी स्कूलों के बच्चे मिट्टी, बालू अथवा घास-फूस से जानवरों, पक्षियों, मछलियों, नदियों, पहाड़ियों आदि के जो रूप बनाते हैं उनका शैक्षणिक महत्त्व बहुत होता है—यद्यपि उन्हें मापमान के अनुसार ठीक-ठीक नापतौल कर नहीं बनाया जाता। संक्षेप में, ऐसे किसी भी मॉडेल को सरलीकृत कहा जा सकता है जिसमें किसी वस्तु के बाह्य आकार को मोटे तौर से दिखाया गया हो।

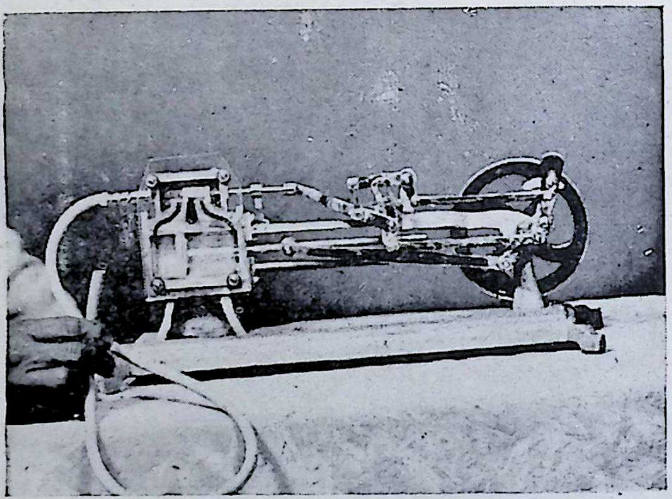
(३) कटवाँ या अनुप्रस्थ काट वाले मॉडेल

जहाँ तक बाह्य स्वरूपों का सम्बन्ध है, सरलीकृत मॉडेल पूरा काम देते हैं, किन्तु विशेषतः स्वास्थ्य-विज्ञान अथवा तकनीकी विषयों के अध्ययन में ऐसी अनेक स्थितियाँ आती हैं जिनमें

किसी अंग की या मशीन की क्रियाविधि को समझने के लिए उसके भीतरी भाग को देखना आवश्यक होता है। ऐसे मामलों में कटवाँ या अनुप्रस्थ काट वाले मॉडेलों का प्रयोग करना पड़ता है।

(४) कार्यकारी मॉडेल

कुछ पाठों के अध्यापन में ऐसे कार्यकारी मॉडेल बहुत हो सहायक होते हैं जिनमें साधारण रूप से यह दिखाया जाता है कि विविध वस्तुएँ कैसे काम करती हैं, कैसे संचालित होती हैं। वस्तुओं के स्थान पर इन मॉडेलों का उपयोग इसलिए किया जाता है ताकि उनको समझना आसान हो।





इन कार्यकारी मॉडेलों में वाष्प-एँजिन की क्रिया-विधि दिखाई गई है।
(त्यागराज कालेज आफ़ प्रेसेप्टर्स, मदुराई के सौजन्य से)

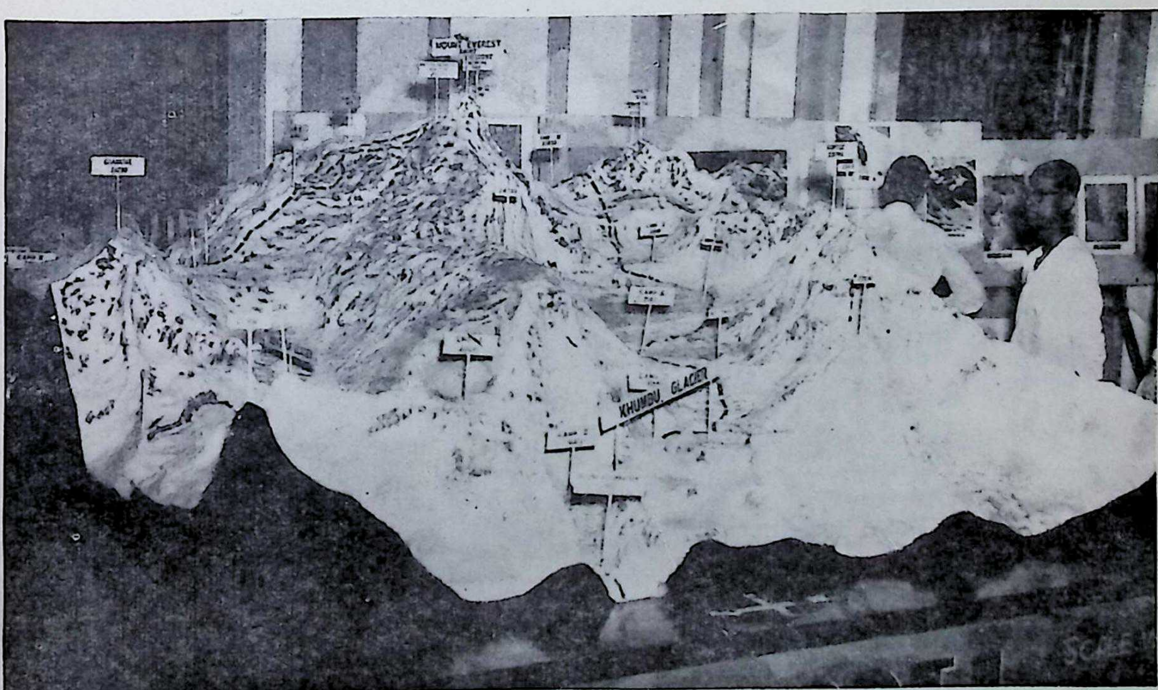
मानव हृदय का कार्यकारी मॉडेल उसके विविध कार्यों का पूरा-पूरा ज्ञान हमें दे देता है। एँजिन के कार्यकारी मॉडेलों को देखकर बच्चे कह सकते हैं—

"………शान्त सौम्य दृष्टि से
देखते हैं एँजिन की नाड़ी को।"

मॉडेलों का उपयोग करते समय होनेवाली भ्रान्तियाँ और उनका निराकरण

कुछ ऐसी भ्रान्तियाँ हैं जिनके विरुद्ध, मॉडेलों का प्रयोग करते समय, सावधान रहना चाहिए। यदि मॉडेल वास्तविक वस्तु से छोटा या बड़ा हो तो विद्यार्थियों को उस वस्तु के यथार्थ आकार का स्पष्ट बोध करा देना चाहिए। कभी-कभी अत्यधिक सादे मॉडेल बनाए जाते हैं। ऐसे मॉडेलों का उपयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए। वास्तविक पदार्थों से उनका अन्तर स्पष्टतः ज्ञान होना चाहिए। मानव शरीर के अंगों के मॉडेलों में होनेवाले अन्तर महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनका निर्देश स्पष्टतः किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, मस्तिष्क अथवा हृदय के जिन मॉडेलों का अध्ययन मेज़ पर रखकर किया जाता है वे सम्पूर्ण मानव शरीर के अंग के रूप में काम करनेवाले यथार्थ मस्तिष्क या हृदय से अत्यन्त भिन्न होते हैं। यदि इस बात को ज़ोर देकर स्पष्ट करने की सावधानी न बरती गई कि कुछ अंशों में मशीन की भाँति होते हुए भी वस्तुतः मनुष्य मशीन नहीं है, तो संभव है कि इन मॉडेलों को मशीन के पुर्ज़े ही समझ लिया जाए।

मॉडेल की सहायता से कुछ भी पढ़ाते समय यथार्थ वस्तु और मॉडेल के बीच के अन्तर पर हमेशा ज़ोर दिया जाना चाहिए। मॉडेल चाहे कितना ही पूर्ण हो, कुछ अर्थों में वह अधूरा

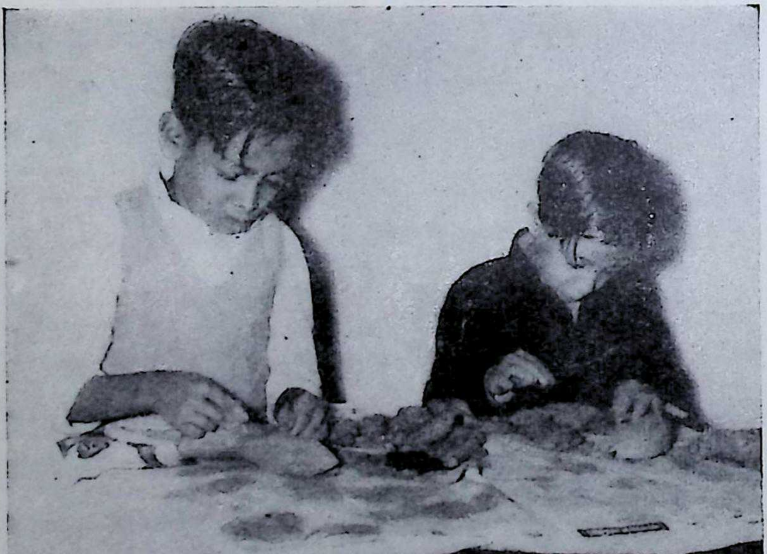


'एवरेस्ट पर विजय' का यह मॉडेल चाहे जितना पूर्ण हो, फिरभी अभियान की पूरी कहानी नहीं कह पाता। (स्टेट्समैन, कलकत्ता के सौजन्य से)

ही रहेगा। कलकत्ते के एक समाचारपत्र के कार्यालय में कुछ वर्ष पहले हमने 'एवरेस्ट पर विजय' का एक अत्युत्तम मॉडेल देखा था। शेर्पाओं के आवास और रास्ते की कठिनाइयाँ उसमें स्पष्ट रूप से दिखाए गई थीं; किन्तु बर्फ़ को व्यक्त करनेवाली सफ़ेद रुई से हमें उस भयानक शीत का रंचमात्र भी अनुभव न हो सका जो पर्वतारोहियों के साथ एक सेकेण्ड के लिए होने पर भी झेलनी पड़ती। "शिक्षण की कृत्रिम स्थितियों में हम सादृश्य का सहारा लेते हैं, और सभी सादृश्य भयावह होते हैं। किन्तु······वे आवश्यक भी होते हैं। कृत्रिम अनुकृति और यथार्थ वस्तु के बीच जो समानताएँ और बीच जो असमानताएँ हैं उन्हें यदि विद्यार्थियों को स्पष्टतः समझाते चलें और भ्रान्ति उत्पन्न न होने दें, तो सादृश्य से उपलब्ध कृत्रिम अनुभूति का भी लाभ उठाया जा सकता है, उसका अच्छा उपयोग किया जा सकता है।"[१५]

विद्यार्थियों द्वारा मॉडेल तैयार कराना

मॉडेल बनाना बच्चों के लिए बहुत ही उपयोगी कार्य है। उनकी रचनात्मक अभिरुचि और योग्यता को तथा उनकी कलात्मक भावना के विकास में इससे सहायता मिलती है। किसी पंसारी की दूकान, रेलवे स्टेशन या डाकघर जैसी चीज़ों के मॉडेल जब बच्चे मिलजुलकर तैयार करते हैं तो सहयोग से काम करना सीखते हैं। पुराने अखबारों दफ़्तियों, दफ़्तियों के डब्बों,



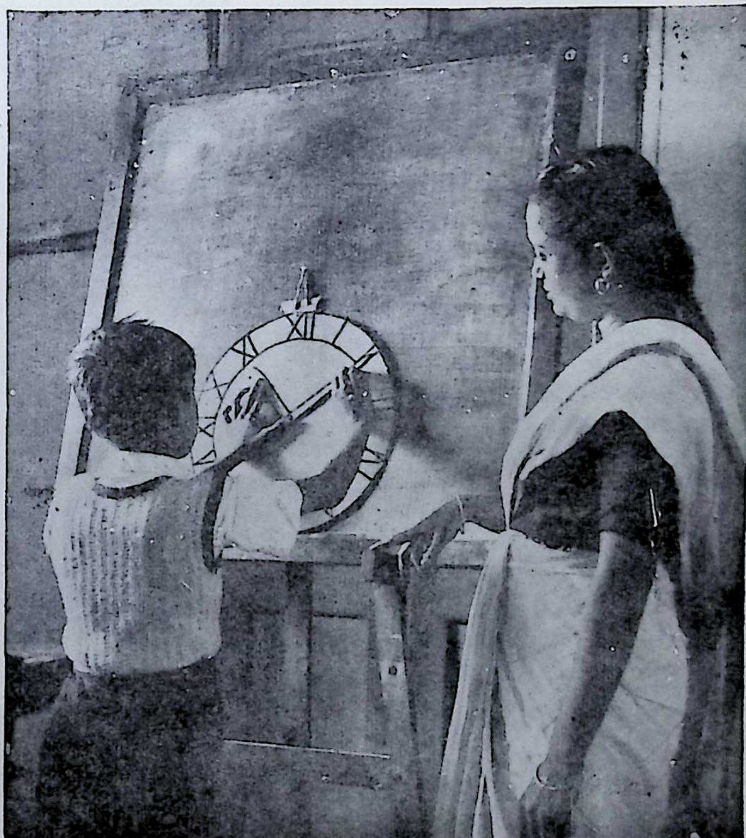
मिट्टी से मॉडेल बनाते हुए बच्चे अपनी अभिव्यंजना-शक्ति और शारीरिक शक्ति का विकास करते हैं।
(सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता की एक छोटी कक्षा में मिट्टी से मॉडेल बनाए जा रहे हैं)

१५। ई० डेल०—ऑडियो विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग।

दियासलाई के डब्बों, घास-फूस, लकड़ी और मिट्टी जैसी मामूली सामग्री को लेकर बच्चे पटरी, हथौड़ी, कैंची और आरी जैसे मामूली औज़ारों की सहायता से मॉडेल तैयार कर सकते हैं। प्रश्न है : क्या बच्चों को मॉडेल बनाने चाहिए या जो मॉडेल व्यवसायिक फ़र्मों से उपलब्ध हों वे ही उन्हें दिए जाने चाहिए ? उत्तर यह है कि कक्षा में बनाए गए और व्यवसायिक—दोनों प्रकार के मॉडेल उपयोगी होते हैं ; किन्तु बच्चे खरीदे हुए मॉडेलों की अपेक्षा प्रायः स्वयं मॉडेल बनाकर अधिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। फिरभी जब वस्तुएँ सुलभ हों और उनसे शिक्षण का उद्देश्य सर्वोत्तम ढंग से पूरा होता हो तो मॉडेल बनाने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित करना व्यर्थ होगा। किन्तु जब बच्चों की रचनात्मक अभिरुचि को अथवा उनकी सामर्थ को विकसित करने का उद्देश्य हो, तब मॉडेल बनाना उपयोगी कार्य हो जाता है।.

अंशानुकृतियाँ

अंशानुकृतियों की चर्चा पिछले विश्व-युद्ध के दौरान प्रायः सुनी जाती थी, क्योंकि बहुसंख्यक



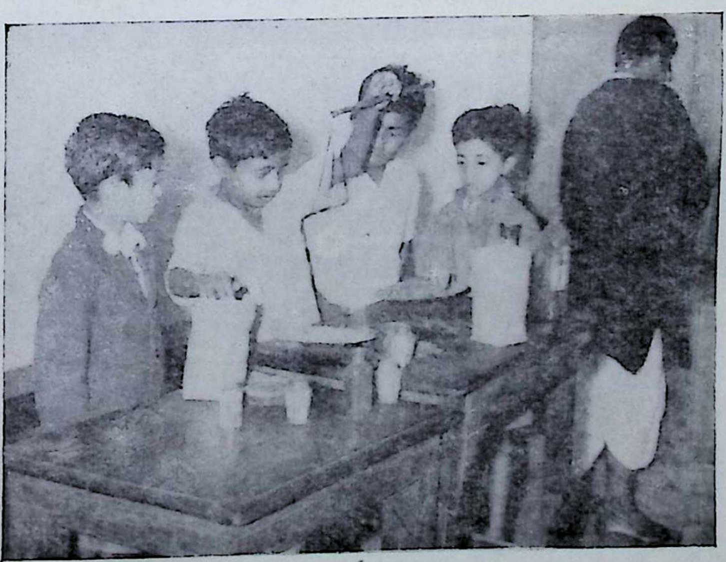
कलकत्ता के लेक व्यू हाईस्कूल के प्राइमरी सेक्शन में एक बच्चा घड़ी की अंशानुकृति की सहायता से समय देखना सीख रहा है।

सैनिक कर्मचारियों को अत्यन्त अल्प समय में प्रशिक्षित करने के लिए अंशानुकृतियों और मॉडेलों का उपयोग खुलकर किया गया था। वास्तविक चीज़ों के स्थान पर प्रायः इन्हीं को चुना जाता था, क्योंकि इन्हें समझना अपेक्षाकृत सरल होता था। तो, अंशानुकृति और मॉडेल में अन्तर क्या है? हम कह चुके हैं कि किसी वस्तु का मॉडेल उसकी अभिज्ञेय अनुकृति है, वह मूल वस्तु से आकार में छोटी या बड़ी हो सकती है। किसी वस्तु की अंशानुकृति उसके कुछ पहलुओं की त्रिविमितीय अनुकृति होती है। उसका प्रयोजन सीखने और सिखाने के लिए होता है इसलिए उसका रूप मूल वस्तु के समान नहीं भी हो सकता।

इस शती के प्रारम्भ से भारत के स्कूलों में बच्चों को घड़ी में समय देखने की विधि सिखाने के लिए घड़ी की अंशानुकृति का प्रयोग किया जाता रहा है जिसमें डायल पर सूइयों का घूमना दिखाया गया है। दफ़्ती या गुटकों से अन्य कई चीज़ों—जैसे रेलगाड़ियों, हवाई जहाज़ों, जलयानों, पुलों, सुरंगों—की अंशानुकृतियाँ बनाते हुए बच्चे उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ सीख लेते हैं। तकनीकी शिक्षा देनेवाली संस्थाओं में प्रशिक्षण के लिए एँजिनों की ऐसी अंशानुकृतियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें एँजिन के कुछ विशिष्ट भागों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। कुछ ऑटोमोबाइल प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षणार्थी को ब्रेकों से, त्वरक-यंत्र से तथा सचमुच की कार की अन्य चीज़ों से परिचित कराने के लिए पहिले चालक के बैठने की जगह की अंशानुकृति का उपयोग किया जाता है।

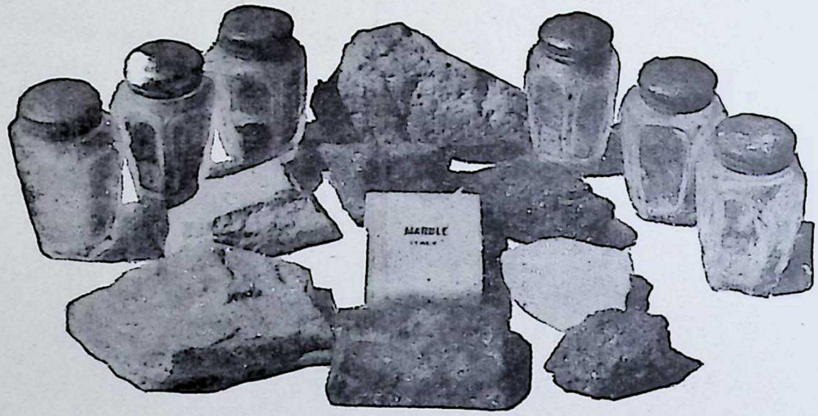
१६ विवेच्य वस्तुएँ

यथार्थ पदार्थों के नमूनों को विवेच्य वस्तुएँ कहते हैं। अपने प्राकृतिक परिवेश से पृथक होने पर भी ये शिक्षण के लिए उपयोगी साधनों का काम देती हैं। विभिन्न विषयों के अध्यापन में हड्डियों, पंजों, दाँतों, मछलियों, तितलियों, चिड़ियों, पत्तियों, फूलों, टिकटों, मुद्राओं बट्टों, खनिजों, पत्थरों तथा कृषि-उत्पादनों के संग्रह उपयोग में लाए जाते हैं। उदाहरण के लिए,



सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता की एक छोटी कक्षा में : वास्तविक बट्टों और मापकों के उपयोग से खेल का पुट आ जाता है और बच्चों के लिए अंकगणित का पाठ बहुत सरल और मनोरंजक हो जाता है।

शिशु तथा प्राइमरी कक्षाओं में अंकगणित के समुचित अध्यापन के लिए बट्टों और मापकों का प्रयोग अत्यावश्यक होता है। कृषि-उत्पादनों, चट्टानों और खनिजों के नमूने भूगोल के पाठों को कुछ वास्तविकता का स्वरूप दे देते हैं। प्रकृति-निरीक्षण में फूलों, पत्तियों, पीठिकारोपित



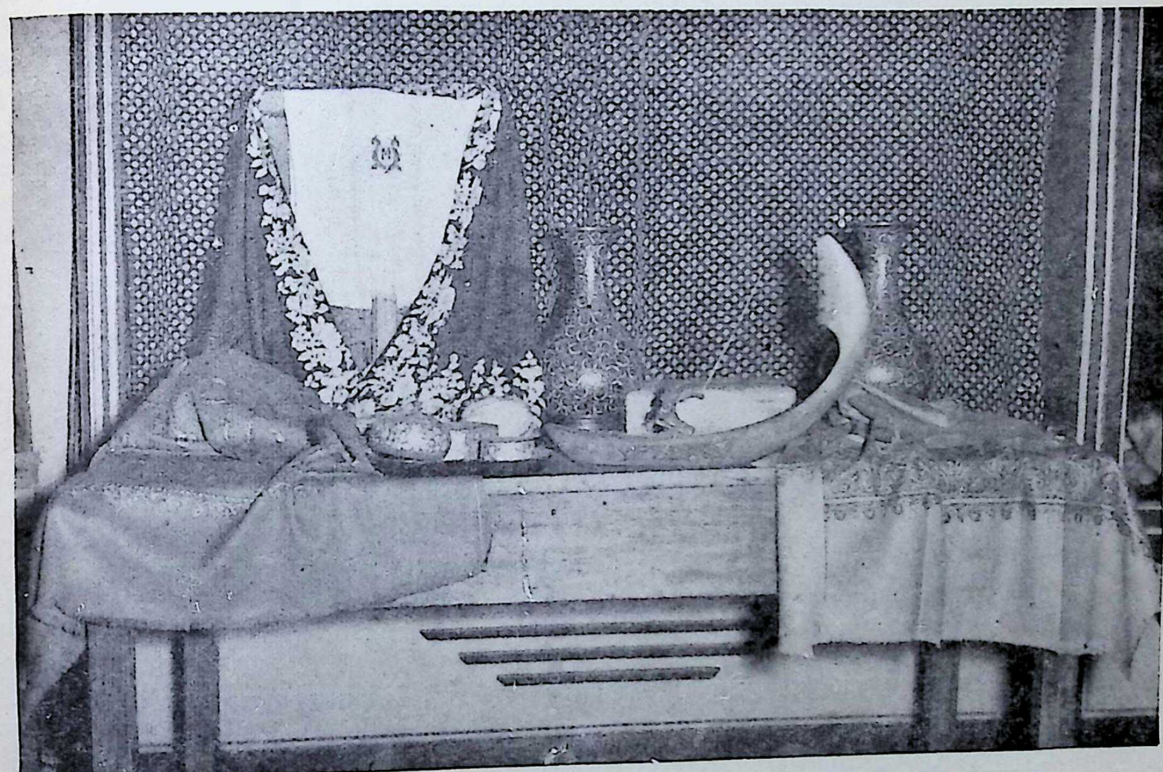
चट्टानों और कृषि उत्पादनों के इन नमूनों से भूगोल के पाठों में वास्तविकता का पुट आ जाता है।

पक्षियों तथा सजीव या निर्जीव कीड़ों का अध्ययन करके बच्चे महत्त्वपूर्ण अनुमान निकाल लेते हैं।



साउथ प्वाइंट स्कूल, कलकत्ता में यथार्थ वस्तुओं की मदद से सीखते हुए बच्चे।

अनेक विवेच्य वस्तुओं के साथ उनका प्राकृतिक परिवेश बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। किन्तु उसे कक्षा में लाना असंभव है। वास्तविकता का सम्यक् चित्र दिखाने के लिए विद्यार्थियों को संसार का पर्यटन भी नहीं कराया जा सकता। फिरभी, सौभाग्य से हमारे पास फ़ोटोग्राफ़, फिल्में और मॉडेल जैसे साधन हैं। इनकी सहायता से हम बच्चों को प्राकृतिक परिवेश का बोध करा सकते हैं।



मेज़ पर प्रदर्शित कश्मीर को इन वस्तुओं से दूरस्थ स्थान की झलक कक्षा में ही मिल जाती है।

कुछ विवेच्य वस्तुएँ ऐसी भी होती हैं जो अपने प्राकृतिक परिवेश के अभाव में निर्जीव हो जाती हैं तो भी प्रत्यक्ष यथार्थ परिवेश में उनका अध्ययन नहीं किया जा सकता। कुछ फूल और पत्तियाँ ऐसी हो सकती हैं जो पास में कहीं उपलब्ध न हों। यदि वे उपलब्ध भी हों तो सम्भवतः विभिन्न दृष्टिकोणों से—विभिन्न पहलुओं से हम उनकी जाँच और परख नहीं कर सकेंगे। तितली को आप दूर से देखते रह सकते हैं, किन्तु ज्यों ही अध्ययन करने के विचार से आप उसके पास जाने का यत्न करते हैं, अपने सहज ज्ञान से वह आपकी उपस्थिति जान लेती है और उड़ जाती है।

१७ नाटकीकरण

पाठ्यचर्चा के प्रायः सभी विषयों इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, विदेशीभाषाएँ का अध्ययन और अध्यापन नाटकीकरण द्वारा सार्थक और आनंदप्रद अनुभव में बदला जा सकता है। शिक्षा के निम्नतम स्तर से उच्चतम स्तर तक यह समानरूप से प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ है। उसे पात्रों द्वारा सामान्य अभिनय कक्षा में ही किया जा सकता है अथवा उपयुक्त रंगमंच पर सावधानी से तैयार किया गया पूर्ण नाटक भी खेला जा सकता है।

प्रश्न है : क्या नाटकीकरण से अभिनेताओं और दर्शकों को समानरूप से लाभ होता है? उत्तर यह है कि लाभ दोनों को होता है। यह कहा जा सकता है कि नाटकीकरण में भाग लेनेवालों को अधिक लाभ होता है क्योंकि वे चरित्रों के आन्तरिक स्वरूप को प्रायः पहचान लेते हैं। शिक्षण की स्थिति में नाटकीकरण के माध्यम से यदि दर्शक त्रुटियों अथवा भूलों को दूर करने के विचार से, अभिनेताओं को सावधानी से देखें तो उन्हें भी इस प्रयास में घनिष्ठ अनुभूति हो सकती है।

नाटकीकरण की उपयोगिताएँ

यह सच है कि नाटकीकरण यथार्थ अनुभूति का एक अनुकल्प मात्र है, किन्तु सुव्यवस्थित ढंग से अभिनीत नाटक में अभिनेता और दर्शक दोनों ही कुछ समय के लिए यह भूल जाते हैं कि वह अयथार्थ है। कुछ अभिनेता अभिनेय चरित्र के आन्तरिक स्वरूप से इतने एकरूप हो

जाते हैं कि अपने भावावेश को रोक नहीं पाते। ऐसी स्थिति में दर्शक भी स्वभावतः उद्वेलित हो उठते हैं। कुछ वर्ष पहले एक स्कूल में अभिनीत 'ध्रुव' नामक नाटक में ध्रुव की भूमिका निभानेवाला विद्यार्थी भगवान की खोज में माँ को छोड़कर ध्रुव के प्रस्थान के समय सचमुच रो पड़ा। उस समय कुछ दर्शक और तमाम बच्चे उसी भावावेश में रो पड़े। ऐसी अनुभूतियाँ अभिनेताओं और दर्शकों दोनों पर ऐसे प्रभाव छोड़ती हैं जो आसानी से भूलाए नहीं जा सकते।

नाटकीकरण बच्चों की झिझक दूर करने में सहायक होता है। प्रारम्भ में, एक मिनट के लिए भी दर्शकों अथवा श्रोताओं के सामने खड़े होने में झिझकनेवाले लड़के-लड़कियाँ बाद में रंगमंच पर घंटों खुलकर अभिनय करते देखे गए हैं। नाटक देखनेवाले शर्मीले बच्चों को रंगमंच पर आकर अभिनय करने का प्रोत्साहन निस्सन्देह मिलता है।

स्कूल में खेले जानेवाले नाटक के अन्तिम प्रदर्शन की तैयारी में केवल अभिनेताओं को ही नहीं, बल्कि अन्य सभी बच्चों को कई दिनों तक लगातार मिलजुलकर बहुतेरे काम करना पड़ते हैं। रंगमंच तैयार करना पड़ता है; प्रकाश और बैठने की व्यवस्था करनी पड़ती है, स्कूल में उपलब्ध न हो तो माइक की व्यवस्था भी करनी पड़ती है, पोशाकें तैयार करनी पड़ती हैं या यहाँ-वहाँ से लानी पड़ती हैं, निमंत्रण पत्र छपाने या तैयार करने और बाँटने पड़ते हैं। इन सारे कामों के लिए विभिन्न कक्षाओं के अनेक विद्यार्थियों का सहयोग आवश्यक होता है। नाटक में भाग लेने वालों को अन्य प्रत्यक्ष लाभ भी होते हैं। चाल-ढाल ध्वनि-नियंत्रण, शब्द-योजना तथा कथन-शैली सम्बन्धी। नाटक में भाग लेनेवालों तथा दर्शकों-दोनों की सौन्दर्यानुभूतिमूलक अभिरुचि विकसित होती है।

समाज-शिक्षा में नाटकीकरण का स्थान

समाज-शिक्षा के किसी भी कार्यक्रम को लें, उसमें नाटकीकरण का महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। ग्रामीणों में अभिनयों के प्रति स्वाभाविक रुचि होती है। अपने खेतों में दिन में कई घण्टे काम करने के बाद भी वे इसके लिए घण्टों जुटे रह सकते हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं को उनकी इस स्वाभाविक रुचि का पूरा लाभ उठाना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अत्यधिक शैक्षणिक महत्त्व की किसी फिल्म का प्रदर्शन आयोजित करना सामाजिक कार्यकर्त्ता के लिए बहुत आसान होता है; किन्तु नाटक एक नितान्त भिन्न उद्देश्य को पूरा करता है। यह गाँववालों को उपयोगी और रुचिकर कार्यक्रम में काफ़ी समय के तक व्यस्त रखता है। नाटक खेलने की तैयारी में स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ, वृद्ध और युवा सभी हिलमिलकर प्रतिदिन लम्बें समय तक उठकर काम करते हैं। रद्दी सामान से उपयोगी चीज़ें बनाना सीखते हैं। उनमें आत्मानुशासन की आदत पड़ती है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं को स्मरण रखना चाहिए कि उनकी सफलता काफ़ी हद तक अभिनेताओं और कार्यकर्त्ताओं के साथ कुशल व्यवहार और सहानुभूति पर निर्भर होती है।

ग्रामीण दर्शकों के लिए उपयुक्त अच्छे नाटक प्रायः उपलब्ध नहीं होते। अधिकांशतः ऐसे नाटक लिखना ही पड़ते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि ग्रामीण अपने दैनिक जीवन का ही चित्रण देखना अधिक पसन्द करते हैं। बड़े-बड़े नगरों के मसलों में उन्हें रुचि नहीं होती। ग्रामीण क्षेत्र में खेले जानेवाले नाटक में जीवन की ऐसी सरल समस्याओं का चित्रण होना चाहिए जिन्हें सभी लोग आसानी से समझ सकें। जहाँ तक व्यवहारिक हो, ग्रामीण दर्शकों के लिए लिखे जानेवाले नाटक में, सम्बन्धित क्षेत्र की शब्दावली का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। हमारे देश के गाँवों के लोग धार्मिक विषयों को बहुत पसन्द करते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के लिए लिखे जानेवाले नाटकों में यदि धार्मिक पुट रहे तो उसका प्रभाव बढ़ जाता है।

नाटकीकरण के प्रमुख प्रकार

अब नाटकीकरण के उन प्रमुख प्रकारों पर विचार करेंगे जो शैक्षणिक स्थितियों को प्रभावपूर्ण और यथार्थ बनाते हैं। छोटे बच्चों के यथाकल्प नाटक से प्रारम्भ करें, जिसे 'नाटकीय खेल' भी कहते हैं; उसके बाद सयाने बच्चों द्वारा आयोजित और पूर्वाभिनीत अभिनय पर विचार करें जिसे 'नाटक' कहते हैं; फिर भव्य और गम्भीर 'लीला', 'मूक अभिनय' और 'चित्रस्तब्ध नाट्य दृश्य' का तथा अत्यन्त रोचक कठपुतलियों के खेल का विवेचन करें।

नाटकीय खेल

बच्चों के यथाकल्प नाटक को 'नाटकीय खेल' कहा जाता है। इसमें मुख्यतः बच्चे ही भाग लेते हैं। इस खेल का एकमात्र उद्देश्य यह होता है कि बच्चे का बौद्धिक, शारीरिक और सामाजिक विकास हो। ऐसे नाटक को 'रचनात्मक नाट्य' भी कहते हैं क्योंकि इसकी तैयारी बच्चे ही करते हैं। बच्चे दूसरों के शब्दों को रटकर दोहराते नहीं हैं; वे जो कुछ भी कहते या करते हैं वह सब स्वयं-स्फूर्त होता है। कोई विशेषज्ञ उनका निर्देशन नहीं करता।

नाटकीय खेल बच्चे के ज्ञानार्जन और विकास का स्वाभाविक मार्ग है। 'जीवन की परख' का, जो कुछ उसे रोचक लगा हो उसकी पुनर्नुभूति का, यह उसका अपना ढंग है। जो भी नया या विशिष्ट अनुभव उसे होता है उसे वह अपने ढंग से समझना चाहता है। बस पर वह कहीं दूर जा रहा है। चालक बस कैसे चालू करता है; घंटी बजने पर वह उसे कैसे रोकता है—यह सब वह ध्यान से देखता है। घर आकर वह चालक बनने का खेल खेलता है, क्योंकि चालक उसके मन को भा गया है। इसी तरह वह डाक्टर, नर्स, डाकिया—सभी कुछ बनने के खेल खेलता है और उन्हें समझता है।

यदि माता-पिता और अध्यापक बच्चों के इस खेल को प्रोत्साहन नहीं देते तो वे बच्चों की बड़ी हानि करते हैं। जब बच्चे देखते हैं कि उनके माता-पिता या अध्यापक उनके खेल में कोई रुचि नहीं ले रहे हैं तो वे अपनी सारी सक्रियता बन्द कर देते हैं और वह सारा आनन्द और ज्ञान खो देते हैं जो उन्हें इस तरह मिल सकता था। जब भी सम्भव हो, माता-पिता को बच्चों के खेल में शामिल होना चाहिए। इससे एक नया सम्बन्ध पनपता है। अपने बच्चों को कठिन स्थितियों का सामना हँसते हुए करने के लिए अनेक माता-पिताओं ने इसी तरह तैयार किया है। अपनी रचना "प्ले-मेकिंग विद चिल्ड्रेन" में विनिफ्रेड वार्ड ने लिखा है: "एक छोटी बच्ची का खतरनाक आपरेशन होना था; उसकी माँ ने उसके साथ अनेक बार अस्पताल और आपरेशन का खेल खेला। जब आपरेशन का दिन आया तब बच्ची निडर होकर आपरेशन के लिए चली गई, और बाद में उसने अपनी माँ से कहा, "सब कुछ ठीक अपने खेल की तरह हुआ।"

बच्चों में यथाकल्प की प्रवृत्ति शिक्षाविदों को यह अवसर और सुविधा देती है कि अनेक शैक्षणिक स्थितियों को प्रभावकारी और यथार्थ बनाया जा सके। छोटे बच्चों के खेल को प्रारम्भ करने के लिए अध्यापक कुछ छन्द या तुकबन्दी गुनगुना सकता है; अनेक छन्दों या तुकबन्दियों में ऐसी लय और ताल होता है कि उन्हें सुनते ही बच्चे खेल शुरू कर देते हैं। बच्चों को ज्ञान कोई भी कहानी नाटकीय खेल का आधार बन सकती है। बच्चों के साथ उनके खेल में शामिल होना अध्यापक के लिए अच्छा और उचित है; इसलिए नहीं कि वह उन्हें खेलने का ढंग समझाए, बल्कि इसलिए कि बच्चों को जहाँ सहायता मिलनी चाहिए वहाँ उनकी सहायता करे।

कभी-कभी रेलवे स्टेशन, बाज़ार, अजायबघर आदि की यात्रा के अनुभव बच्चों को स्कूल में नाटकीय खेल खेलने की प्रेरणा दे सकते हैं। अनुभवी और सहानुभूतिपूर्ण कोई भी अध्यापक चर्चा द्वारा ऐसे खेलों को प्रारम्भ कराने की कला जानता है। अपने अनुभव सुनाने के लिए बच्चों को आसानी से प्रेरित किया जा सकता है और ऐसी ही कोई भी चर्चा अध्यापक के उद्देश्य के लिए पर्याप्त हो सकती है।

ऊपर जिस नाटकीय खेल की चर्चा की गई उसे कक्षाकक्ष में ही खेला जा सकता है—यदि वह बहुत बड़ा न हो। अन्य किसी उपयुक्त स्थान पर भी वह खेला जा सकता है। अध्यापक को इतनी सतर्कता रखनी चाहिए कि जिन का खेल से कोई सम्बन्ध न हो, वे उसे न देखें। बच्चे बाहरी लोगों के सामने स्वतंत्र-मन होकर निस्संकोच काम नहीं कर पाते। फिरभी, ऐसे अवसर आ सकते हैं जब बच्चे अपने माता-पिता को तथा अन्य लोगों को अपना कोई प्रिय खेल दिखाने के लिए उत्सुक हों। जब ऐसे खेलों का आयोजन किया जाए तो पोशाक और दृश्यावली

आदि के सम्बन्ध में उपयुक्त सुझाव देकर बच्चों की सहायता की जानी चाहिए ताकि आमंत्रित लोगों के लिए खेल यथार्थ और मनोरंजक हो सके।

घर की भाँति स्कूल में भी नाटकीय खेलों के माध्यम से बच्चों को पारितोषिक-वितरण दिवस, स्वतंत्रता दिवस, बाल दिवस जैसे महत्त्वपूर्ण अवसरों के लिए तैयार किया जा सकता है। इन 'दिनों' या अवसरों के यथाकल्प अनुभव उन्हें वास्तविक आयोजन के दिन आसानी से अपना काम निस्संकोच करने के लिए तैयार कर देंगे।

नाटक

बच्चों द्वारा लिखी या किसी लेखक की कहानी के पूर्वाभिनय के बाद किए गए सुनियोजित अभिनय को 'नाटक' कहते हैं। बच्चे जैसे-जैसे सयाने होते हैं, वैसे-वैसे उनका कल्पना-लोक संकुचित



कलकत्ता में सी० एल० टी० बच्चों द्वारा नाटक का अभिनय।
(सी० एल० टी०, कलकत्ता के सौजन्य से)

होता जाता है और यथार्थ वस्तुओं में उनकी अभिरुचि दृढ़तर होती जाती है। नाटक यथार्थ स्थिति का अनुकल्प ही होता है।

'नाटकीय खेल' की भाँति 'नाटक' भी बच्चों को रचना करने में सहायता पहुँचा सकता है ; पर बहुत कुछ उनके मार्ग-दर्शक अध्यापक पर ही निर्भर होता है। कुछ अध्यापक नाटक का निर्देशन ही नहीं करते, बहुधा उन कामों को भी करते हैं जो बच्चों को करने चाहिए। वे कहानी चुनते हैं, उसका नाटकीकरण करते हैं और ऐसे बच्चों को चुनते हैं जो अपनी भूमिका याद कर सकें और उसे ठीक-ठीक निभा सकें। यदि नाटक को हम एक शिक्षाप्रद शैक्षणिक कार्य बनाना चाहते हैं तो, हमें बच्चों को प्रेरित करना चाहिए कि वे स्वयं ही अपने नाटक की कहानी लिखें। यदि वे स्वयं कहानी न लिखें तो, कहानी चुनने और उसके नाटकीकरण का दायित्व बच्चों पर ही छोड़ना चाहिए। विषय की उपयुक्तता पर कक्षा में सामान्य चर्चा कर लेना शैक्षणिक दृष्टि से बहुत ही उपयोगी व महत्त्वपूर्ण होता है। विभिन्न भूमिकाओं के लिए बच्चों को चुनने का काम भी कक्षा को ही सौंपना चाहिए। कक्षा के सभी बच्चों को नाटक के सम्बन्ध में कोई-न-कोई काम अवश्य मिले—इस बात की सावधानी बरतना अध्यापक को अवश्य रखनी चाहिए।

लीला

नाटक की अपेक्षा लीला अधिक सुन्दर और दर्शनीय होती है। उसमें कथन की अपेक्षा दृश्य-विन्यास और क्रिया को अधिक महत्त्व दिया जाता है। बहुधा लीला का सम्बन्ध किसी गम्भीर निष्ठापूर्ण विषय से ही होता है। स्कूलों में लीला के लिए प्रायः ऐतिहासिक दृश्य चुने जाते हैं। कक्षा में लीला-आयोजन के लिए अवसर नहीं होता, क्योंकि उसके लिए अधिक समय और शक्ति चाहिए। प्रभावकारी लीला के आयोजन के लिए पूरी शाला का सहयोग आवश्यक होगा। कुछ वर्ष पहले कलकत्ते के एक थिएटर में बहुत ही मनोरंजक और शिक्षाप्रद लीला आयोजन देखने को मिला। उसमें, भारत में यंत्र-युग का चित्रण प्रस्तुत किया गया था। पार्श्व-संगीत और दृश्य-विन्यास ने इस लीला की सफलता में बड़ा योग दिया। यों तो लीला आयोजन में सभी प्रकार की प्रतिभा या बुद्धि वाले बच्चों के लिए अवसर होते हैं, फिरभी कुछ ही शिक्षा-संस्थाएँ इसे प्रोत्साहन देंगी, क्योंकि स्कूल के स्वाभाविक कार्यक्रम में इससे बहुत व्यवधान होता है।

मूक अभिनय

मूक अभिनय में अभिनेता अपने भावों की अभिव्यक्ति केवल अपनी शारीरिक क्रियाओं, और भाव-भंगियों द्वारा करते है ; संगीत सामान्यतः अभिनय के साथ-साथ चलता है। अभिनय में जो कुछ प्रस्तुत किया जाता है उसका संकेत देने के लिए कोई घोषणा नहीं की जाती।

हमारे दैनिक जीवन की अनेक ऐसी समस्याएँ और स्थितियाँ हैं जिन्हें नाटकीकरण की अन्य किसी भी विधा की अपेक्षा मूक अभिनय द्वारा अधिक अच्छे ढंग से व्यक्त किया जा सकता



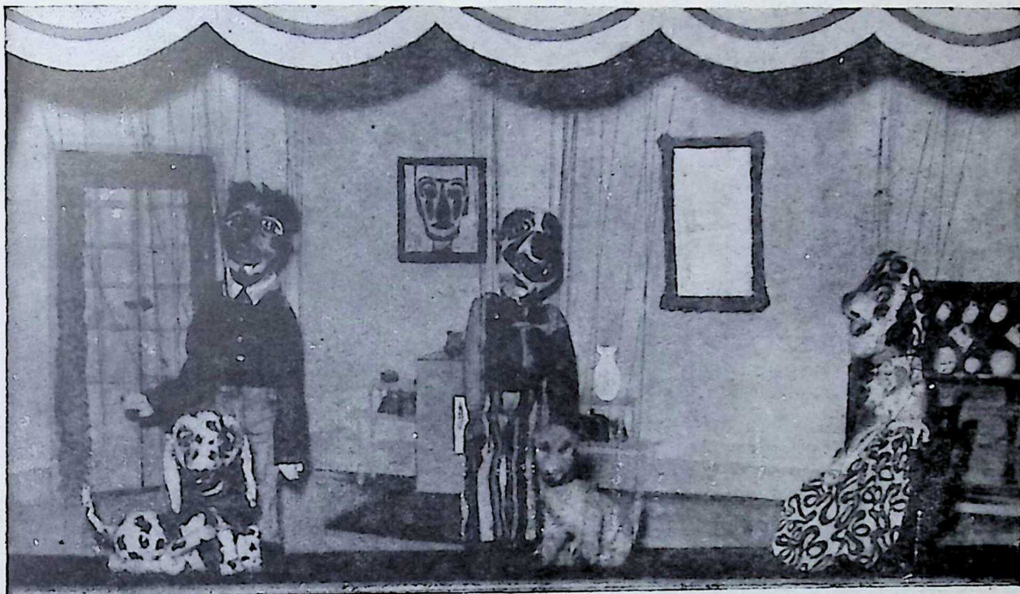
हिन्दी हाईस्कूल, कलकत्ता के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत मूक अभिनय।

है। शर्मीले बच्चों के लिए मूक अभिनय विशेषरूप से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें उन्हें दर्शकों के सामने बोलना नहीं पड़ता। शारीरिक विकास करने की दृष्टि से भी नाटकीकरण की यह विधा उपयोगी है। मूक-अभिनय का एक लाभ यह भी है कि इसका आयोजन कक्षा में सादी पोशाक में ही किया जा सकता है।

चित्रस्तब्ध नाट्यदृश्य

चित्रस्तब्ध नाट्यदृश्य में अभिनेता न तो बोलते हैं और न कोई कार्यव्यापार ही करते हैं। उपयुक्त वेशभूषा के साथ यदि ठीक-ठीक मुद्रा-विन्यास किया जाए तो इस प्रकार के नाट्यदृश्य में किसी ऐतिहासिक घटना या सामाजिक समस्या को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। चित्रस्तब्ध नाट्यदृश्यों के साथ सामान्यतः संगीत का योग रहता है। नाटक की यह विधा फ़्रांस में जन-प्रिय है। वहाँ इसके अँगरेज़ी पर्याय 'टैब्लो' का अर्थ है चित्र।

मूक अभिनय की भाँति चित्रस्तब्ध नाट्यदृश्य को प्रस्तुत करते समय भी किसी प्रकार की घोषणा नहीं की जाती। दर्शकों को स्वयं ही अनुमान लगाना पड़ता है कि दृश्य में क्या प्रस्तुत किया गया है। यह बात बहुत ही मनोरंजक और उपयोगी होती है।

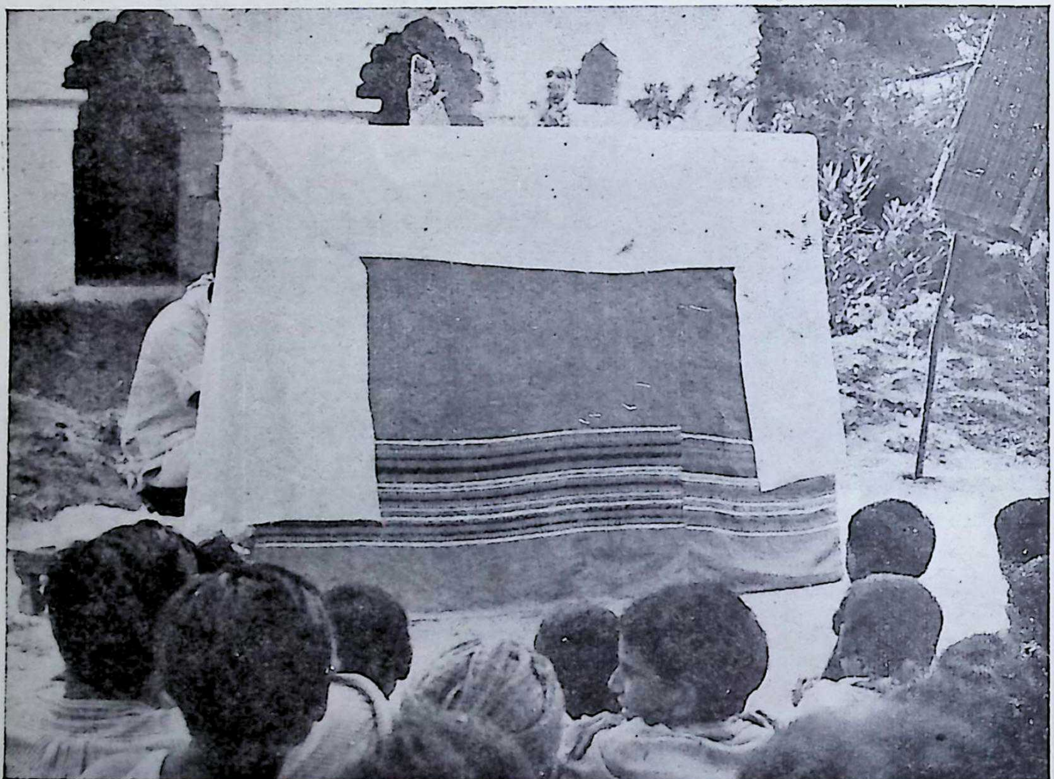


ब्रिटेन के स्कूलों में कठपुतलियों का निर्माण और उनके खेल नियमित कार्यक्रम के अंग हैं।
(ब्रांटी हाउस, यार्कशायर, इंग्लैण्ड के सौजन्य से)

कठपुतलियों के खेल

भारत के गाँवों में कठपुतलियों के खेल प्राचीन और जनप्रिय कला के रूप में प्रचलिन रहे हैं। सिनेमा और थिएटर का प्रचलन बढ़ने के कारण पिछले कुछ वर्षों में इनका चलन बहुत कम हो गया है। हिन्देशिया, चीन, जापान, श्याम, मिश्र और यूनान जैसे देशों में इनका चलन बहुत प्राचीन काल से है। यूरोप के कुछ स्थानों में भी मध्ययुग में कठपुतलियों के खेल धार्मिक नाटकों में प्रदर्शित किए जाते थे। कुछ लोगों का विश्वास है कि अँगरेज़ी का शब्द 'मैरियॉनेट'—डोरियों से चलनेवाली कठपुतलियाँ—की उत्पत्ति कुमारी मेरी की सचल काष्ठ प्रतिमाओं से हुई है। पिछले दो दशकों में ब्रिटेन और अमरीका में कठपुतलियों के खल अधिक लोक-प्रिय हुई हैं। अमरीका के कई विश्वविद्यालयों में कठपुतली-कला के विभिन्न पहलुओं पर पाठ्यक्रम प्रचलित हैं। ब्रिटेन के अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अध्यापकों को कठपुतलियाँ बनाने और उन्हें संचालित करने की शिक्षा दी जाती है।

कठपुतलीकला ऐसा शिल्प है जिसका हमारे गाँवों में पुनरुद्धार किया जा सकता है। कभी-कभी लोग विधिवत् प्रस्तुत किए गए नाटक की अपेक्षा कठपुतलियों के खेल से अधिक आनन्दित होते हैं। कठपुतलियों के खेल में क़ीमती पोशाकों और रंगमंच के उपकरणों की आवश्यकता



बिहार के एक सामुदायिक विकास-केन्द्र में चेचक से बचने के लिए टीका लगवाने की आवश्यकता पर कठपुतलियों के खेल के माध्यम से ज़ोर दिया जा रहा है।
(यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़ के सौजन्य से)

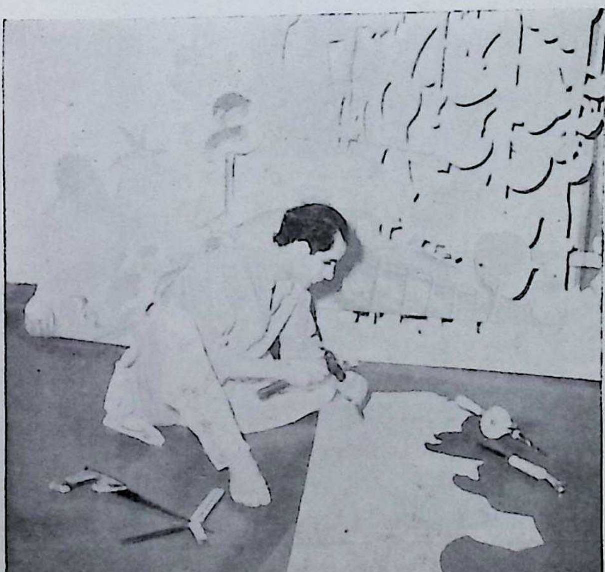
नहीं होती इसलिए ग्रामीणों की शिक्षा के लिए इसका प्रयोग लाभदायक ढंग से किया जा सकता है। कठपुतलियों के खेल में बोलनेवालों और संचालकों के रूप में तथा कठपुनलियाँ बनानेवालों के रूप में बहुत लोग इस शिल्प में लग सकते हैं। कठपुतलियाँ और उनकी पोशाकें बनाने का काम स्त्री और पुरुष दोनों, अवकाश के समय में कर सकते हैं।

(२) स्कूलों में प्रभावपूर्ण दृश्य-श्रव्य साधन

कठपुतली शिल्प ज्ञानार्जन का प्रभावपूर्ण साधन हो सकता है। पर दुर्भाग्यवश इस देश के स्कूलों में बच्चों के लिए कठपुतलियों का उपयोग प्रायः नहीं किया जाता। ब्रिटेन और अमरीका में कठपुतलियों का निर्माण और उनके खेल प्राइमरी स्कूलों के नियमित कार्यक्रमों में शामिल हैं। यह उत्साहवर्धक तथ्य है कि भारत के अनेक शिक्षाविद् आज शिक्षा में कठपुतलियों के महत्त्वपूर्ण उपयोग का अनुभव करते हैं और इस प्राचीन भारतीय कला को स्कूलों में प्रचलित करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। कठपुतली निर्माण और कठपुतली संचालन में प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम की व्यवस्था अध्यापकों के लिए कलकत्ते के चिल्ड्रेन्स लिटिल थिएटर द्वारा और दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान, दिल्ली द्वारा की गई है। आशा है कि इस प्रकार के प्रयत्नों से कठपुतली कला के शैक्षणिक महत्त्व को बल मिलेगा।

इतिहास, भूगोल, साहित्य, कला और हस्तशिल्प—सभी कठपुतलियों के खेल में योग दे सकते हैं। जब कई कक्षा कठपुतली के खेल का आयोजन करती है तब कक्षा के प्रायः सभी विद्यार्थी कठपुतलियाँ, उनकी पोशाकें, दृश्य तथा अन्य कई चीज़ें तैयार करने में कई दिनों तक मिलजुलकर लगे रहते हैं।

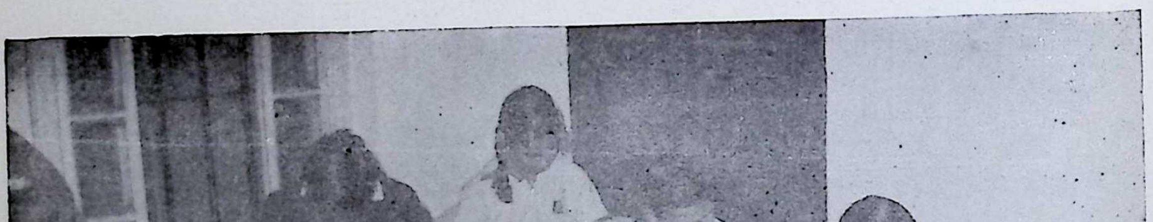
कठपुतलियों के बोल प्रस्तुत करने में बच्चों की कल्पनाशक्ति का विकास होता है; उनका संचालन करने में बच्चों की शारीरिक निपुणता बढ़ती है। पाठों के निदर्शन के लिए कठपुतलियाँ



मंच के लिए सुन्दर दृश्यों का निर्माण सामान्य औज़ारों और सामान्य सामग्री से किया जा रहा है।
(सी० एल० टी०, कलकत्ता के सौजन्य से)



नई दिल्ली स्थित शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग में कठपुतलियाँ बनाना सीखते हुए कुछ अध्यापक। (दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग, नई दिल्ली के सौजन्य से)



बच्चों को कठपुतलियाँ बनाना प्रिय लगता है। (सी० एल० टी०, कलकत्ता के सौजन्य से)

बनाने से भी बहुत लाभ हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि विवेचनागत ऐतिहासिक काल-विशेष की वेशभूषा और शस्त्रास्त्रों का प्रदर्शन करने के लिए छोटी-छोटी आकृतियाँ बनाई जाएँ तो इतिहास के पाठ काफ़ी रोचक हो सकते हैं। शर्मीले बच्चों को अधिक खुलकर बोलने और बात करने में कठपुतली-क्रीड़ा से सहायता मिल सकती है, क्योंकि पर्दे के पीछे वे दर्शकों की दृष्टि से ओझल रहते हैं।

(३) कठपुतली-निर्माण

किसी कलात्मक कौशल के बिना ही बच्चे कठपुतलियाँ बना सकते हैं। कठपुतली-निर्माण एक बहुत ही आनन्ददायक रचनात्मक काम है। छोटे बच्चों की रचनात्मक प्रवृत्ति को विकसित करने के लिए पाठ्यचर्या के किसी भी प्रकरण के सम्बद्ध करके या सम्बन्धित किए बिना ही इस कार्य को प्रोत्साहन देना चाहिए।

नीचे कठपुतलियों के कुछ ऐसे प्रकारों की चर्चा की जा रही है जिन्हें बच्चे बना सकते हैं—
हथपुतलियाँ—ये पुतलियाँ हाथ में दस्ताने की तरह जम जाती हैं और अंगुलियों द्वारा नीचे से इनका संचालन किया जाता है। इन्हें सरलता से बनाया जा सकता है। इनको

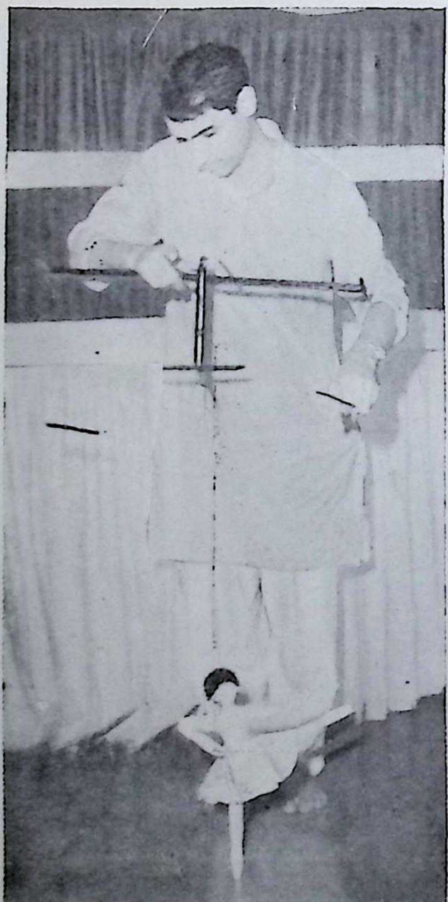


ये सभी हथपुतलियाँ हैं। (सी० एल० टी०, कलकत्ता के सौजन्य से)

बनाने के लिए काग़ज़ की लुगदी, कपड़ा, तागा, और रंग चाहिए। उत्तम हथपुतलियाँ केवल कपड़े से ही तैयार की जाती हैं। काग़ज़ की लुगदी का प्रयोग पुतली के सिर के लिए और कपड़े का प्रयोग हाथों और शेष शरीर के लिए किया जाता है।



छड़-पुतली (सी० एल० टी०, कलकत्ता के सौजन्य से)

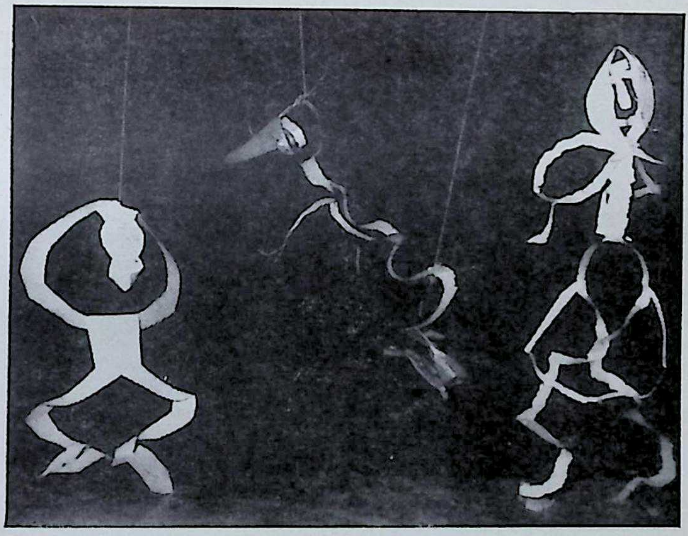


डोरी-पुतली (सी० एल० टी०, कलकत्ता के सौजन्य से)

छड़-पुतलियाँ—इन पुतलियों का छड़ और डोरियों द्वारा रंगमंच के नीचे से संचालन किया जाता है। इन्हें भी सरलता से साधारण सामग्रियाँ जैसी लकड़ी, कपड़ा, तागा और रंगों से बनाई जा सकती है।

डोरी-पुतलियाँ या मैरियॉनेट—इन सचल अंगों वाली पुतलियों का संचालन डोरियों के सहारे ऊपर से किया जाता है। इन पुतलियों को भी बच्चे आसानी से बना सकते हैं। इनके निर्माण की सरलीकृत तकनीकें हैं। इनके बनाने के लिए आवश्यक सामग्री है : कपड़ा, लकड़ी, तागा, रूई, रंग और अखबारों के ताव। इनका सिर शरीर के आकार की तुलना में बड़ा बनाया जाता है और हाथों तथा पैरों के दो-दो भाग होते हैं। पोशाक ढीली होती है। कुछ स्कूलों में दफ़्ती या मोटे काग़ज़ से डोरी-पुतलियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। ऐसी पुतलियाँ बनाना और भी सरल होता है।

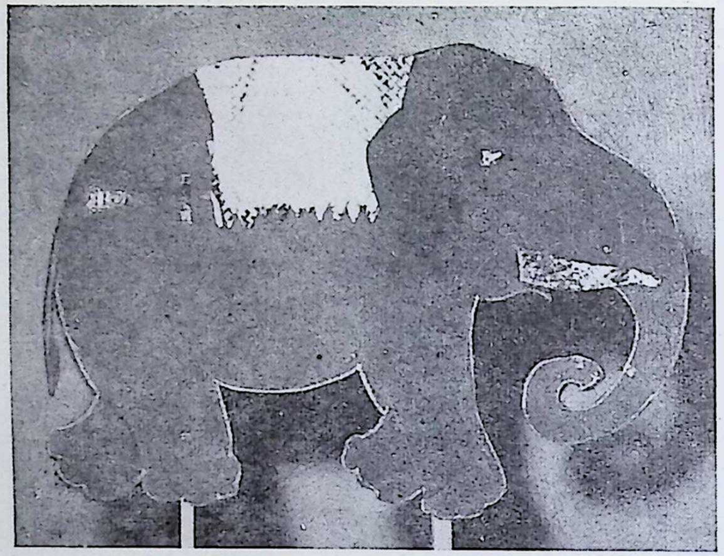
सामान्य दफ़्ती की पुतलियाँ—ये पुतलियाँ बच्चे बहुत ही सरलता से बना सकते हैं। देखने में भी ये बहुत मोहक होती हैं। इन्हें छड़ियों से सम्बद्ध कर दिया जाता है।



मोटे बेठन काग़ज़ से बनाई गई डोरी-पुतलियाँ। (शै० अ० प्र० रा० परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग, नई दिल्ली के सौजन्य से)

(४) कठपुतलियों के खेल से संबंधित महत्त्वपूर्ण बातें

(१) कठपुतलियों द्वारा अभिनीत नाटक को चुनते समय सबसे पहले यह बात ध्यान में



गत्ते से बनी सामान्य हाथी की पुतली। (शै० अ० प्र० रा० परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग, नई दिल्ली के सौजन्य से)

रखनी चाहिए कि पुतलियाँ वैसे कार्य-व्यापार के लिए ही उपयुक्त होती हैं जिनका अभिनय रंगमंच पर प्रस्तुत कर सकना बच्चों के लिए आसान नहीं होता।

(२) पुतली-नाटक का चुनाव करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उसमें कार्य-व्यापार के लिए पर्याप्त गुंजाइश हो। पुतलियों को काम करते हुए देखना बच्चों को वैसा ही अच्छा लगता है जैसा वयस्कों को। यदि किसी दृश्य में पुतलियाँ देर तक निष्क्रिय रहें तो पुतली-नाटक की रोचकता को आघात पहुँचने की आशंका रहती है।

(३) नियमित नाटक की भाँति पुतली-नाटक में भी पर्याप्त नृत्य और संगीत होना चाहिए। पार्श्व-संगीत के लिए टेप रेकार्डर उपयोग लाभदायक हो सकता है।

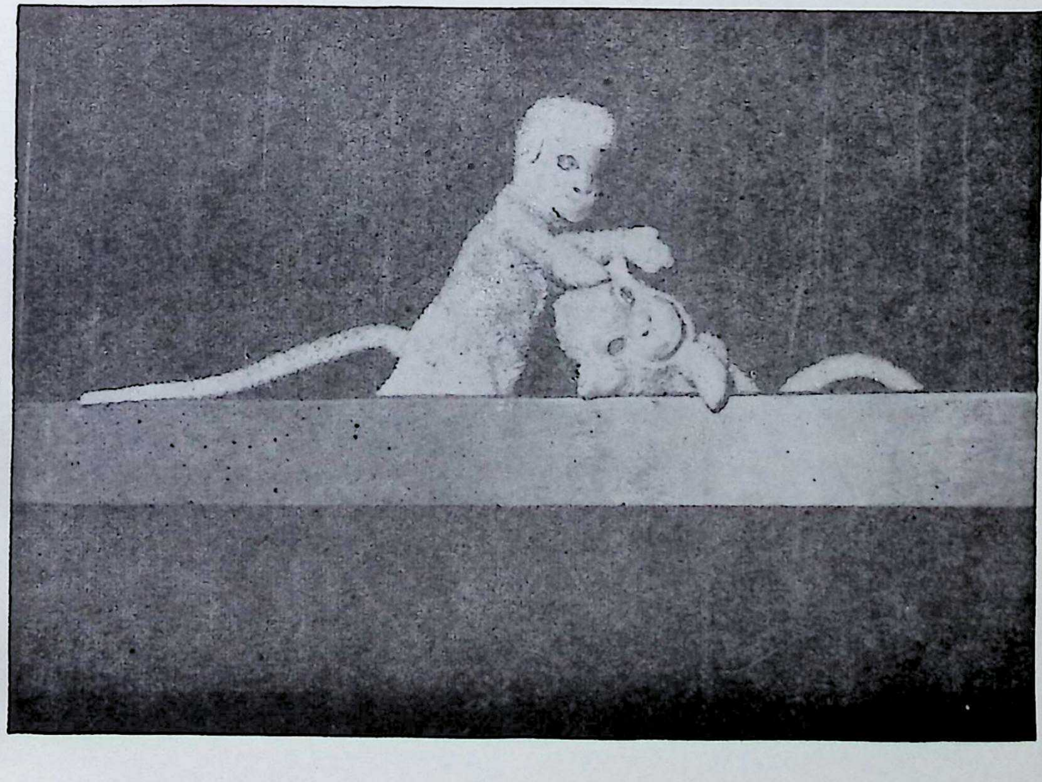
(४) पुतली-नाटक छोटा हो। नाटक लम्बा होने से पुतलियों, (विशेषरूप से डोरी-पुतलियों) के खराब हो जाने की आशंका रहती है।

छाया-नाटक

पुतली-नाटक की भाँति छाया-नाटक भी भारत की प्राचीन और लोकप्रिय कला है। पाठों पर आधारित हो तो छाया-नाटक का उपयोग स्कूल के उच्च और निम्नवर्गीय—दोनों श्रेणियों के छात्रों के लिए लाभदायक हो सकता है।



सी० एल० टी०, कलकत्ता द्वारा प्रस्तुत पुतली-नाटकों के रोचक दृश्य।



पुतली-नाटक की भाँति छाया-नाटक के लिए भी जो कहानी चुनी जाए उसमें कार्य-व्यापार काफ़ी होना चाहिए। यदि दृश्यों सहित उपयुक्त मंच की व्यवस्था हो तो छाया-नाटक का प्रभाव बढ़ जाता है। छाया-नाटक में कथोपकथन हो सकता है, और नहीं भी; किन्तु संगीत दोनों ही स्थितियों में अत्यावश्यक होता है।

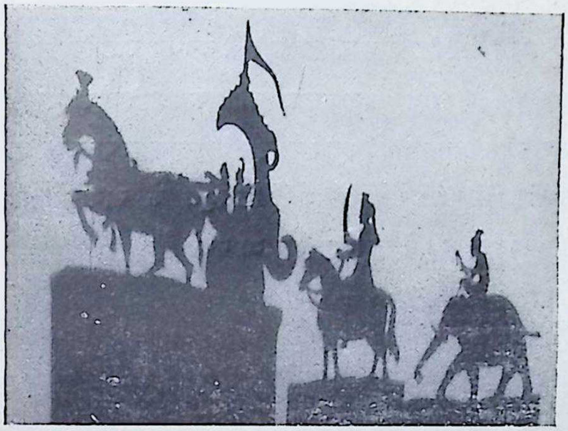
छाया-नाटक के दो भेद होते हैं। एक में अभिनय करनेवाले स्त्री-पुरुषों की छायाएँ पर्दे पर प्रक्षेपित की जाती हैं। वे प्रकाश के सामने अभिनय करते हैं और उनकी छाया पर्दे पर पड़ती है। अभिनेता पर्दे के बहुत समीप रहते हैं। दैत्यों, जादूगरनियों आदि अस्वाभाविक पात्रों को दिखाने के लिए मुखौटे का उपयोग किया जाता है।

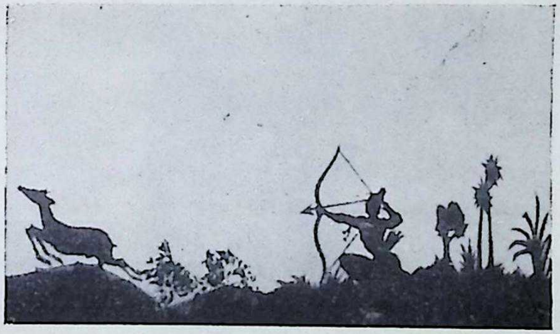


हिन्दी हाईस्कूल, कलकत्ता के बच्चों द्वारा प्रस्तुत छाया-नाटक में दैत्य का अभिनय करने के लिए मुखौटे का उपयोग किया गया है।

छाया-नाटक का दूसरा प्रकार, पुराने ज़माने में भारत में बहुत प्रचलित था। पतले गत्ते या लाई को काटकर बनाई गई पुतलियों (पहले कहा जा चुका है कि पुराने ज़माने में इसके लिए पारभासी चमड़े का उपयोग किया जाता था) की सहायता से इसे प्रस्तुत किया जाता है। पुतलियों

का संचालन पर्दे के पीछे छड़ों और डोरियों की सहायता से किया जाता है। चरित्रों की गतिशीलता दिखाने के लिए एक ही चरित्र की कई पुतलियाँ नियत स्थानों पर जमा दी जाती हैं और फिर उन सब पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रकाश फेंका जाता है।

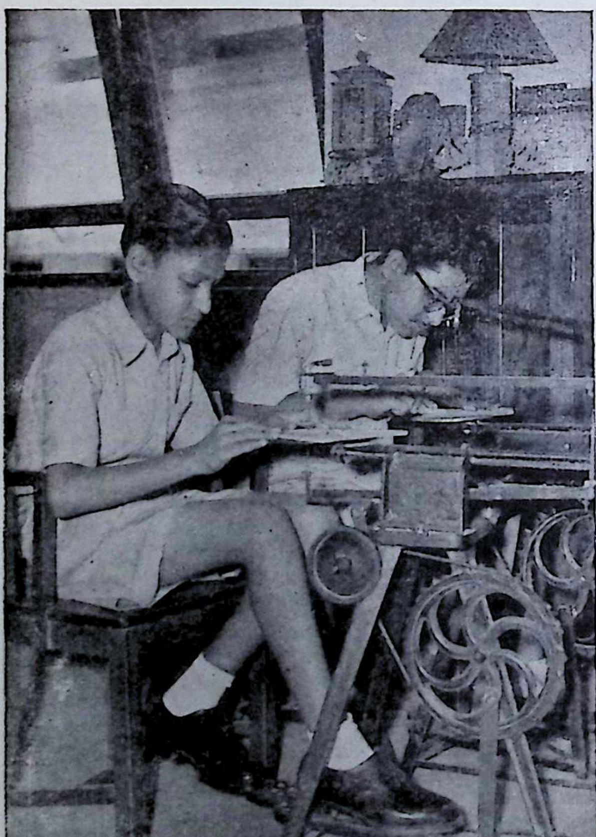






हिन्दी हाईस्कूल, कलकत्ता के बच्चों द्वारा प्रस्तुत छाया-नाटक 'गीता-भाव दर्शन' के दृश्यावली।

शिक्षा क्षेत्र में छाया-नाटक की उपयोगिता का अनुभव अपने देश में अब फिर किया जाने लगा है। कुछ स्कूलों में छाया-चित्रों के माध्यम से मनोरंजक कहानियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। कुछ वर्ष पूर्व सामान्य गत्ते की कटी हुई पुतलियों का एक अत्यन्त भव्य छाया-नाटक कलकत्ते में हिन्दी हाईस्कूल के बच्चों द्वारा प्रस्तुत किया गया था। यह भारत में आयोजित ऐसे सर्वोत्तम नाटकों में से एक था। अपने योग्य कलाध्यापक के समर्थ निर्देशन में छोटी कक्षाओं के लगभग साठ विद्यार्थियों ने मिलजुलकर प्रायः ९० दिन इसके लिए काम किया था। इस नाटक की एक प्रशंसनीय विशेषता यह थी कि इसमें गीता के भावसूक्ष्म दार्शनिक विचारों को मूर्त दृश्य-रूप में प्रस्तुत किया गया था। इस साहसपूर्ण आयोजन की अनुपम सफलता इस बात का सबल प्रमाण है कि स्कूल के सामान्य पाठों से सम्बन्धित सरलतर विचार इस माध्यम द्वारा आसानी से प्रदर्शित किए जा सकते हैं।



छाया-नाटक के लिए पुतलियाँ काटकर तैयार करते हुए हिन्दी हाईस्कूल के विद्यार्थी।

१८ स्लाइडें और फिल्मपट्टियाँ

स्लाइडें

जादुई लालटेन की स्लाइडें

जादुई लालटेन की स्लाइड प्रक्षेपित चित्रों के प्राचीनतम रूपों में से एक है। अनेक भारतीय स्कूलों और सामाजिक शिक्षा-केन्द्रों द्वारा लम्बे अरसे से जादुई लालटेन या, 'डायस्कोप' का प्रयोग किया जाता रहा है। इसका आविष्कार लगभग तीन सौ वर्ष पहले किया गया था। यह उपकरण कुछ हद तक बोझिल और भारी है। दिखाई जानेवाली सामग्री $३\frac{१}{४}$ इंच × ४ इंच आकार की पारदर्शी स्लाइड पर अंकित और चित्रित करके प्रस्तुत की जाती है। जादुई लालटेन का संचालन बहुत ही सरल है। इसके लिए कमरे में पूर्ण अन्धकार की व्यवस्था आवश्यक नहीं होती। स्लाइडें बनाना भी बहुत आसान होता है। इस यन्त्र की सरलता से प्रेरित होकर कुछ भारतीय निर्माताओं ने बच्चों के खेल के लिए छोटी-छोटी जादुई लालटेनें खिलौनों के रूप में बनाई हैं।

यद्यपि जादुई लालटेन की स्लाइडें भारी कमज़ोर और अपेक्षाकृत अधिक खर्चीली होती हैं; फिरभी भारत के ग्रामीण स्कूलों में, जहाँ बिजली उपलब्ध नहीं है, गैस बत्ती या ऐसीटिलीन गैस

युक्त जादुई लालटेन बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। पड़ोस के ग्रामीण स्कूलों को देने के लिए ज़िलों के प्रमुख नगरों में यदि स्लाइड-पुस्तकालय चालू कर दिए जायँ, तो अनेक ग्रामीण स्कूलों द्वारा इस यंत्र का नियमित उपयोग सरल हो जायगा।

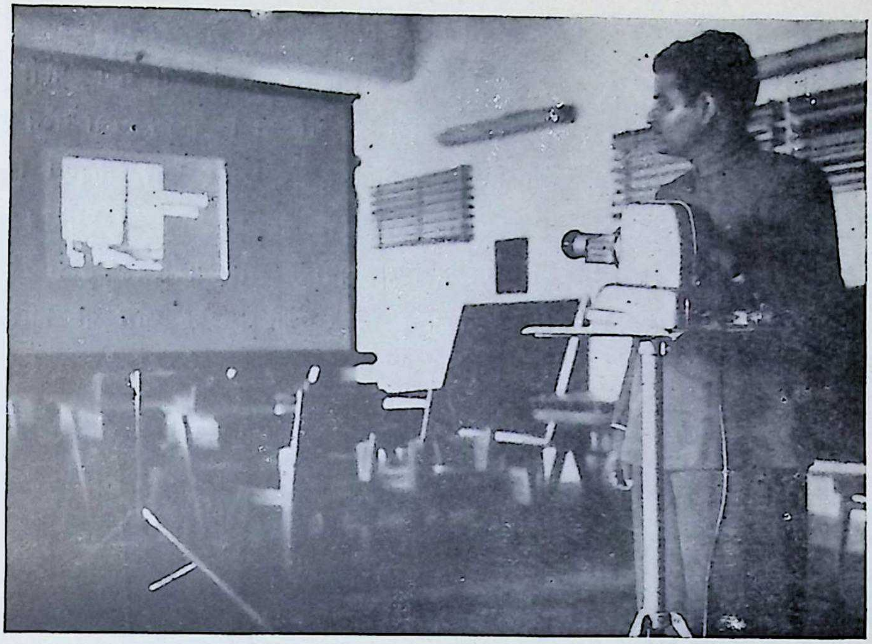
ग्रामीण क्षेत्रों के कल्याण से सम्बन्धित विषयों पर अब व्यापारिक स्रोतों से उत्तम कोटी की स्लाइडें सस्ते दामों पर उपलब्ध हैं; सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को जादुई लालटेन का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। गैस बत्ती वाली जादुई लालटेनों का निर्माण अब भारत में होने लगा है। ये टिकाऊ होती हैं और इन पर निर्भर रह सकते हैं। बहुत खर्चीली भी नहीं हैं। इनमें से कुछ प्रक्षेपियों में फिल्मपट्टियों के प्रक्षेपण की व्यवस्था भी रहती है। विशिष्ट शिक्षण-स्थितियों के लिए उपयोगी स्लाइडें स्वयं बना लेने के लिए भी सामाजिक कार्य कर्त्ताओं को प्रोत्साहन देना चाहिए। स्लाइड बनाने के लिए विशेष कलात्मक योग्यता आवश्यकता नहीं होती; फिरभी थोड़े दिनों का प्रशिक्षण सहायक होगा। सामाजिक शिक्षा-आयोजकों के प्रशिक्षण-केन्द्रों ने दृश्य-श्रव्य शिक्षा के प्रायोगिक पाठ्यक्रम में इस प्रशिक्षण को शामिल कर लिया है।

आधुनिक २इंच × २इंच आकार वाली स्लाइडें

जब से ३५ मि० मी० कैमरे बनने लगे हैं, तब से उन शहरों और क़स्बों में जहाँ बिजली पहुँच चुकी है, २इंच × २इंच आकार वाली स्लाइडें शिक्षा का उपयोगी साधन बन गई हैं। इन स्लाइडों का प्रदर्शन करनेवाला प्रक्षेपी जादुई लालटेन की अपेक्षा बहुत छोटा और हलका होता है। जादुई लालटेन की तरह इस प्रक्षेपी का संचालन बहुत आसान होता है, और यदि इसकी बत्ती तेज़ हुई तो कमरे में बहुत अँधेरा करना भी ज़रूरी नहीं होता। २इंच × २इंच आकार वाली स्लाइडों का नया प्रक्षेपी, जिसमें सामान्यतः फिल्मपट्टियों के प्रक्षेपण की व्यवस्था भी रहती है, जादुई लालटेन की अपेक्षा सस्ता होता है।

स्लाइडों के प्राप्ति स्रोत

उत्तम कोटि की बहुरंगी तथा सफ़ेद और काले रंग की स्लाइडें अब व्यवसायिक स्रोतों से अल्प मूल्य पर उपलब्ध हैं। नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय शिक्षा-अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग से भी ऐसी स्लाइडें प्राप्त की जा सकती हैं।



दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान, नई दिल्ली में २''×२'' आकार वाली स्लाइडों के एक प्रक्षेपी का उपयोग किया जा रहा है।
(संस्थान के सौजन्य से)

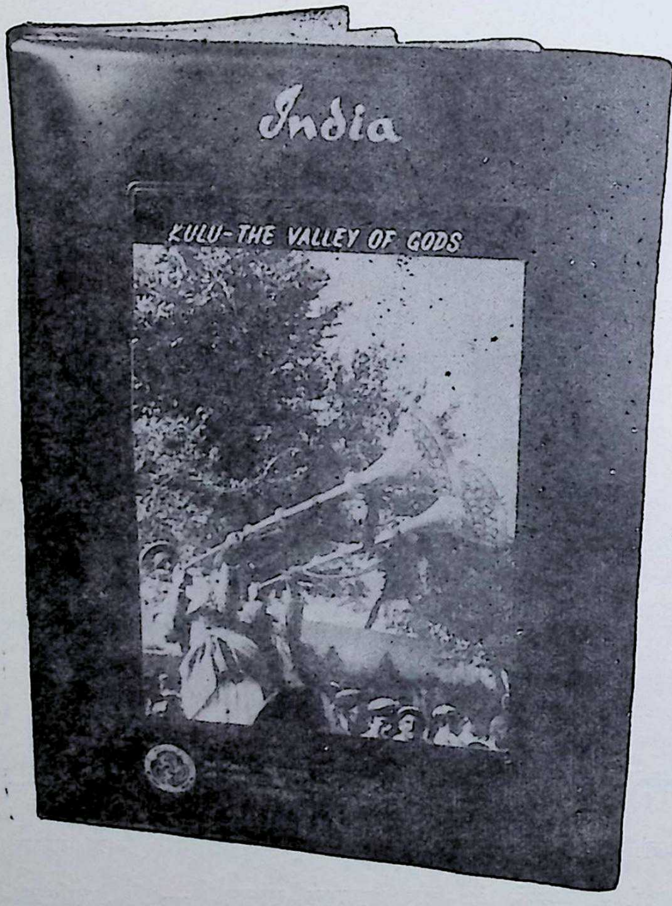
स्लाइडों के तैयार

अध्यापकों और शिक्षार्थियों द्वारा आसानी से और कमखर्च में स्लाइडें हाथ से और फ़ोटोग्राफ़ीय पद्धति से तैयार की जा सकती हैं।

हस्तनिर्मित स्लाइडें—ये स्लाइडें २ इंच × २ इंच और $३\frac{१}{४}$ इंच × ४ इंच—के आकार में तैयार की जा सकती हैं ; छोटी स्लाइडों की अपेक्षा बड़ी स्लाइडों में चित्र बनाना आसान होता है। इन स्लाइडों को बनाने के लिए आवश्यक सामान है—काँच, प्लास्टिक, सेलोफ़ेन, बाँधने का फ़ीता (जिसे काला फ़ीता भी कहते हैं), रंगीन ड्राइंग पेंसिल या क्रेऑन, स्याही, कागज़ और रंग आदि।

काँच या प्लास्टिक की स्लाइड मोमपेंसिल द्वारा काँच या प्लास्टिक पर चित्र बनाकर या लिखकर तैयार की जाती हैं। उपयोग करने के पहले, काँच या प्लास्टिक को भलीभाँति धोकर साफ़ कर लेना

चाहिए और सुखा लेना चाहिए। यदि स्लाइड को भविष्य के लिए सुरक्षित रखना हो, तो उसे काँच के दूसरे टुकड़े से ढक दिया जाता है और दोनों टुकड़ों को फ़ीते से चिपका देता है। पानी में घुलनेवाले रंगों या इण्डिया इंक का उपयोग करना हो तो आधा चम्मच सूखा सरेस एक औंस गरम पानी में घोलकर काँच या प्लास्टिक की सतह पर लेपकर देना चाहिए। चित्र बनाने से पहले इस लेप को बिल्कुल सूख जाने दिया जाए। काँच या प्लास्टिक की छायाचित्र वाली स्लाइडें शिशु-शालाओं के लिए बहुत उपयोगी और मनोरंजक होती हैं। इन्हें तैयार करने के लिए या तो इच्छित वस्तु का रूपाकार काटकर काँच या प्लास्टिक



महत्त्व की दृष्टि से रंगीन स्लाइडों की लोकप्रियता केवल १६ मि० मी० फिल्मों से कम है। कुलू घाटी के सम्बन्ध में शै० अ० प्र० रा० परिषद्, नई दिल्ली के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग द्वारा तैयार की गई इस स्लाइड-पुस्तिका में बारह रंगीन स्लाइडें हैं। प्रत्येक स्लाइड पर विवरणात्मक टिप्पणी दी गई है। आशा है कि यह विभाग भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं पर ऐसी ही अनेक स्लाइड पुस्तिकाएँ तैयार करेगा।

के दो टुकड़ों के बीच रखना होता है या जिस काग़ज़ से वह रूपाकार काटा गया हो उसी काग़ज़ को इन टुकड़ों के बीच रख देना ही काफ़ी होता है।

सेलोफ़ेन पर लिखकर या टंकण करके सेलोफ़ेन स्लाइडें तैयार की जा सकती हैं। टंकित स्लाइडें तैयार करने के लिए कार्बन काग़ज़ को मोड़कर दोहरी परत बनाएँ और जिस ओर कार्बन लगा हो उसी ओर की परतों के बीच सेलोफ़ेन को रखें। सेलोफ़ेन पर जो कुछ लिखना हो उसे बिना रिबन लगाए टंकित करें। टंकण कार्बन के माध्यम से होगा। प्रक्षेपण के लिए सेलोफ़ेन स्लाइडें काँच की दो स्लाइडों के बीच रख दी जाती हैं और फ़ीते से चिपका दी जाती हैं।

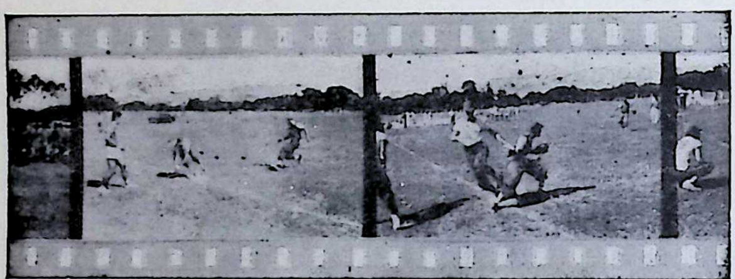
फ़ोटोचित्र-स्लाइडें—फ़ोटोचित्र-स्लाइड फिल्म पर 'पॉज़िटिव' छाप होती है। और सामान्य फिल्म निगेटिव से भिन्न होती है। यदि उपयुक्त उपकरण और अँधेरा कमरा हो तो कोई भी इन स्लाइडों को तैयार कर सकता है। यदि ३५ मि० मी० फिल्म पर फ़ोटोचित्र लिए गए हों तो आसानी से २इंच × २इंच आकार की स्लाइडें बनाई जा सकती हैं। यदि फिल्म काले और सफ़ेद रंगों में हो, तो उसका 'पॉज़िटिव' अक्स फिल्म पर ही लेना होगा। सर्वोत्तम 'प्रिन्ट्स' २इंच × २इंच आकार के बने-बनाए चित्रफलकों पर जमा दिए जाते हैं। ये चित्रफलक फ़ोटोचित्र की दूकानों में मिलते हैं। यदि रंगीन फिल्म का उपयोग किया जाय तो वह उसी तरह स्लाइड पर आ जाती है जिस तरह चित्रफलक पर जमाई हुई, प्रक्षेपण के लिए तैयार, स्फुट स्लाइडें।

फिल्मपट्टियाँ

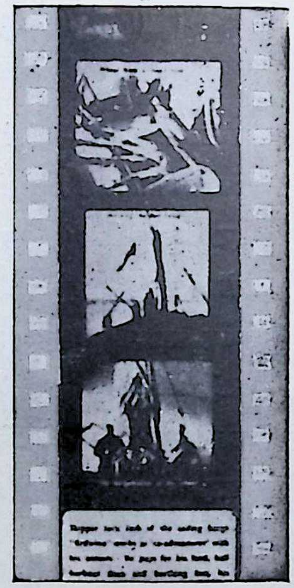
फिल्मपट्टी ३५ मि० मी० की एक अज्वलनशील अभंग पट्टी होती है। इसमें से व्यवस्थित अलग-अलग फ़्रेम या चित्र क्रम से रहते हैं और व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ प्रायः साथ ही रहती हैं। फिल्मपट्टी में फ़्रेमों की संख्या सौ तक हो सकती है। यह संख्या प्रायः साठ रहती है। चित्र एकहरे या दोहरे फ़्रेम सहित हो सकते हैं। फ़्रेम एकहरा होने पर चित्र का आकार लगभग $\frac{३}{४}$ इंच × १इंच होता है; दोहरा फ़्रेम होने पर १इंच × १ $\frac{१}{२}$ इंच होता है। सामान्यतः एकहरे फ़्रेम का ही उपयोग किया जाता है और प्रक्षेपी में उसका संचलन ऊर्ध्वाधर (वर्टिकल) होता है। दोहरे फ़्रेम वाले चित्र

प्रायः क्षैतिज आयाम (हॉरीजान्टल) में छापे जाते हैं और प्रक्षेपी में इनकी फिल्मपट्टी का संचलन क्षैतिज होता है। कुछ प्रक्षेपी फिरकी सिरे वाले होते हैं ; उनमें ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज दोनों ही रूपों में चित्र दिखाए जा सकते हैं।

फिल्मपट्टी प्रक्षेपी का आविष्कार सन् १९२० के लगभग हुआ था। उसका प्रचलन और लोकप्रियता तेज़ी से बढ़ी है। इसका प्रचलन पिछले विश्वयुद्ध के दौरान विशेषरूप से तब हुआ जब सैनिक प्रशिक्षण केन्द्रों द्वारा इसका व्यापक उपयोग किया गया।



दोहरे फ्रेम वाली एक फिल्मपट्टी। (यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विस, कलकत्ता के सौजन्य से)



एकहरे फ्रेम वाली एक फिल्मपट्टी। (यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विस, कलकत्ता के सौजन्य से)

फिल्मपट्टी प्रक्षेपी का चुनाव

फिल्मपट्टी प्रक्षेपी खरीदते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना उचित होगा—

(१) प्रक्षेपी की लेंस-व्यवस्था ठीक है या नहीं?

(२) प्रक्षेपी एकहरे और दोहरे फ्रेम वाली-दोनों प्रकार की फिल्मपट्टियों के प्रदर्शन में सक्षम है?

(३) २इंच × २इंच आकार की स्लाइडों के उपयोग की व्यवस्था प्रक्षेपी में है अथवा नहीं?

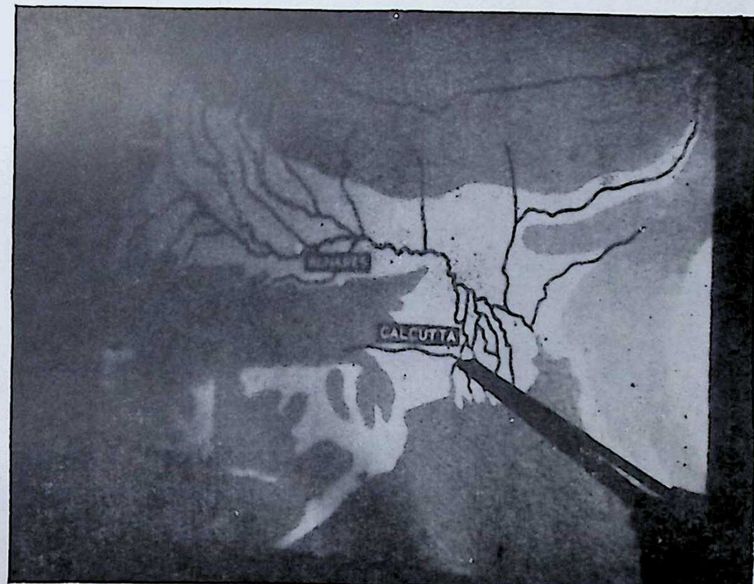
(४) उसकी बत्ती की ताक़त क्या है? (बत्ती ३०० वाट से कम की न होनी चाहिए)

(५) उसमें संवाती पंखा है या नहीं ? (पंखा स्लाइडों को आवश्यकता से अधिक गरम नहीं होने देता।)

(६) प्रक्षेपी मज़बूत है या नहीं ?

(७) उसमें अवनमन (टिल्टिंग) की व्यवस्था है या नहीं ?

(८) सफ़ाई करने और तेल देने के लिए प्रक्षेपी को आसानी से खोला जा सकता है या नहीं ?

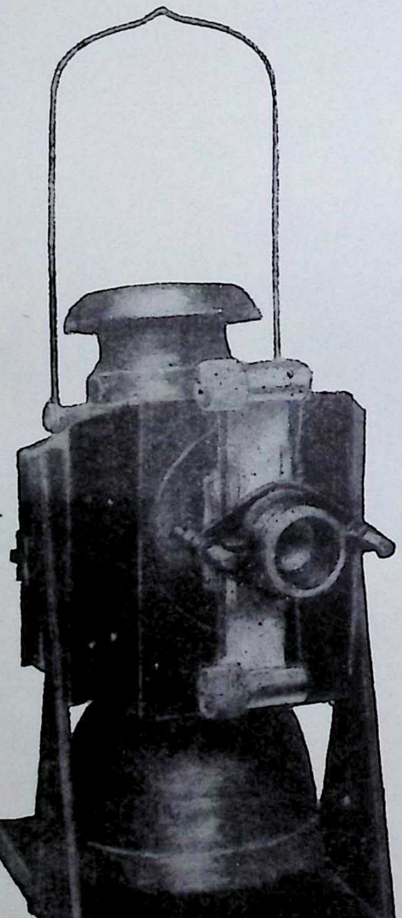


"दि गैंजेज़ बेसिन" (गंगा की घाटी) शीर्षक 'कामन ग्राउण्ड' फिल्मपट्टी का एक फ्रेम।

फिल्मपट्टियों से लाभ

फिल्मपट्टी सर्वोत्तम शिक्षण-साधनों में से एक है। भारत में प्रत्येक शिक्षण-संस्था द्वारा फिल्मपट्टियों का उपयोग किया जाना चाहिए। फिल्म प्रक्षेपी की अपेक्षा फिल्मपट्टी प्रक्षेपी सस्ता

होता है—अच्छे प्रक्षेपी का मूल्य लगभग ३०० रुपए है। ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ बिजली उपलब्ध नहीं है, मिट्टी के तेल के लैम्पों वाले बढ़िया फिल्मपट्टी प्रक्षेपियों का उपयोग किया जाता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से फिल्मपट्टी प्रक्षेपी पुराने जादुई लालटेन से अथवा नए २इंच × २इंच स्लाइड प्रक्षेपी से बहुत भिन्न नहीं है; तथापि उसकी प्रमुख विशेषता और प्रमुख लाभ यह है कि एक-एक स्लाइड को हाथ से रखने या निकालने के बजाय बहुसंख्यक चित्रोंवाली एक फिल्म का उपयोग यांत्रिक ढंग से किया जा सकता है। इसका उपयोग बहुत आसान है। जादुई लालटेन की अपेक्षा यह प्रक्षेपी बहुत हलका भी है। इसमें प्रयुक्त फिल्मपट्टी, जादुई लालटेन की भारी-भरकम स्लाइडों के विपरीत, हलकी और सुसंहत (कॉम्पैक्ट) होती है। इस फिल्मपट्टी की टूट-फूट का खतरा नहीं होता। फिल्मपट्टियाँ सस्ती होती हैं। स्कूलें तथा सामाजिक शिक्षा-केन्द्र



उपयोग के लिए तैयार केरोस्कोप (मिट्टी के तेल के लालटेन वाला फिल्मपट्टी प्रेक्षेपी)

ऐसी फिल्मपट्टियों के पुस्तकालय आसानी से बना सकते हैं जिनका वे नियमित उपयोग करना चाहें। पुरानी पड़ते ही इन पट्टियों को निकाला जा सकता है। कीमती फिल्मों के सम्बन्ध में यह संभव नहीं है। जादुई लालटेन या स्लाइड प्रक्षेपी की भाँति फिल्मपट्टी प्रक्षेपी के लिए भी कमरे में बिल्कुल अँधेरा करना ज़रूरी नहीं होता; और, यदि आवश्यक उपकरण उपलब्ध हो तो, स्लाइडों की भाँति फिल्मपट्टियाँ भी बिना किसी विशेष कठिनाई के तैयार की जा सकती हैं।

फिल्मपट्टी का उपयोग

फिल्मपट्टी के उपयोग के संबंध में लगभग उन्हीं सुझावों का ध्यान रखना पड़ता है जो दृश्य-श्रव्य साधनों के सम्बन्ध में पहले दिए जा चुके हैं। फिरभी, नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिए।

किसी फिल्मपट्टी का उपयोग के लिए पहली ज्ञातव्य बात है उसकी विषयवस्तु। फिल्मपट्टी को पहले से ही देखकर और उसके साथ की टिप्पणियों को पढ़कर यह जाना जा सकता है। अध्ययन के प्रकरण के सन्दर्भ में उपयोग में लाई जानेवाली फिल्मपट्टी का एक निश्चित मूल्य और महत्त्व होना चाहिए। यदि फिल्मपट्टी अध्ययनगत विषय की किन्हीं महत्त्वहीन बातों का स्पर्श मात्र करनेवाली हो तो उसका उपयोग व्यर्थ होगा।

विद्यार्थियों को फिल्मपट्टी से भलीभाँति परिचित कराना चाहिए। अध्यापक को विद्यार्थियों को समझाना चाहिए कि फिल्मपट्टी का विषय क्या है; अध्ययन के प्रकरण से उसका सम्बन्ध क्या है, उसके प्रदर्शन का क्या प्रयोजन है, और फिल्मपट्टी में किन चीज़ों को विशेषरूप से देखना चाहिए। फिल्मपट्टी सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों को श्यामपट्ट पर लिख देना अच्छा होता है।

फिल्मपट्टी का प्रदर्शन ढंग से किया जाना चाहिए। फिल्मपट्टी प्रक्षेपी बहुत सरल यंत्र होता है। आसानी और धीरज के साथ उसका संचालन करने में समर्थ होना चाहिए। कक्षा का काम शुरू करने से पहले ही प्रक्षेपी की देख-भाल कर लेनी चाहिए और फिल्मपट्टी को व्यवस्थित कर लेना चाहिए। पर्दे पर चित्र स्पष्ट प्रदर्शित करने के लिए कमरे में पर्याप्त अँधेरा होना चाहिए। यह बात रंगीन फिलमपट्टियों के सम्बन्ध में विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उनके लिए काले और सफ़ेद रंग की फिल्मपट्टियों की अपेक्षा अधिक अँधेरा चाहिए। हवा के आवागमन की व्यवस्था के कारण

यदि कमरे में पर्याप्त अन्धकार न किया जा सके तो चित्र को छोटा करके दिखाना चाहिए ताकि वह स्पष्ट रहे। यदि कमरे में अन्धकार बिल्कुल ही न हो सके, जैसा कभी-कभी होता है, तो बिजली या लैम्प की प्रकाश-शक्ति बढ़ा दें, चित्र का आकार छोटा कर दें और पर्दे के चारों ओर



इस चित्र से स्पष्ट है कि फिल्मपट्टी बच्चों में कितनी प्रबल अभिरुचि उत्पन्न कर सकती है।
(सुरेन्द्रनाथ इन्स्टीट्यूशन, कलकत्ता के माध्यमिक विभाग में एक फिल्मपट्टी पाठ)

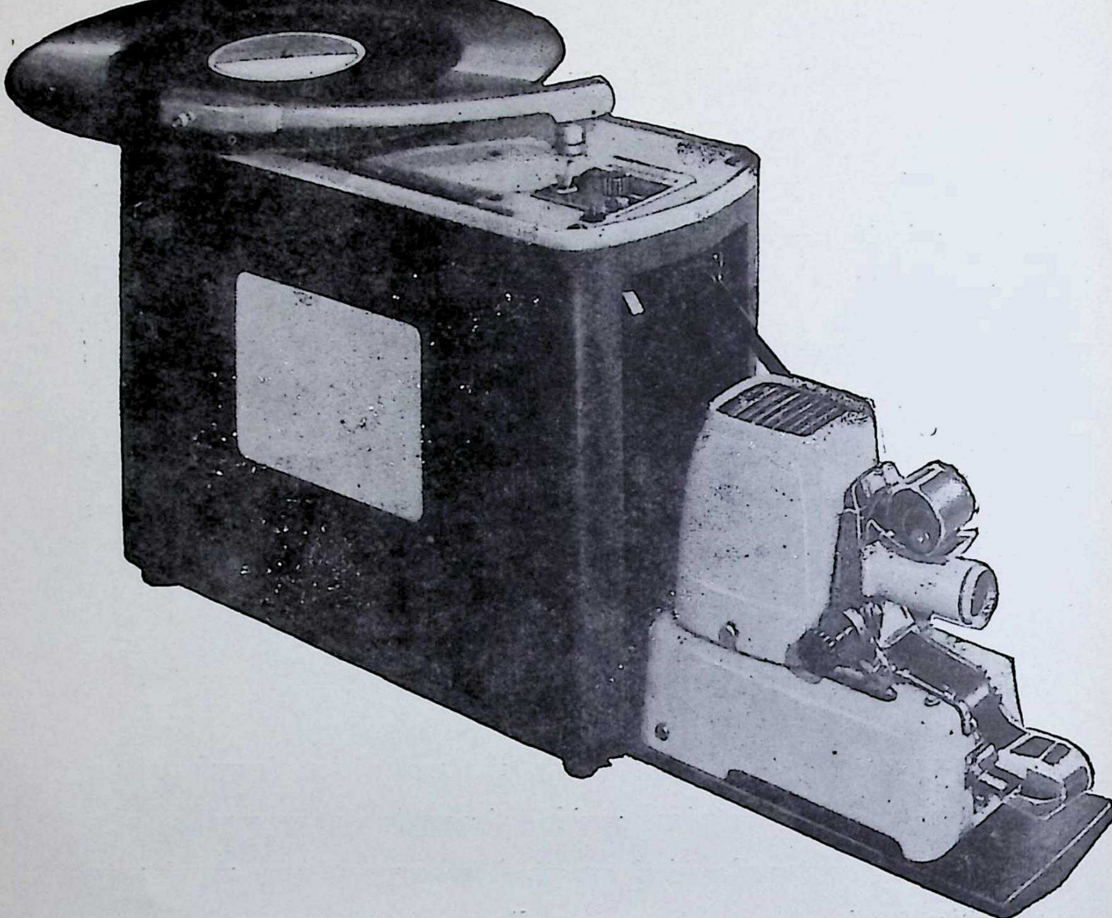
छाया-पेटी का उपयोग करें। काम चलाऊ छाया-पेटी गत्ते की बनाई जा सकती है। दर्पणों की सहायता से पृष्ठ प्रक्षेपण की अपेक्षा ये युक्तियाँ अधिक कारगर होती हैं। उपलब्ध हो तो उभारदार पर्दे का उपयोग करें। परन्तु यह ध्यान रखना होगा कि कमरे के दोनों पार्श्वों में बैठे दर्शकों के लिए उभारदार पर्दा ठीक नहीं होता। यदि दीवाल का रंग हलका हो तो वह पर्दे का काम भलीभाँति दे सकती है। यदि किसी मानचित्र का पृष्ठभाग सफ़ेद रंग का हो तो उस पर छायाचित्र बहुत अच्छा आएगा। यदि फिल्मपट्टी में शीर्षक दिए गए हों तो उन्हें पढ़ने के लिए बच्चों को पर्याप्त समय देना चाहिए। प्रत्येक चित्र को पर्दे पर उतने समय तक रोकना चाहिए जितना उस चित्र को पूरी तरह देखने-समझने के लिए पर्याप्त हो। कुछ चित्र भी होते हैं कि जिन पर केवल नज़र डालना काफ़ी होता है। फिल्मपट्टी के प्रदर्शन के समय प्रश्नोत्तर और विवेचन उसे समझने में सहायक होते हैं। सवाक्-पट्टियों के प्रदर्शन में यह सब सम्भव नहीं होता।

विषय के अनुकूल फिल्मपट्टी का अनुवर्ती कार्य कई तरह का हो सकता है। अनुवर्ती कार्यक्रम में प्रायः सामान्य विचार विमर्श और परीक्षाएँ—मौखिक या लिखित—होती हैं। किसी विशेष बात पर ज़ोर देने के लिए फिल्मपट्टी दुबारा दिखाई जा सकती है। कभी-कभी केवल एक ही फ्रेम का प्रक्षेपण किया जाता है और उसे ही मौखिक या लिखित लेख का आधार बनाया जाता है। विशेषकर छोटी कक्षाओं में, कुछ विषयों में किए जानेवाले रचनात्मक कार्य, जैसे रेखाचित्र या तूलिका-चित्र बनाना—फिल्मपट्टी पर आधारित होते हैं। यदि फिल्मपट्टी किसी तकनीकी विषय से सम्बन्धित हो और उसमें शिल्पों का प्रदर्शन किया गया हो तो अनुवर्ती कार्यक्रम में प्रदर्शित तकनीकों का वास्तविक अभ्यास कराना चाहिए। कभी-कभी किसी विषय की फिल्मपट्टी स्कूली यात्रा या क्षेत्रिक पर्यटन में अभिरुचि उत्पन्न कर सकती है। हो सकता है कि नया सीखने की इच्छा अधिक समय तक न टिक, इसलिए यात्रा या पर्यटन की व्यवस्था यथासम्भव शीघ्र की जानी चाहिए।

फिल्मपट्टियों के दो प्रकार

फिल्मपट्टी दो प्रकार की होती हैं—मूक और सवाक्। जिस फिल्मपट्टी के साथ तुल्यकालिक (सिन्कोनाइज़्ड) ध्वनि-रेकार्ड भी होते हैं उसे सवाक् फिल्मपट्टी कहा जाता है। पर्दे पर प्रदर्शित चित्र के परिवर्तन का संकेत घंटी की मन्द ध्वनि से दिया जाता है। रेकार्ड की गई आवाज़ और संगीत निस्सन्देह और अधिक रोचकता उत्पन्न करेंगे। मशीन हर समय चालक के पूर्ण नियंत्रण में रहती है, इसलिए, यदि ज़रूरत हो तो, किसी चित्र विशेष को वांछित समय तक पर्दे पर रोका जा सकता है। तब तक के लिए रेकार्ड को बन्द कर देना चाहिए। रेकार्ड उस समय भी बन्द किया जा सकता है जब अध्यापक यह चाहता हो कि उसके विद्यार्थी किसी व्याख्या की सहायता के बिना स्वयं आवश्यक छानबीन करें।

सवाक् फिल्मपट्टी का प्रचलन अमरीका में लगभग तीस वर्ष पहले हुआ था। तब से बहुत बड़ी संख्या में शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा इसका उपयोग किया जा रहा है। अब एक नए प्रकार का प्रक्षेपी उपलब्ध हो गया है जो अपने आप फ्रेमों को पर्दे पर प्रक्षेपण करता है।

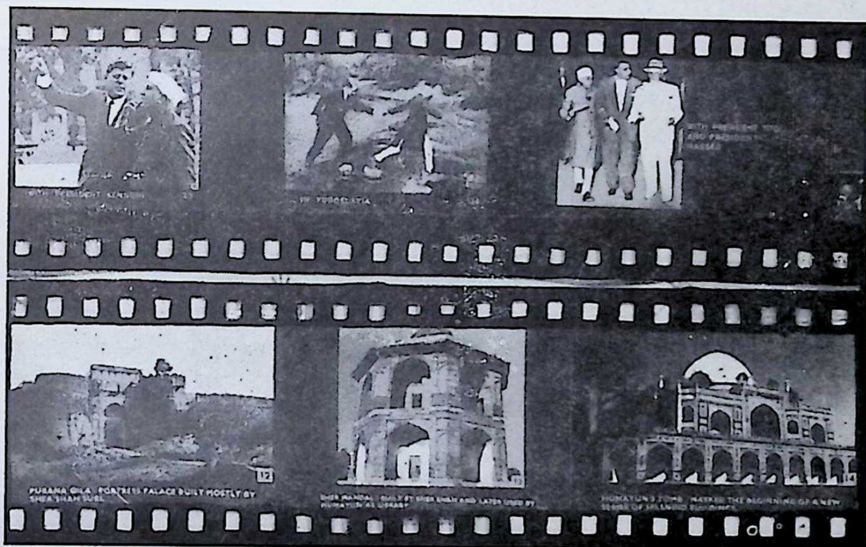


भारत की जो शिक्षा-संस्थाएँ फिल्म प्रक्षेपी ख़रीद सकती हों उन्हें फिल्मपट्टी प्रक्षेपण की इस नवीनतम मशीन को ख़रीदने से चूकना न चाहिए। (इलेक्ट्रो इंजिनियरिंग मैन्युफेक्चरिंग कं०, डेट्राएट यू० एस० ए० के सौजन्य से)

फिल्मपट्टियों के प्राप्ति स्रोत

हमारे देश में फिल्मपट्टियाँ विभिन्न संस्थाओं से उधार निःशुल्क प्राप्त की जा सकती हैं, जैसे नई दिल्ली स्थित शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् से ; ब्रिटिश काउंसिल, नई दिल्ली से और कम्यूनिकेशन्स मीडिया सेन्टर, यू० एस० ए० आई० डी० नई दिल्ली से। विभिन्न व्यवसायिक फ़र्मों से भी फिल्मपट्टियाँ प्राप्त हो सकती हैं। यूनैस्को की स्लाइडों के एजेंट, नेशनल एजुकेशन

एण्ड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स लिमिटेड, बम्बई, के पास फिल्मपट्टियों का संभवतः सबसे बड़ा भण्डार है। व्यवसायिक फिल्मपट्टियाँ सस्ती होती हैं, उनका मूल्य प्रायः दस या बारह रुपए मात्र होता है। इन फिल्मपट्टियों को इस सामान्य शर्त पर मँगाया जा सकता है कि यदि इन्हें पूर्व-परिक्षण के बाद सन्तोषजनक न पाया गया तो विना किसी दायित्व के वापस किया जा सकेगा। व्यवसायिक तथा अव्यवसायिक, दोनों प्रकार की फिल्मपट्टियों के विषय व्यापक होते हैं और शिक्षा के सभी स्तरों—पूर्वप्राथमिक प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयीन पर उनका उपयोग किया जा सकता है।



स्वर्गीय प्रधान मंत्री नेहरू तथा दिल्ली के ऐतिहासिक स्मारकों से संबधित ये फिल्मपट्टियाँ शै० अ० प्र० रा० परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग द्वारा तैयार की गई हैं। (दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग, नई दिल्ली से सौजन्य से)

उधार या खरीद पर मिलनेवाली ये फिल्मपट्टियाँ सचमुच बहुत अच्छी हैं तथापि उनसे शिक्षार्थियों की सामान्य आवश्यकताओं की ही पूर्ति होती है इसीलिए कुछ अध्यापक विशिष्ट शैक्षणिक स्थितियों में उपयोग के लिए अपनी फिल्मपट्टियाँ स्वयं तैयार करते हैं। कोई भी अध्यापक, जिसके पास एक सामान्य कैमरा और कौंध

उपकरण (फ्लैश एक्विपमेंट) हो, फिल्मपट्टियों के लिए फ़ोटोचित्र ले सकता है। इस काम के लिए सर्वाधिक सुविधाजनक वह कैमरा होता है जिसमें ३५ मि० मी० फिल्म का उपयोग किया जाता हो।

फिल्मपट्टियाँ बनाने के लिए जिन फ़ोटोचित्रों का उपयोग किया जाना हो, उन्हें सामान्यतः ८ इंच × १० इंच के स्फीत आकार में होना चाहिए। यह आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक चित्र में केवल एक सूचना दी गई हो। ठीक पूर्वापर क्रम में व्यवस्थित स्फीत चित्रों का ३५ मि० मी० फिल्म पर दुबारा फ़ोटो लिया जा सकता है।

१९ अपारचित्रदर्शी और तीव्रगामी विन्यासदर्शी द्वारा प्रक्षेपण

अपारचित्रदर्शी

अपारचित्रदर्शी, जिसे अमरीका में अपारदर्शी प्रक्षेपी (ओपेक प्रोजेक्टर) कहा जाता है, ऐसा यंत्र है जिससे चित्र, फ़ोटोचित्र, मानचित्र, रेखाचित्र, सिक्के, टिकट और पत्ते जैसी अपारदर्शी किसी भी वस्तु का प्रक्षेपण किया जाता है। ६इंच × ६इंच आकार वाले एक द्वार से चपटी वस्तु को प्रक्षेपी के अन्दर रखा जा सकता है। तेज़ रोशनी और ४५° की स्थिति में रखे दर्पण की सहायता से प्रतिबिम्ब पर्दे पर परावर्तित किया जाता है।

यह यंत्र शैक्षणिक स्थितियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। इसलिए, हमारे देश की उन सभी शैक्षिक-संस्थाओं द्वारा इसका उपयोग किया जाना चाहिए जहाँ बिजली हों। अपारचित्रदर्शी का उपयोग शिक्षा के पूर्वप्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयीन स्तरों पर किया जा सकता है।

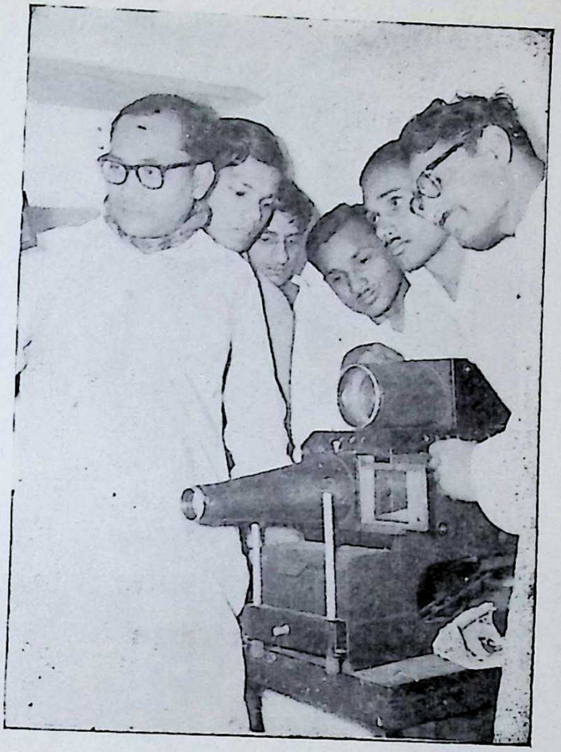


अध्यापिका अपारचित्रदर्शी की सहायता से विद्यार्थियों को कुछ चित्र दिखा रही है।
(पी० वी० टी० डी० कालेज आफ़ एजुकेशन फ़ार वीमेन, बम्बई के सौजन्य से)

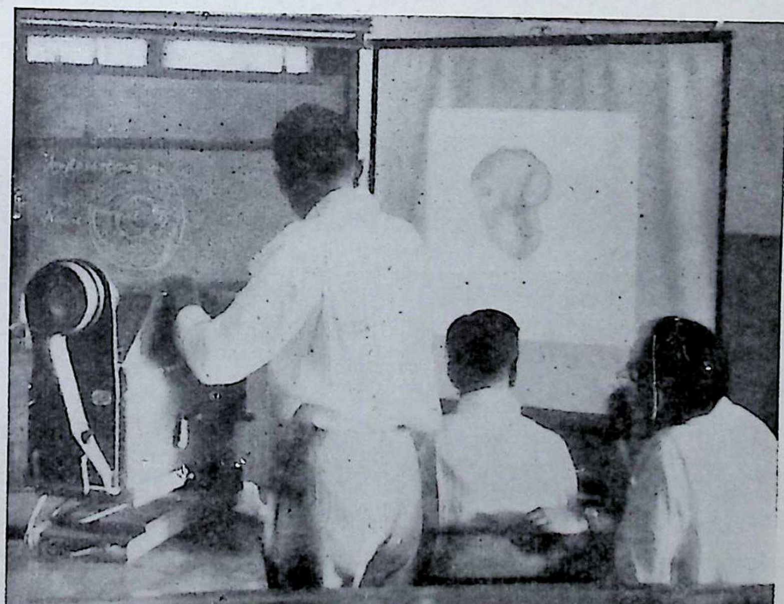
इस प्रक्षेपी के कुछ विशेष लाभ हैं:

(१) शिक्षण की प्रायः सभी स्थितियों में इसका उपयोग किया जा सकता है क्योंकि इसके लिए किसी तैयार स्लाइड या फिल्म की आवश्यकता नहीं होती। यदि यह उपकरण मिल जाए, तो इसके द्वारा किसी भी मुद्रित, लिखित या चित्रित वस्तु का प्रक्षेपण किया जा सकता है। त्रिविभितीय पदार्थ यदि बहुत मोटे न हों तो इससे भलीभाँति प्रक्षेपित किए जा सकते हैं। प्रो० काइन्डर की रिपोर्ट है कि अमरीका के विस्कान्सिन विश्वविद्यालय में कृषि पाठ्यक्रम के दौरान एक निदर्शक ने अंडों की ज़र्दी के रंग, आकार और उसकी श्यानता पर चर्चा करने के लिए एक अपारदर्शी प्रक्षेपक में गहरी तश्तरियों में अंडों के नमूने (ज़र्द और सफ़ेद अंश) रख दिए थे।

(२) यद्यपि अपारचित्रदर्शी क़ीमती होता है, फिरभी उपयोग में कम खर्चीला पड़ता है। इससे जिन चीज़ों का प्रक्षेपण किया जाता है उन पर खर्च नहीं करना पड़ता।



इन सामाजिक शिक्षा आयोजकों को एपि-डाइस्कोप (पारचित्रदर्शी) के संचालन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। (सामाजिक शिक्षा आयोजक प्रशिक्षण केन्द्र, बेलूर मठ के सौजन्य से)



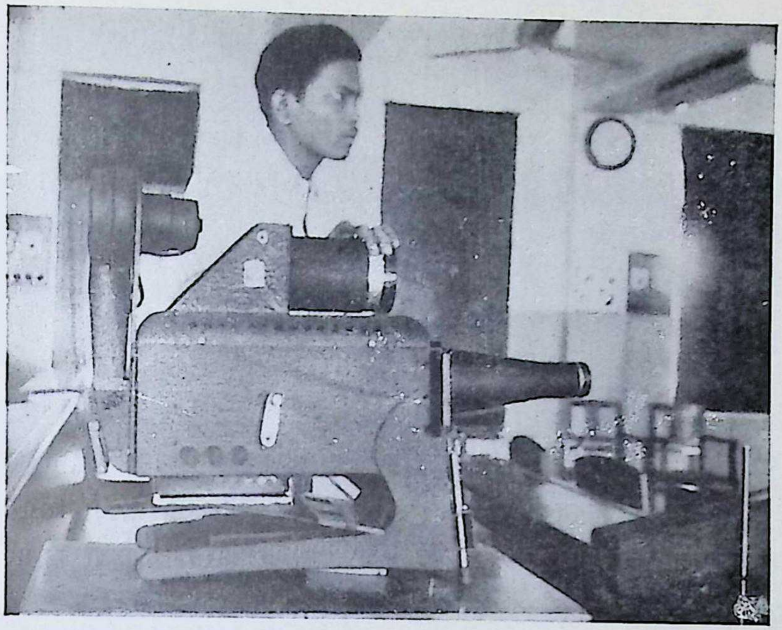
आयुर्विज्ञान, इंजिनियरी और कृषि की शिक्षा देनेवाले कालेजों में पारचित्रदर्शी एक बहुमूल्य शिक्षण-साधन हैं। इन्स्टीट्यूट आफ़ मेडिकल एजुकेशन, एस्० एस्० कर्नानी स्मारक अस्पताल, कलकत्ता में इसका उपयोग नियमित रूप से किया जाता है।

(३) छोटे-छोटे फ़ोटोचित्रों या चित्रों को एक-एक विद्यार्थी को दिखाने के बदले उन्हें पर्दे पर प्रक्षेपित किया जा सकता है ताकि कक्षा के सारे विद्यार्थी उन्हें एक साथ देख लें।

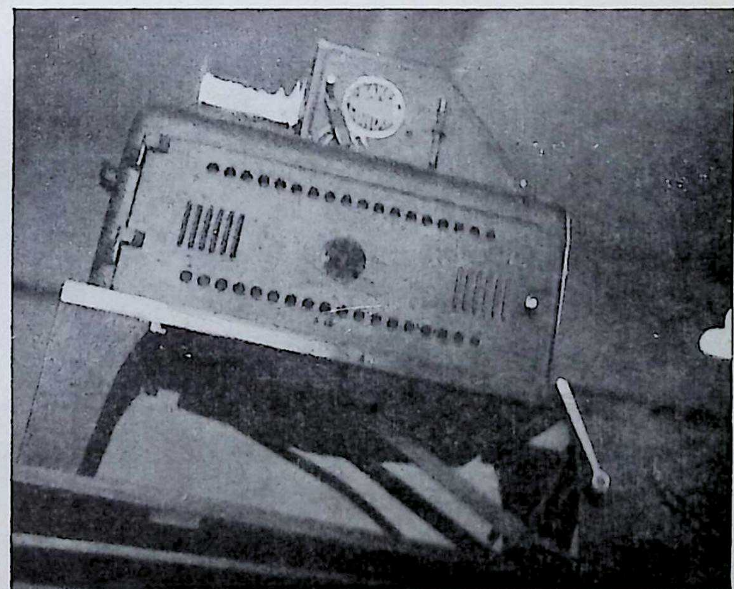
(४) श्यामपट्ट पर अथवा काग़ज़ के बड़े तख्ते पर मानचित्रों, आरेखों आदि के अनुरेखण तैयार करने के लिए भी इसी प्रक्षेपी का उपयोग किया जा सकता है ।

शिशुशालाओं और जूनियर स्कूलों में अपारचित्रदर्शी बहुत सहायक होता है । प्राइमरी स्कूल में किसी पुस्तक का कोई पृष्ठ पर्दे पर आवर्धित करके कक्षा में ही दिखाया जा सकता है और सभी विद्यार्थी एकसाथ उसे पढ़ सकते हैं। जब बच्चे लिखना सीख रहे हों तब उनकी कुछ सामान्य भूलों और उनके लेखन के नमूनों को पर्दे पर प्रक्षेपित करके, दिखाया और समझाया जा सकता है। अच्छी लिखाई या सुलेख के उदाहरण भी प्रक्षेपित करने पर बहुत सहायक होते हैं। अब हमारे देश में ऐसी पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं जिनमें पशु-पक्षियों, फूलों, मछलियों, इमारतों और स्मारकों के अनेक चित्र रहते हैं। ये चित्र पर्दे पर आवर्धित-प्रक्षेपित करके विविध पाठों के लिए उपयोग में लाए जा सकते हैं। पुरानी पत्रिकाओं से इस प्रकार की सामग्री का संकलन अध्यापकों को करना चाहिए ताकि विद्यार्थियों को प्रोत्साहन मिले। नए शब्दों को और नई वर्तनी को सीखने में अपारचित्रदर्शी से बच्चों को अत्यधिक सहायता मिल सकती है । जूनियर स्कूलों में विज्ञान, समाज-शास्त्र और भाषाओं के सीखने में इससे बच्चों को अमूल्य सहायता मिलती है ।

शैक्षणिक दृष्टि से अत्यन्त सहायक होते हुए भी अपारचित्रदर्शी से कुछ हानियाँ या असुविधाएँ भी होती हैं। यह यंत्र भारी और बोझिल होता है, इसलिए इसे एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाने में कठिनाई होती है। इस यंत्र को किसी एक कमरे में स्थापित करके इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है। अपारचित्रदर्शी में परावर्तित प्रकाश का उपयोग किया जाता है, इसलिए उससे प्रक्षेपण के लिए पूर्णतः अँधेरा कमरा चाहिए। भारत जैसे गरम देश के लिए यह सचमुच बड़ी कठिनाई है ; किन्तु यदि कमरे में संवातन की पर्याप्त व्यवस्था हो तो, जब तक अपारचित्रदर्शी चालू रहे तब तक, थोड़े समय के लिए कमरे में पूरी तरह अँधेरा किया जा सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि अपारचित्रदर्शी के नए मॉडेलों में तेज़ बत्तियों का



पारचित्रदर्शी के जिन नए मॉडेलों में तेज़ लैम्पों का उपयोग किया जाता है उनके लिए कमरे में पूर्ण अन्धकार आवश्यक नहीं होता। (इन्स्टीट्यूट आफ़ मेडिकल एजुकेशन, एस्० एस्० कर्नानी स्मारक अस्पताल, कलकत्ता के सौजन्य से)



अपारचित्रदर्शी ८'' × ११'' आकार वाली चपटी और बड़ी चीज़ों का प्रक्षेपण भी कर सकता है।

उपयोग किया जाता है। इसलिए कमरे में पूर्ण अन्धकार आवश्यक नहीं होता। ये प्रक्षेपी हलके भी हैं क्योंकि ये कम वज़नदार धातु से बनाए जाते हैं। तरह-तरह की सामग्री के उपयोग के लिए इनमें बड़े दरवाज़े बनाए गए हैं। इनकी शीतल-प्रणाली में भी बहुत सुधार हो गया है। अधिकांश प्रक्षेपियों में ऐसी व्यवस्था भी है जिससे चित्र के मनचाहे भाग को अध्यापक प्रकाश के एक संकेतक तीर द्वारा निर्दिष्ट कर सकता है।

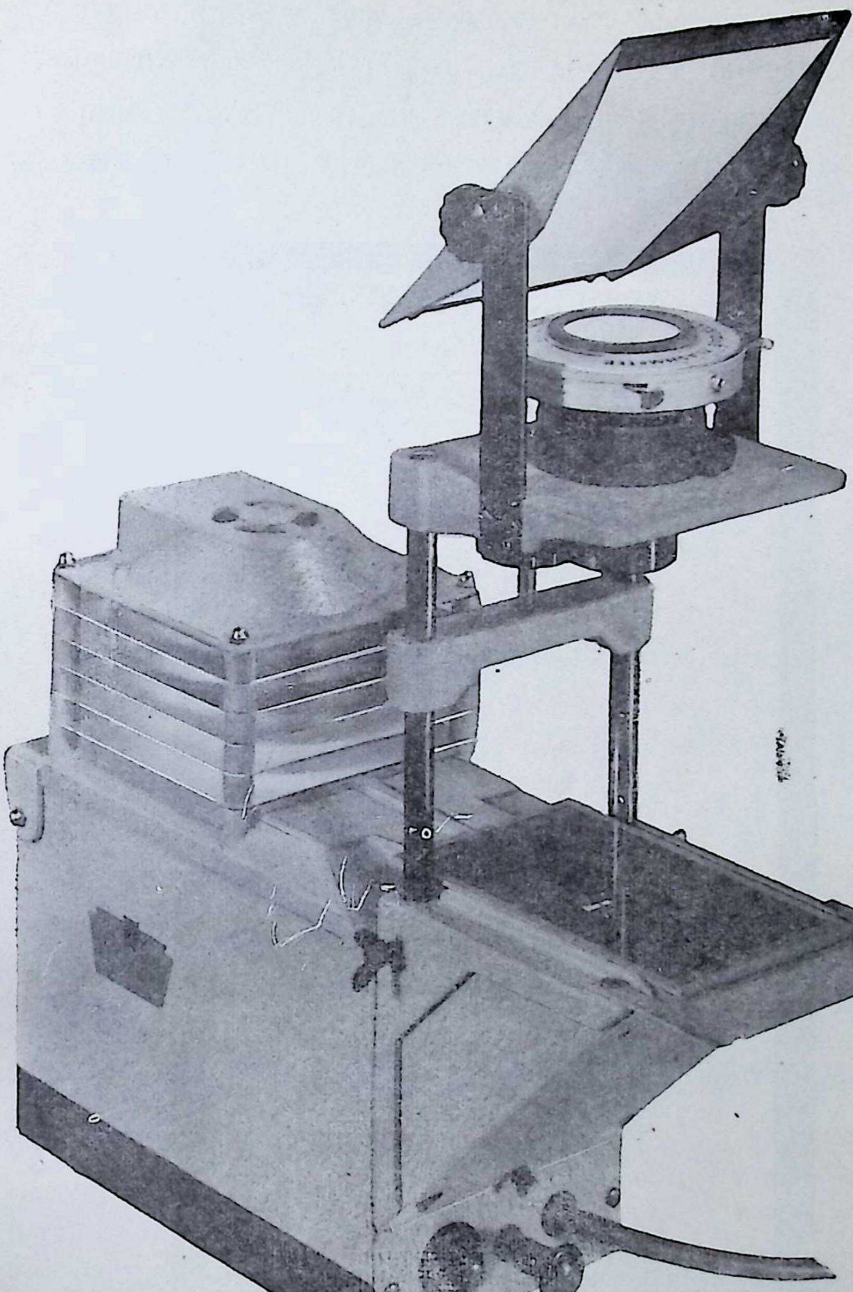
पारचित्रदर्शी

जैसा नाम से जान पड़ता है, पारचित्रदर्शी अपारचित्रदर्शी और डाएस्कोप (जादुई लालटेन) का सम्मिलित रूप ही है। यद्यपि यह भारी और बोझिल होता है फिरभी लाभदायक है क्योंकि इसके द्वारा अपारदर्शी सामग्री के साथ साथ स्लाइडों और फिल्मपट्टियों का प्रक्षेपण भी किया जा सकता है।

टेकिस्टास्कोप (तीव्रगामी विन्यासदर्शी)

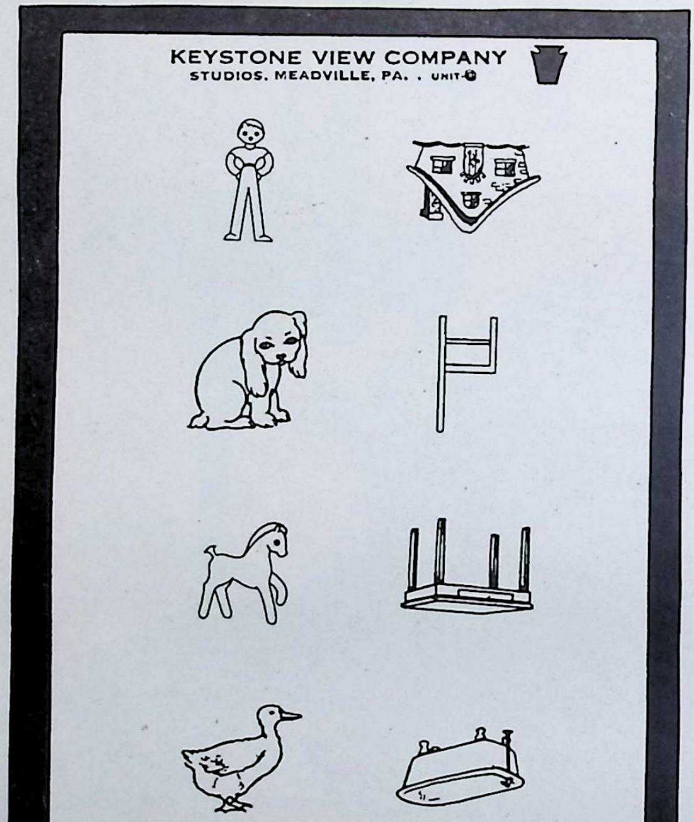
'टेकिस्टास्कोप' शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों-'टेकिस्टास' और 'स्कोपीन' के योग से बना है। इनका अर्थ क्रमशः 'शीघ्र' और 'देखना' है। प्रक्षेपी में लगे हुए कैमरा शटर (जो फ़ोटोग्राफ़िक-शटर की तुलना में कहीं अधिक टिकाऊ होता है) की सहायता से 'टेकिस्टास्कोप' शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों, अंकों और चित्रों को अनेक अन्तर्वर्ती उद्भासन-अवधियों के दौरान एक पूरे सेकण्ड से लेकर एक सेकण्ड के सौवें भाग तक उद्भासन करता है। ग्रहण-क्षमता बढ़ जाने पर फ़्लैश मीटर की सहायता से 'फ़्लैश' की गति भी तदनुसार बढ़ा दी जाती है।

टेकिस्टास्कोप फ़्लैश-कार्ड का वैज्ञानिक ढंग से विकसित रूप है। दृष्टि स्थिर हो जाने पर बच्चों को इसकी सहायता से अधिकाधिक बोध होता जाता है। यदि प्रतिदिन थोड़ा सा अभ्यास कर लिया जाय तो सामान्य बालक टेकिस्टास्कोप की सहायता से अधिकाधिक शीघ्रता से पढ़ और समझ सकता है। टेकिस्टास्कोप इस कार्य के लिए अत्युत्तम साधन है। अनेक बच्चों की देखने की सुस्त आदत इस उपस्कर की सहायता से सुधर गई है। शब्द भंडार बढ़ाने और वर्तनी तथा अंकगणित सीखने के लिए भी टेकिस्टास्कोप उपयोगी है।

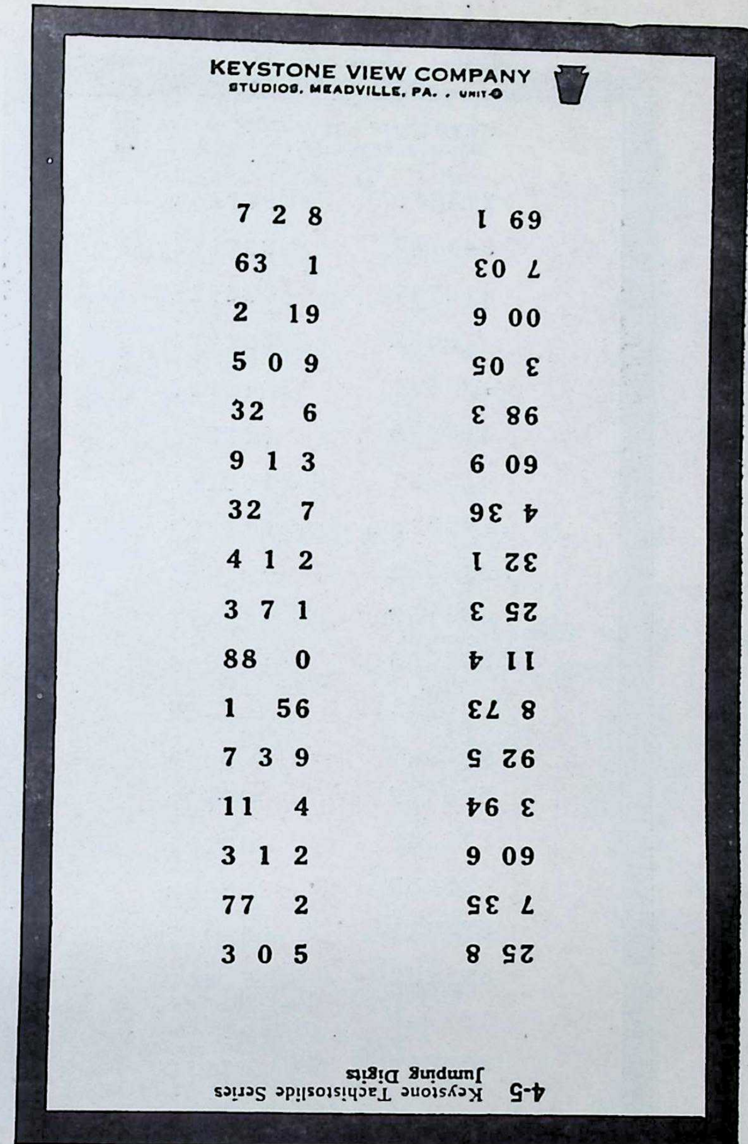


टेकिस्टास्कोप—विशेषरूप से निर्मित एक प्रक्षेपी
(कीस्टोन व्यू कं० मिडविले पा, यू० एस्० ए० के सौजन्य से)

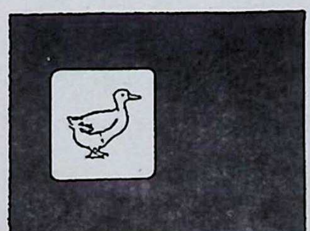
फ्लैश मीटर या टेकिस्टास्कोप-उपकरण किसी भी मानक स्लाइड प्रक्षेपी के लेन्स की नली में जोड़ा जा सकता है। फ्लैश मीटर न होने पर बत्ती जलाकर और बुझाकर अथवा किसी अपारदर्शी वस्तु से लेन्स को ढककर फ्लैश प्रक्षेपित किया जा सकता है। बच्चों की पढ़ने की गति को बढ़ाने के इस सामान्य प्रयोग से कोई हानि नहीं होती।



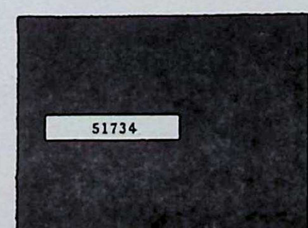
(कीस्टोन व्यू कं० मिडविले पा, यू० एस्० ए० के सौजन्य से)



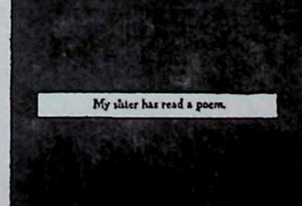
(कीस्टोन व्यू कं० मिडविले पा, यू० एस्० ए० के सौजन्य से)



Mask for Exposure of Quarter Section of Slide

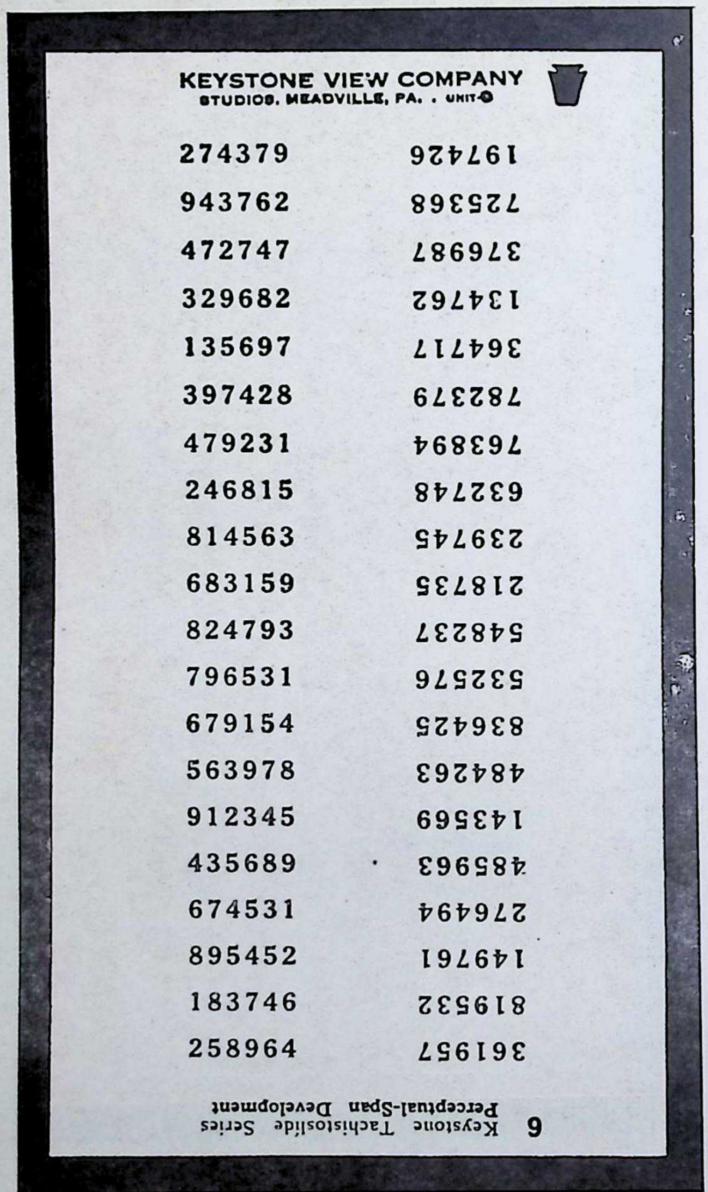


Mask for Digit, Word, or Phrase Exposure



Mask for Full-Sentence Exposure

(कीस्टोन व्यू कं० मिडविले पा, यू० एस्० ए० के सौजन्य से)



(कीस्टोन व्यू कं० मिडविले पा, यू० एस्० ए० के सौजन्य से)

संयुक्त राज्य अमरीका में अनेक प्रकार की शिक्षण परिस्थितियों पर टेकिस्टास्कोप-स्लाइडें व्यवसायिक स्रोतों से उपलब्ध हैं। ये स्लाइडें आकृतियों, अंकों, शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों के दस से चालीस बहुविध उद्भासनों के लिए सुलभ हैं।

प्रत्यक्ष-बोध की गति के प्रारंभिक विकास के लिए सुपरिचित वस्तुओं की स्लाइडें बहुत उपयोगी होती हैं। ये चौथाई आकार के 'मास्क' (आच्छादन) की सहायता से प्रक्षेपित की जाती हैं।

जैसे जैसे प्रशिक्षण बढ़ता है, अंकों, शब्दों और वाक्यांशों का उद्भासन आधे खांचे वाले 'मास्क' द्वारा किया जाता है।

प्रशिक्षण की अंतिम अवस्था में पूरे खांचे की 'मास्क' द्वारा पूरे-पूरे वाक्य उद्भासित किए जाते हैं।

जहाँ दो कालम होते हैं (और अधिकांशतः दो ही होते हैं) हम स्लाइड को चारों ओर घुमाते हैं और दाएँ कालम के सबसे नीचे की पद से पुनः आरंभ करते हैं।

टेकिस्टास्कोप स्लाइडें बनाना

व्यवसायिक स्तर पर निर्मित टेकिस्टास्कोप स्लाइडें खरीदना आवश्यक नहीं है। सामान्य स्लाइडें बनाने के बारे में जैसा पहिले बताया जा चुका है, उसी प्रकार संसाधित शीशे पर अध्यापक टेकिस्टास्कोप स्लाइडें स्वयं ही बना सकते हैं। संख्याएँ, शब्द और वाक्य सेलोफ़ेन पर टाइप किए जा सकते हैं। छोटे बच्चों के लिए स्लाइडें बनाते समय यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि उनमें पाठ्य सामग्री सरल हो। कठिन बातें बाद में धीरे धीरे ली जाएँ। हर अवस्था में बच्चों को आगे सीखने में सफलता मिलनी चाहिए।

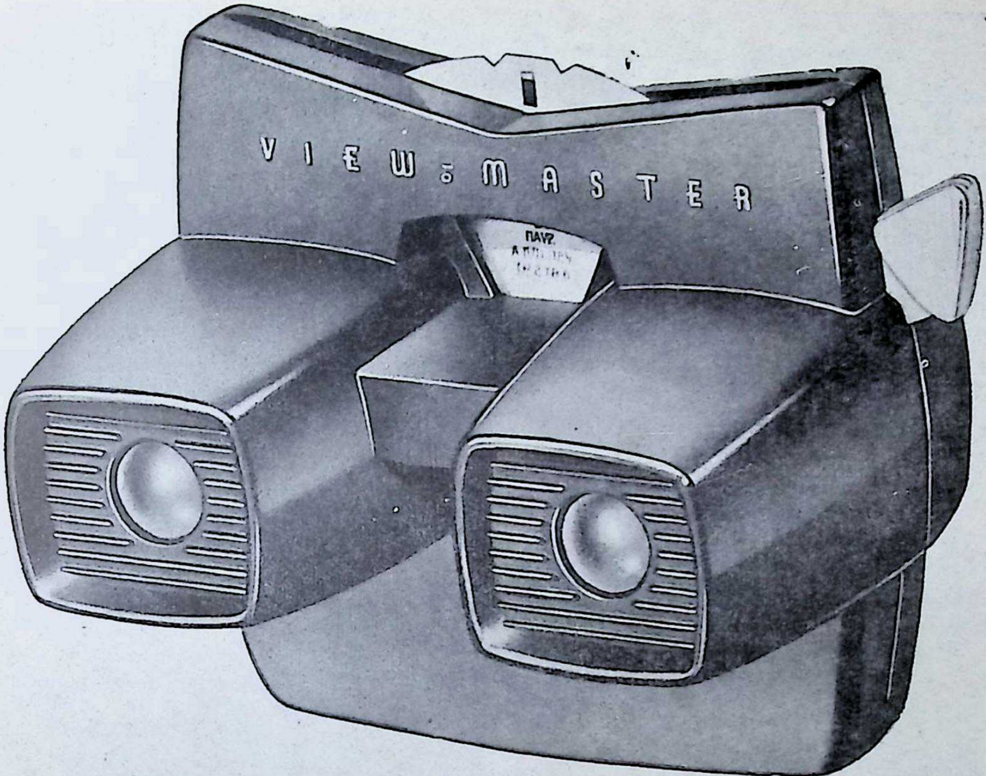
२० त्रिविमितीय विन्यासप्रक्षेपी, शिरोपरि प्रक्षेपी, छतीय प्रक्षेपी और सूक्ष्म प्रक्षेपी द्वारा प्रक्षेपण

त्रिविमितीय लेखाचित्र और त्रिविमितीय विन्यासप्रक्षेपी

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद लगभग एक दशक तक भारत तथा अन्य देशों की शिक्षासंस्थाओं में हस्तवाही त्रिविमितीय विन्यासदर्शी का काफ़ी उपयोग किया गया। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे नगरों के प्रायः सभी स्कूलों में यह सहायक यंत्र और अनेक त्रिविमितीय लेखाचित्र उपलब्ध थे।

त्रिविमितीय लेखाचित्र एक ही वस्तु के दो ऐसे चित्रों से मिलकर बनता है जो दो लेंसों वाले कैमरे से दो तनिक भिन्न कोणों से लिए गए हों। त्रिविमितीय विन्यासदर्शी के लेंस इन दोनों चित्रों को विलयित करके अत्यन्त यथार्थपरक त्रिविमितीय चित्र का रूप दे देते हैं।

लगभग १९३० के बाद से त्रिविमितीय विन्यासदर्शी का उपयोग लगातार घटता गया है। इसका मुख्य कारण यह था कि यह एक व्यक्तिगत उपकरण मात्र था। दूसरे महायुद्ध के बाद प्लास्टिक के दर्शित्र और काग़ज़ के मण्डलक पर मढ़े १६ मि० मी० के सुन्दर रंगीन पारदर्शित्र बाज़ारों में आ गए थे। ये उपकरण इस देश के कुछ ही घरों में प्रचलित हो पाए।



व्यूमास्टर नामक प्रसिद्ध त्रिविमितीय विन्यासदर्शी। (सायर्स इन्का०, पोर्टलैण्ड, ओरेगॉन, यू० एस० ए० के सौजन्य से)

अब एक ऐसा प्रक्षेपी उपलब्ध है जिसकी सहायता से त्रिविमितीय लेखाचित्रों की स्लाइडों का उपयोग टोलियों को एक साथ दिखाने के लिए किया जा सकता है। लेकिन स्पष्ट त्रिविमितीय दृश्य देखने के लिए विशिष्ट पोलैराएड चश्मे पहनने पड़ते हैं। अल्मूनियम के विशिष्ट पर्दे का भी प्रयोग करना पड़ता है। विशिष्ट प्रकार के चश्मे और पर्दा इस साधन की उपयोगिता को निस्संदेह सीमित कर देते हैं तथापि इन त्रिविमितीय प्रतिबिम्बों की सहायता से कुछ विषय-विशेषकर भूगोल, भौतिकी, और गणित—इतने आश्चर्यजनक ढंग से समृद्ध बन जाते हैं कि इन छोटी-मोटी असुविधाओं की उपेक्षा की जा सकती है। जैसा श्री एडगर डेल ने कहा है : "भूगोल, भौतिकी और समाज-शास्त्र के अध्यापन में अध्यापकगण त्रिविमितीय लेखाचित्रों का अधिक उपयोग क्यों नहीं करते? पिरामिड, ऐक्रोपोलिस, नाटर डेम गिर्जाघर जैसी चीज़ें त्रिविमितीय लेखाचित्र में वास्तविकता का स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं जिसकी समता कोई भी सपाट चित्र नहीं कर सकता; और यदि उसमें रंग भी हो तब तो विद्यार्थी अपने आपको यथार्थ पदार्थ के सामने ही पाता है। यदि



त्रिविभितीय विन्यासप्रक्षेपी। (सायर्स इन्का०, पोर्टलैण्ड, यू० एस० ए० के सौजन्य से)

आपको इस अतिरिक्त विमिति की उपयोगिता और उसके महत्त्व पर सन्देह हो तो एक ही या एक ही जैसे पदार्थों के चित्रों और त्रिविभितीय लेखाचित्रों को दस मिनट तक देखिए। अन्तर अविस्मरणीय होगा।" १६

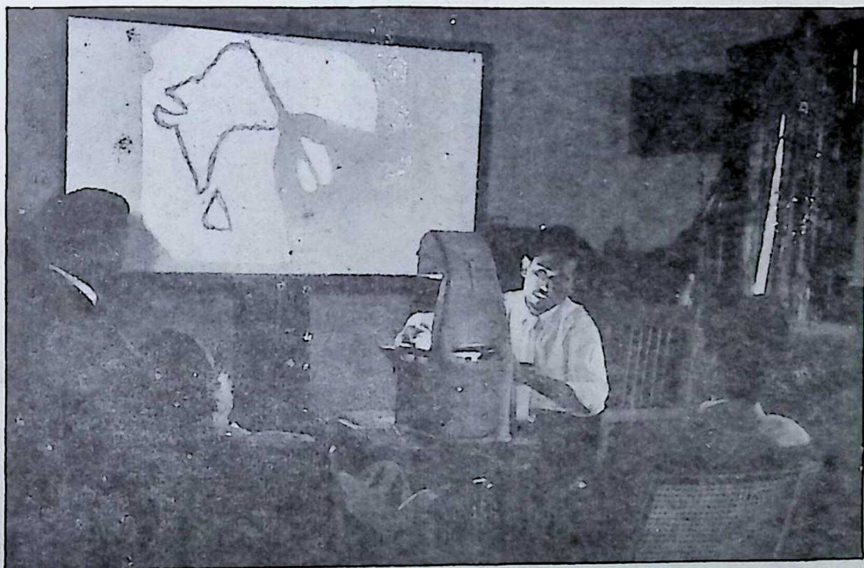
त्रिविभितीय प्रक्षेपण के लिए धातु के पर्दे और चश्मों सहित एक यंत्र अब सस्ता मिल जाता है। २इंच × २इंच आकार की रंगीन स्लाइडें तैयार करने के लिए दोहरे लेन्स वाला और प्रयोग में आसान एक कैमरा भी काफ़ी सस्ता मिल जाता है। दोनों लेन्सों को एक साथ फ़ोकस किया जा सकता है। आशा की जाती है कि देश के अध्यापकों को अनेक शिक्षण-स्थितियों

१६। ई० डेल० : 'ऑडियो विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग'।

में गहराई के आयाम की आत्यन्तिक आवश्यकता समझाने के उद्देश्य से शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् का दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग शीघ्र ही इस देश से सम्बन्धित उपयुक्त विषयों की रंगीन त्रिविमितीय स्लाइडें तैयार करेगा।

शिरोपरि प्रक्षेपी

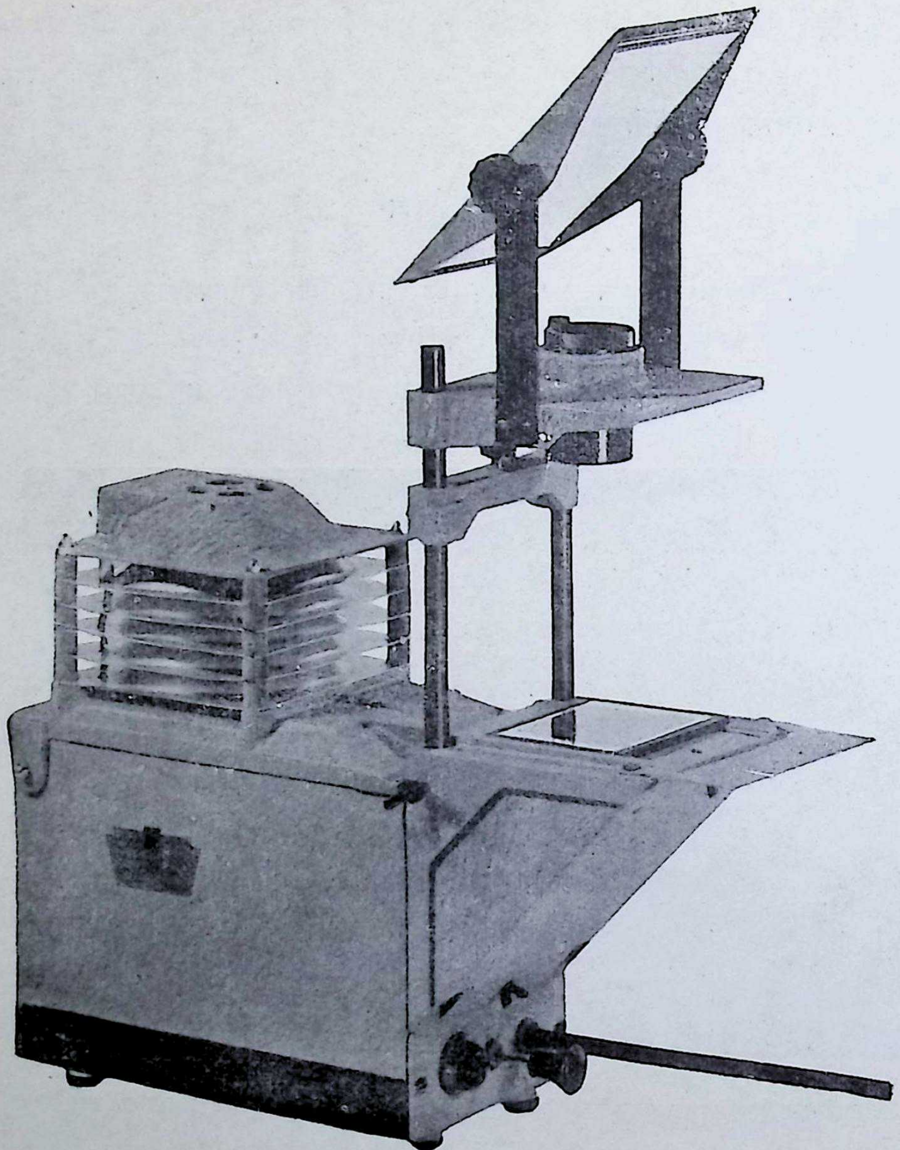
प्रक्षेपियों का एक नवीनतम प्रकार है शिरोपरि प्रक्षेपी। अल्प फ़ोकस दूरी वाले एक लेंस और दर्पणों के एक सेट से सुसज्जित इस यंत्र से अध्यापकों को अपने पीछे के पर्दे पर प्रक्षेपण करते समय विद्यार्थियों के सम्मुख रहने में सहायता मिलती है। पाठों के दौरान



छोटा शिरोपरि प्रक्षेपी जो दिल्ली-स्थित दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान में काम में लाया जा रहा है।
(संस्थान के सौजन्य से)

वे लिख सकते हैं, रेखाचित्र बना सकते हैं; और यह सब पर्दे पर दिखाया जाता है। प्रकाश की व्यवस्था बहुत ही तेज़ (७५० वाट या १००० वाट की बत्ती) लैम्प से की जाती है, इसलिए इस मशीन का उपयोग ऐसे कमरे में भी किया जा सकता है जिसमें अन्धकार करने की व्यवस्था न हो।

काँच का एक टुकड़ा, जिसका आकार ५इंच × ५इंच से लेकर १०इंच × १०इंच तक विभिन्न आकार का हो सकता है, प्रक्षेपण-मंच का काम देता है। इस काँच पर या इस पर बिछे



मानक शिरोपरि प्रक्षेपी। (कीस्टोन व्यू कं०, मीडविले, पा, यू० एस० ए० के सौजन्य से)

सेलोफ़ेन पर वैक्स-पेंसिल से रेखाचित्र बनाए जा सकते हैं। सेलोफ़ेन आसानी से धोया जा सकता है और फिर काम में लाया जा सकता है। श्यामपट्ट पर जो कुछ लिखा या खींचा जाता है उसकी अपेक्षा शिरोपरि प्रक्षेपी की सहायता से जो कुछ पर्दे पर दिखाया जाता है वह अधिक स्पष्ट देखा जा सकता है। ऐसे प्रक्षेपण के लिए 'सफ़ेदपट्ट' शब्द का प्रयोग किया गया है क्योंकि वह श्यामपट्ट का स्थान ले सकता है।

शिरोपरि प्रक्षेपी के कुछ अप्रतिम लाभ

जैसा पहले संकेत किया जा चुका है, शिरोपरि प्रक्षेपी के कुछ अप्रतिम लाभ हैं :

(१) प्रक्षेपी का उपयोग करते समय अध्यापक विद्यार्थियों को सम्मुख देखता रह सकता है।

(२) इसका उपयोग ऐसे कमरे में भी किया जा सकता है जिसमें अन्धकार की व्यवस्था न हो।

(३) १०इंच × १०इंच के पारदर्शित्र भी इससे प्रक्षेपित किए जा सकते हैं।

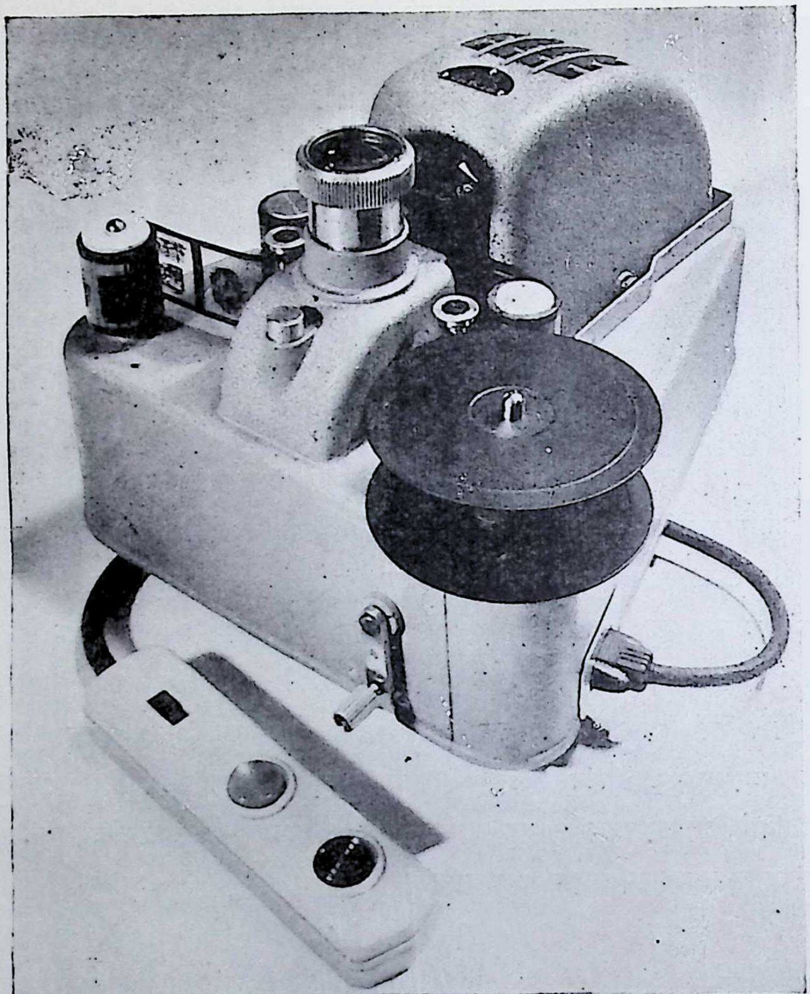
शिरोपरि प्रक्षेपी के उपयोग

पाठ पढ़ाते समय अध्यापक प्रक्षेपण-तल पर उसी प्रकार लिख सकते या रेखाचित्र खींच सकते हैं जिस तरह श्यामपट्ट पर लिखते या खींचते है। मानचित्र, चार्ट, तालिकाएँ, ग्राफ़ और आरेख जैसी तैयार सामग्री का उपयोग भी लाभकारी ढंग से किया जा सकता है। ऐसी सामग्री को एक साथ पूर्णतः दिखाना ज़रूरी नहीं होता। आवरणों की सहायता से विवेचन के अनुसार इन्हें अंशतः अथवा एक के बाद एक, प्रक्षेपित किया जा सकता है। इतिहास, भूगोल, भूमिति, शरीरविज्ञान, और भौतिकी जैसे विषयों के अध्ययन और अध्यापन को सार्थक बनाने के लिए एक उपस्थापंन तैयार कर लिया जाता है। विभिन्न रंगमंचों पर अथवा भिन्न अनुक्रम में तैयार किए गए पारदर्शित्र एक के ऊपर एक इस प्रकार व्यवस्थित किए जा सकते है कि पर्दे पर उनका सम्यक् रूप प्रस्तुत किया जा सके।

छतीय प्रक्षेपी

दृश्य-श्रव्य सामग्री में छतीय प्रक्षेपी सम्भवतः नवीनतम है। यह यन्त्र कक्षा में उपयोग करने के लिए नहीं है, फिरभी ज्ञानार्जन का उपयोगी साधन है। इस प्रक्षेपी के और इसकी सहायता से जिस सामग्री का उपयोग किया जा सकता है उसके संबंध में हमारे देश के अध्यापकों को सामान्य जानकारी होनी चाहिए। बीमारी के कारण यदि उनके कोई विद्यार्थी लम्बी अवधि तक कक्षा में उपस्थित न हों तब इस साधन से उनकी सहायता की जा सकती है।

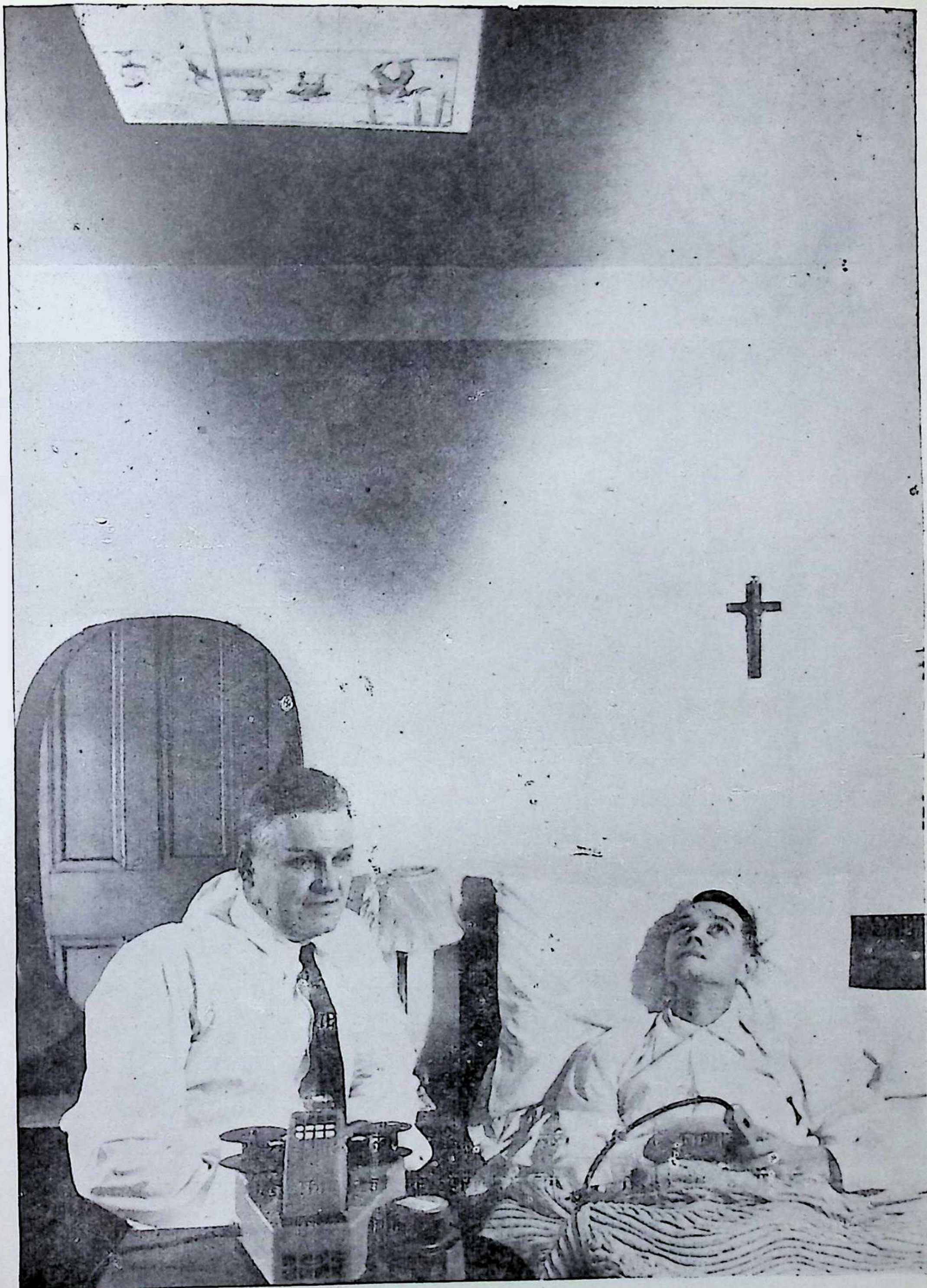
छतीय प्रक्षेपी जिसके द्वारा माइक्रोफिल्म की गई पुस्तकों का प्रक्षेपण ऐसे रोगियों के बिस्तरों की छत पर किया जा सकता है जो दुर्बलता के कारण पुस्तक को हाथ में लेकर सामान्य ढंग से पढ़ने में असमर्थ हों। मूलतः यह भित्ति-प्रक्षेपी है। हलके रंग वाली साफ़ छत पर पुस्तक के किसी पृष्ठ के ऊर्ध्वाधर प्रतिबिम्ब का प्रक्षेपण करने के लिए ही इसे तैयार किया गया है।



छतीय प्रक्षेपी । (प्रोजेक्टेड बुक्स इन्का०, ऐन आर्बर, यू० एस० ए० के सौजन्य से)

माइक्रोफिल्म की गई पुस्तक के पृष्ठ किसी भी रोगी द्वारा अपने बिस्तर पर से ही आगे या पीछे एक नियंत्रण-बटन द्वारा बड़ी सरलता से उलटे जा सकते हैं। यह बटन ठुड्डी, हाथ या पैर के स्पर्श-मात्र से ही काम करता है। अभी तक एक भी ऐसा रोगी नहीं मिला जो छतीय प्रक्षेपी का संचालन न कर सका हो।

ऐसा प्रक्षेपी बनाने का विचार पहले-पहल ऐन आर्बर के यूनिवर्सिटी माइक्रोफिल्म्स के अध्यक्ष श्री० यूजीन बी० पावर के दिमाग में सन् १९४२ में एक सैनिक अस्पताल के निरीक्षण के समय आया था। वहाँ उन्होंने ऐसे अपंगों को सूनी दीवालों को लगातार ताकते हुए देखा जो किसी पुस्तक को थामने या उसके पृष्ठ उलटने में असमर्थ थे।



बिस्तर से लगा एक रोगी छत पर प्रक्षेपित एक पुस्तक-पृष्ठ को पढ़कर एक अन्धे व्यक्ति को सुना रहा है।
(प्रोजेक्टेड बुक्स इन्का०, ऐन आर्बर, यू० एस० ए० के सौजन्य से)

अपना विचार उन्होंने 'आर्गस कैमरा कम्पनी' को बताया। दो वर्ष तक प्रयोग करने के बाद यह कम्पनी एक सन्तोषजनक प्रक्षेपी बना सकी।

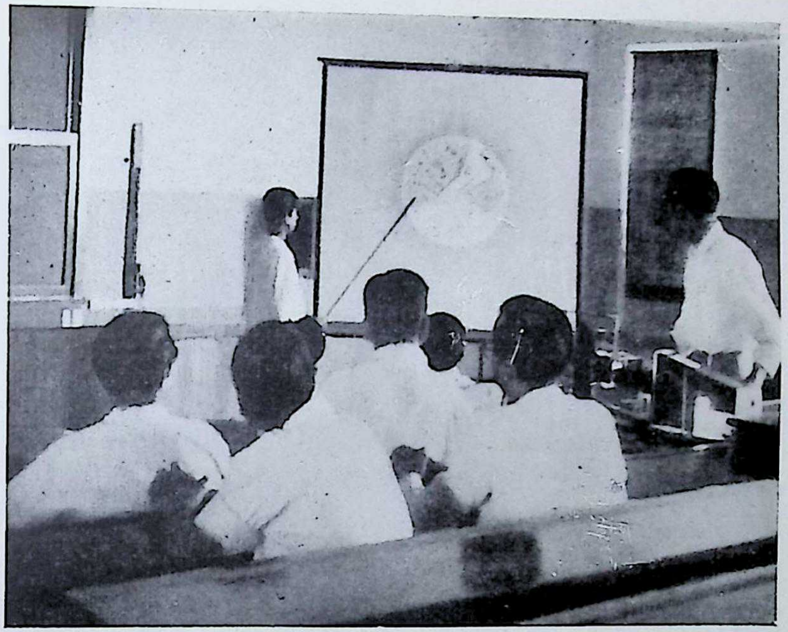
'प्रोजेक्टेड बुक्स इन्का०' नाम से लाभ न कमानेवाला एक संगठन क़ायम किया गया, प्रकाशकों और लेखकों को सामान्य स्वत्व-शुल्क दिए बिना ही इस संगठन ने उनकी पुस्तकों को माइक्रोफिल्म करने की अनुमति प्राप्त की। छत पर प्रक्षेपित करने के लिए माइक्रोफिल्म की गई सभी विषयों की हज़ारों पुस्तकें आज अमरीका में उपलब्ध हैं। इनमें विभिन्न आयु-वर्ग के बच्चों की पाठ्यपुस्तकें भी शामिल हैं।

आशा की जाती है कि भारत में भी लाभ न कमानेवाला एक ऐसा ही संगठन शीघ्र ही स्थापित किया जाएगा और अस्पतालों में उन अपंग रोगियों को पाठ्य उपकरण बाँटेगा जो पढ़ना चाहते हैं किन्तु पुस्तक थामने में असमर्थ हैं। शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् का दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग राजधानी में यह कार्य प्रारम्भ करने के लिए दो-एक छतीय प्रक्षेपी और माइक्रोफिल्म की हुई पुस्तकें उपलब्ध कर सकता है। संस्थान के पड़ोस में ही इर्विन अस्पताल है, जिसमें प्रदर्शन आयोजित किए जा सकते हैं। "बिस्तर से लगे रोगियों के लिए प्रक्षेपित पुस्तकें उसी तरह आवश्यक हैं जिस तरह उत्कीर्ण लेख अन्धों के लिए।"

सूक्ष्म प्रक्षेपी

सूक्ष्मदर्शी पर लगे संलाग की सहायता से सूक्ष्मदर्शी की स्लाइडें प्रक्षेपित की जा सकती हैं और एक के बदले कक्षा के सभी विद्यार्थी उसे एक साथ देख सकते हैं। अध्यापकों के लिए यह साधन बहुत सहायक होता है। इसके बिना वे कभी आश्वस्त नहीं हो सकते कि जो कुछ वे अपने विद्यार्थियों को दिखाना चाहते हैं उसे उन्होंने स्वयं देखा है। सूक्ष्मदर्शी से काम लेना आसान नहीं है। लेन्स का फ़ोकस ठीक करने और दर्पण को ठीक स्थान पर रखने में ही विद्यार्थियों का बहुत-सा समय नष्ट हो जाता है। स्लाइड पर जो कुछ होता है उसे सूक्ष्म प्रक्षेपी बहुत बड़े आकार में प्रक्षेपित करता है। इसे कक्षा के सभी विद्यार्थी देख सकते हैं। जब प्रतिबिम्ब पर्दे पर हो तब उसके सम्बन्ध में उपयोगी विचार विमर्श भी हो सकता है।

केवल एक असुविधा होती है। चित्र स्पष्ट आने के लिए कमरे में पूर्ण अन्धकार आवश्यक होता है। फिरभी, यदि संवातन की पर्याप्त व्यवस्था हो तो इस असुविधा पर विजय पाई जा सकती है।



इन्स्टीट्यूट आफ़ मेडिकल एजुकेशन, एस० एस० कर्नानी स्मारक अस्पताल, कलकत्ता में एक सूक्ष्म प्रक्षेपी का प्रयोग किया जा रहा है। (चित्र, डा० आर० के० पंजा द्वारा)

माइक्रोफिल्म और माइक्रोकार्ड

३५ मि० मी० या १६ मि० मी० की फिल्म पर पुस्तकों, समाचारपत्रों अथवा पाण्डुलिपियों के पृष्ठ प्रस्तुत करना अब एक विशिष्ट प्रकार के कैमरे की सहायता से सम्भव हो गया है। मूल सामग्री का आकार बहुत छोटा हो जाता है। आवर्धन किए बिना उसे पढ़ा नहीं जा सकता। समाचारपत्र का एक पृष्ठ डाक-टिकट के आकार का बना दिया जाता है। माइक्रोफिल्म पढ़ने के लिए एक मशीन का उपयोग किया जाता है। इसका संचालन बहुत आसान होता है। कुर्सी पर से उठे बिना फिल्म को मशीन में लगाया और फ़ोकस किया जा सकता है। मेज़ पर रखे सफ़ेद काग़ज़ के तख्ते पर अथवा, दर्पण का थोड़ा-सा मेल बैठाकर, छोटी-मोटी टोली के लिए पर्दे पर प्रतिबिम्ब प्रक्षेपित किया जा सकता है।

अलभ्य और महत्त्वपूर्ण पुस्तकों तथा पाण्डुलिपियों को परिरक्षित रखने और उन्हें पढ़ने में सुविधा देने के लिए भारत के अनेक पुस्तकालयों ने तथा दिल्ली-स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार ने उनके माइक्रोफिल्म तैयार कर लिए हैं।

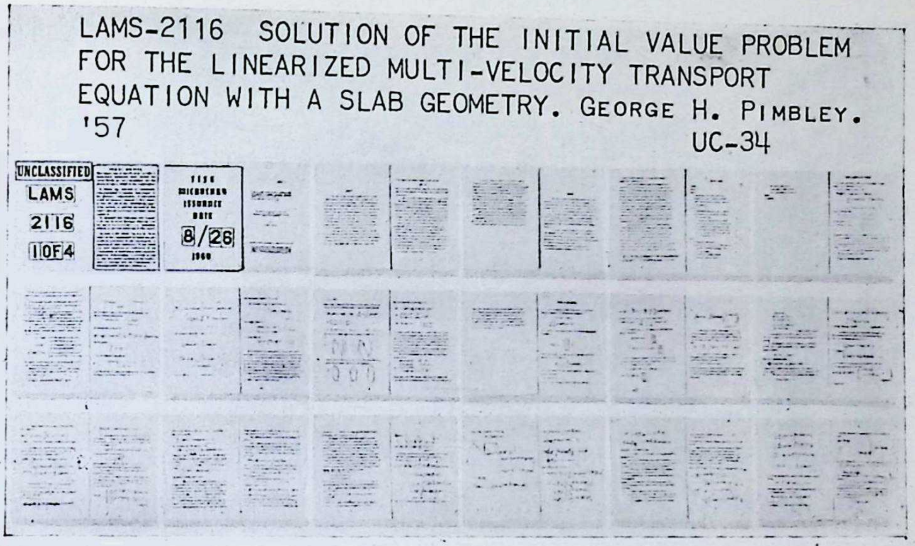


छोटी टोली के उपयोग के लिए प्रति-बिम्ब को पर्दे पर प्रक्षेपित करने का साधन माइक्रोफिल्म के इस विशिष्ट कोटि के पाठक के पास है। (राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता के सौजन्य से)

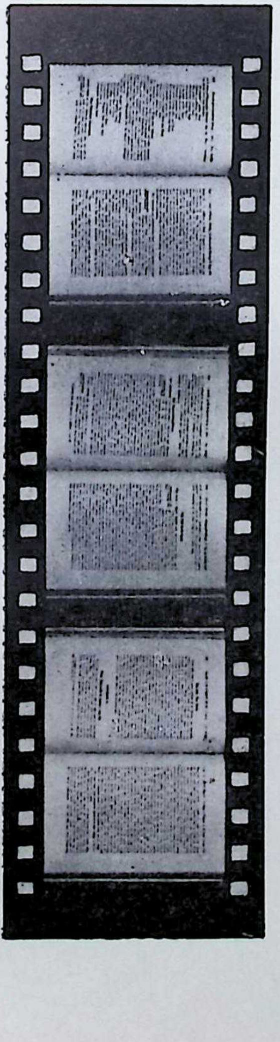
सन् १९५८ और १९५९ के दौरान विशिष्ट पुस्तकालयों और सूचना-केन्द्रों के भारतीय संघ के प्रलेखपुनरुत्पादन एवं अनुवाद प्रभाग ने विभिन्न प्रलेखों के ५५०५१ पृष्ठों के माइक्रोफिल्म तैयार किए थे। सन् १९६० में भी लगभग ४०,००० पृष्ठों के माइक्रोफिल्म बनाए गए थे। मुख्यतः शोध-संस्थानों और व्यापारिक संगठनों की माँग पर यह कार्य लागत मूल्य पर किया गया था।

भारत के कुछ पुस्तकालयों में शोध-कर्त्ताओं के उपयोग के लिए केवल माइक्रोफिल्म रीडरें ही रहती हैं। आजकल विदेशों की अलभ्य पुस्तकों की माइक्रोफिल्म प्रतियाँ डाक से प्राप्त करना भी सम्भव हो गया है।

माइक्रोफिल्म का ही एक विभेद है—माइक्रोकार्ड। एक माइक्रोकार्ड पर किसी पुस्तक के १०० से भी अधिक पृष्ठों को प्रस्तुत करना अब सम्भव हो गया है।



एक माइक्रोकार्ड । (आधारभूत-शोध-संस्थान, बम्बई के सौजन्य से)



एक माइक्रोफिल्म ।
(भूविज्ञान सर्वेक्षण पुस्तकालय, कलकत्ता के सौजन्य से)

माइक्रोफिल्म की भाँति माइक्रोकार्ड को पढ़ने के लिए भी पढ़ाई की मशीन आवश्यक होती है।

हाल ही की एक प्रेस रिपोर्ट में कहा गया है कि समूचे भारत में उपलब्ध अलभ्य पाण्डुलिपियों के माइक्रोफिल्म तैयार किए जाएँगे। इस पर होनेवाले खर्च की भागीदारी के सम्बन्ध में यूनैस्को तथा भारत सरकार के बीच हुए एक समझौते के अनुसार कलकत्ते के राष्ट्रीय पुस्तकालय द्वारा माइक्रोफिल्में तैयार करने का काम प्रारम्भ कर दिया गया है। पाण्डुलिपियों का चयन करने के लिए भारत सरकार द्वारा एक विशेषज्ञ-समिति बनाई जा चुकी है। आवश्यक उपकरण और एक विशेषज्ञ की सेवाएँ यूनैस्को द्वारा उपलब्ध की गई हैं। यह विशेषज्ञ कलकत्ते के राष्ट्रीय पुस्तकालय में तथा उसके आसपास अन्य पुस्तकालयों में अलभ्य पाण्डुलिपियों के माइक्रोफिल्म तैयार कर रहा है। विभिन्न भाषाओं की चुनी हुई पाण्डुलिपियों के माइक्रोफिल्म तैयार करने के लिए भारत के सोलह अन्य पुस्तकालय-केन्द्रों में इस विशेषज्ञ का जाना निश्चित हो चुका है।

२१ फिल्म

भारत के प्रगतिशील शिक्षाविद् और शिक्षक शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर फिल्मों के महत्त्व को बहुत समय से स्वीकार करते आए हैं। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा फिल्मपुस्तकालयों की व्यवस्था की गई है। अधिकाधिक संख्या में स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय और सामाजिक संस्थाएँ इनसे फिल्में ले रही हैं।

शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग के केन्द्रीय पुस्तकालय में अब १६ मि० मी० वाली लगभग ६००० फिल्में हैं जो देश की शिक्षा-संस्थाओं के काम आ सकती हैं। इन संस्थाओं को फिल्में निःशुल्क उधार दी जाती हैं। भारत सरकार के फिल्म-प्रभाग ने शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग के सहयोग से इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य-विज्ञान। और विज्ञान के कक्षाओं में पढ़ाए जानेवाले विशिष्ट प्रकरणों के शिक्षण में सहायता देने के लिए फिल्में बनाने का काम प्रारम्भ कर दिया है।

पिछले कुछ वर्षों में फिल्म-स्थानक आन्दोलन में काफ़ी प्रगति हुई है। फिल्म-स्थानक संघ के सदस्य फिल्म-स्थानकों तथा विश्वविद्यालय फिल्म-परिषद् में प्रतिनिधित्व प्राप्त विश्वविद्यालय फिल्म-स्थानकों ने अपने अपने कार्यक्रमों में समाचार-चित्रों का अधिकाधिक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है।

ज्ञानार्जन में फिल्मों का योगदान

कोई औद्योगिक प्रक्रिया हो, प्राकृतिक तत्त्व हो या कोई महत्त्वपूर्ण घटना—उसे जानने की आदर्श पद्धति है स्वयं उसे देखना। किन्तु, जैसा पहले कहा जा चुका है, हमेशा यह नहीं हो पाता। ज्ञानार्जन के लिए हमें अप्रत्यक्ष-प्रेक्षण का सहारा लेना पड़ता है। सौभाग्य की बात है कि अप्रत्यक्ष प्रेक्षण के लिए फिल्म जैसा उपयोगी साधन हमें उपलब्ध है। जहाँ प्रत्यक्ष-प्रेक्षण सम्भव हो वहाँ भी चयन हीनता और भ्रम के कारण वांछित ज्ञान प्राप्त करना शक्य नहीं हो पाता। फिल्म अथवा अन्य किसी दृश्य-श्रव्य साधन द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूति को अनुपूरित करना आवश्यक हो सकता है।

शिक्षा में फिल्मों की सहायता के प्रकार इतने विविध हैं कि उन सबका विवेचन करना सम्भव नहीं है। तथापि कुछ प्रमुख योगदान इस प्रकार हैं:

(१) गतिशीलता

सामान्य चित्रों और फिल्मों के बीच एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि फिल्में पदार्थों की गतिशीलता दिखा सकती हैं। गतिशीलता दिखा सकने की यह शक्ति ही फिल्मों को महत्त्वपूर्ण बना देती है। "जीवन वस्तुतः गतिशीलता में ही है, और जीवन से सम्बन्धित किसी भी पदार्थ के प्रस्तुतीकरण में गतिशीलता का योग उसे कहीं अधिक यथार्थ बना देता है। यदि भूगोल की यथार्थताओं का बोध कराना हो, और विषयगत पदार्थों की यथार्थ अवधारणा बच्चों को करानी हो तो गतिशीलता का तत्त्व अति आवश्यक है।"[१७] मानसून, धाराएँ और ज्वार-भाटा, हिमनदी, ज्वालामूखी, दिन और रात्रि जैसे प्रकरणों के अध्ययन-अध्यापन में अन्य कोई साधन इतना कारगर नहीं होता जितनी कारगर फिल्म होती है।

२) फिल्में अति तीव्र या मंद गति के कारण सामान्य मानव-दृष्टि के लिए अदृश्य पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण

मूक फिल्म की सामान्य गति प्रति सेकण्ड १६ फ्रेम होती है। सवाक् फिल्म की गति प्रति सेकण्ड २४ फ्रेम होती है। जो कार्य बड़ी तेज़ी के साथ होते हैं, जैसे घुड़दौड़ में घोड़े की कूद या फ़ुटबाल की किक—इनके अध्ययन के लिए उद्भासनों (एक्सपोज़र)

१७। जे० फ़ेयरग्रीव—'ज्योग्रैफ़ी इन स्कूल'

की संख्या बढ़ाकर मन्दगति फिल्में बनाई जा सकती हैं। इसी प्रकार उद्भासनों की संख्या कम करके और कालह्रासी (टाइम-लैप्स) फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से कई सप्ताह में पूरा होनेवाला किसी फूल या पौधे का विकास मिनटों में ही दिखाया जा सकता है। कैमरे को सम्बन्धित पदार्थों पर फ़ोकस कर दिया जाता है और विशेष उपकरणों की सहायता से समय-समय पर फ़्रेम उद्भासित कर दिए जाते हैं। जब तैयार फिल्म को पर्दे पर प्रक्षेपित किया जाता है, तब कई दिनों में पूरी होनेवाली प्रक्रिया मिनटों में ही देखी और समझी जा सकती है।

(३) मानव-दृष्टि के लिए अदृश्य अति सूक्ष्म पदार्थों का अवलोकन

सूक्ष्मदर्शी लेन्स की सहायता से पौधों और कोशिकाओं जैसे उन पदार्थों के फ़ोटो चित्र लेना भी सम्भव है जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। इन चित्रों को पर्दे पर प्रक्षेपित करने पर सारी कक्षा उनका अध्ययन कर सकती है। सूक्ष्मदर्शी जैसे खर्चीले साधन से होनेवाला लाभ पूरी कक्षा के लिए ऐसे चित्रों द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है।

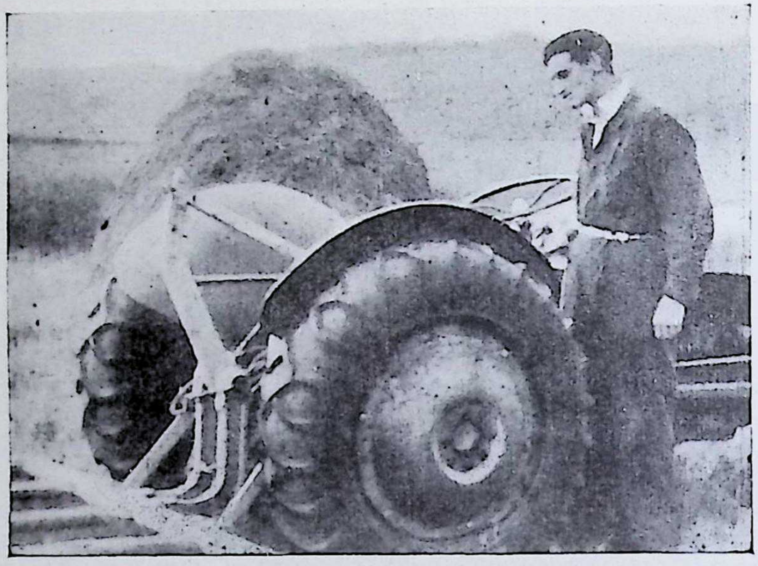
(४) मानव-दृष्टि के लिए अदृश्य प्रक्रियाओं को भी फिल्मों में दिखाया जा सकता है

रेखाचित्रों की शृंखला की सहायता से ऐसी फिल्म बनाई जा सकती है जो उन प्रक्रियाओं को भी दिखा सके जो अन्यथा नहीं देखी जा सकतीं ; जैसे सुनने की प्रक्रिया, अणुओं की क्रियाविधि। ऐसी फिल्में निस्सन्देह खर्चीली होती हैं, पर वे अत्यधिक शिक्षाप्रद भी होती हैं। आशा है, शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् का दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग शीघ्र ही ऐसी कुछ फिल्में कक्षाओं में उपयोग के लिए बनाएगा। शिक्षा-मंत्रालय द्वारा मई-जुलाई १९५४ में आयोजित एक दृश्य-श्रव्य शिक्षा विचारगोष्ठी में श्री जी० के० अथाले ने ऐसी फिल्में बनाने की विधि का प्रदर्शन किया था।

(५) फिल्में किसी तकनीक या प्रक्रिया को आद्यन्त दिखा सकती हैं

ज्ञानार्जन की अनेक अवस्थाओं में—विशेष कर शिल्प और तकनीक के प्रशिक्षण में—तकनीकों और प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करना आवश्यक होता है : खेती के किसी औज़ार का प्रयोग कैसे किया जाए ? प्रक्षेपी में फिल्म को कैसे लगाया जाए ? फल-परिरक्षण में किसी बोतल को सीलबन्द कैसे किया जाए ?—यदि इन सारी प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करनेवाली फिल्में बनाई जाएँ तो हम उनका कारगर उपयोग सुविधापूर्वक कर सकते हैं। जिन लोगों ने

किसी निर्माण-प्रक्रिया का प्रदर्शन किया है वे जानते हैं कि कक्षा में ऐसे प्रदर्शन की व्यवस्था करना कितना कठिन होता है।



फिल्म के माध्यम से किसी भी तकनीक को आदि से अन्त तक समझा और समझाया जा सकता है।
(एडिनबर्ग के समीप वेस्टलिंटन में लेखक द्वारा बनाई गई 'हाईलैंड फार्मिंग' शीर्षक फिल्म से)



(६) फिल्में अतीत की घटनाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से दिखा सकती हैं

अतीत को प्रत्यक्ष नहीं किया सकता, किन्तु फिल्मों की सहायता से कालचक्र की गति पलटी जा सकती है। नाटकीय रूपों में हम अतीत को पुनः मूर्तरूप देते हैं, और



इन मूर्तरूपों के फ़ोटोचित्र ले लेते हैं। फिल्मों की सहायता से हम पानीपत के ऐतिहासिक युद्धक्षेत्र में लड़े गए युद्धों को अथवा मोहेंजो-दाड़ों के जीवन को देख सकते हैं। नाटकीय



'गौतम द बुद्ध' फिल्म का एक अचल चित्र। (भारत सरकार के फिल्म डिवीज़न के सौजन्य से)

मूर्तरूपों और भारत के प्राचीन अवशेषों की सहायता से स्वर्गीय विमल राय द्वारा निर्मित सुन्दर चित्र 'गौतम बुद्ध' ('गौतम द बुद्ध') को बहुतों ने देखा है।

(७) फिल्में चरित्र का निर्माण करती हैं और अभिवृत्ति को प्रभावित कर सकती हैं

फिल्मों का प्रयोग केवल ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए ही नहीं, कभी-कभी अभिवृत्तियों में परिवर्तन करने के लिए भी किया जा सकता है। खानों तथा खेती के कुछ पहलुओं से सम्बन्धित फिल्में खानों और खेतों में काम करनेवालों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न कर सकती हैं। बाढ़-ग्रस्त क्षेत्र का चित्रण करनेवाली फिल्म स्वभावतः उस क्षेत्र के दुर्दशाग्रस्त लोगों के प्रति समवेदना उत्पन्न करती है। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान जो प्रायोजनाएँ सफलतापूर्वक सम्पन्न की जा चुकी हैं उन पर बनी हुई फिल्में लोगों के मन में देश के भविष्य के प्रति पर्याप्त विश्वास उत्पन्न कर सकती हैं। लोगों के मस्तिष्क और हृदय में परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए फिल्में सर्वाधिक शक्तिमान साधन है। जब कुछ आदर्शों और सद्गुणों को फिल्मों के माध्यम से जब बार-बार चित्रित और प्रदर्शित किया जाता है, तब लोग—और विशेषरूप से बच्चे उन्हें ग्रहण कर लेते हैं और अपने आपको उन्हीं के अनुकूल ढालते हैं। यही कारण है कि बच्चों के चरित्र-निर्माण के लिए उपयुक्त फिल्मों के निर्माण और उपयोग का एक विश्वव्यापी आन्दोलन चल पड़ा है।

फिल्मों के प्रयोग से संबंधित कुछ चेतावनियाँ

(१) व्यय-साध्य साधन

इसमें सन्देह नहीं कि फिल्म एक अत्यन्त उत्तम कोटि का दृश्य-श्रव्य साधन है, लेकिन यह जैसा पहिले कहा जा चुका है, यह एक व्यय-साध्य साधन है और यदि फिल्म-पट्टियों, चार्टों अथवा मॉडेलों जैसे सस्ते साधनों के प्रयोग से आवश्यक सुफल मिल सके तो फिल्मों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। एक १६ मि॰ मी॰ वाले फिल्म प्रक्षेपी पर लगभग ३५०० रुपए खर्च होते हैं किन्तु एक फिल्मपट्टी-प्रक्षेपी लगभग ३५० रुपए में ही मिल जाता है।

(२) फिल्में समय और आकार की भ्रामक धारणा करा सकती हैं

एक फूल या फल के निर्माण में कई सप्ताह लग जाते हैं। यही प्रक्रिया फिल्म द्वारा प्रायः मिनट भर में दिखाई जा सकती है। इसलिए इनके विकास में जितना समय वस्तुतः लगता है उसके सम्बन्ध में विद्यार्थियों की एक ग़लत धारणा बन सकती है। इसी

प्रकार फिल्म में अति सूक्ष्म आकार वाली वस्तु को बहुत बड़े आकार में दिखाया जा सकता है। इस तरह आकार के सम्बन्ध में भी ग़लत धारणा बन सकती है। दक्षिणी अमरीका के कुछ आदिवासियों ने एक फिल्म में मच्छरों का निकट 'शॉट' देखकर कहा था : 'अपने यहाँ के मच्छरों के बारे में चिन्ता करने की हमें कोई ज़रूरत नहीं है, वे बहुत ही छोटे होते हैं। यहाँ अमरीका में आपके मच्छर सचमुच बहुत ही बड़े हैं और सम्भवतः बहुत खतरनाक भी हैं।" १८ फिल्मों का उपयोग करते समय अध्यापकों को ध्यान रखना चाहिए कि समय और आकार के सम्बन्ध में दर्शक ग़लत धारणाएँ न बना बैठें।

(३) फिल्म सर्वदा सर्वोत्तम साधन नहीं होती

यद्यपि फिल्म निस्सन्देह सर्वाधिक मूल्यवान दृश्य-श्रव्य साधन है, फिरभी वह सर्वदा सर्वोत्तम साधन नहीं होती। शिक्षण की कुछ स्थितियों में एक मॉडेल या रेखाचित्र अधिक अच्छा साधन हो सकता है। जो वस्तुएँ प्रकृति से ही स्थिर या अचल हैं उनके लिए फिल्मपट्टियाँ अथवा स्थिर वस्तु चित्र फिल्मों की अपेक्षा अधिक अच्छे साधन हैं। अध्ययन के लिए जितनी देर आवश्यक हो फिल्मपट्टी का फ्रेम उतनी देर तक पर्दे पर रोका जा सकता है। फिरभी, यह स्मरण रखना चाहिए कि शिक्षण की अनेक स्थितियों में अन्य शिक्षण-साधनों की पूर्ति के लिए फिल्मों का उपयोग लाभदायक हो सकता है।

शैक्षणिक फिल्में

शैक्षणिक फिल्में वे फिल्में होती हैं जिनका निर्माण प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रयोजनों का ध्यान रखकर किया जाता है। मनोरंजन के लिए बनाई जानेवाली रूपक-फिल्मों से ये फिल्में भिन्न होती हैं। यद्यपि सामान्यतः सभी रूपक-फिल्में दर्शकों की अभिवृत्तियाँ बदल सकती हैं और सभी का एक सूचनात्मक महत्त्व हो सकता है (यद्यपि कभी-कभी भ्रान्त सूचनाएँ भी इनमें दी जाती हैं), फिरभी कुछ रूपक-फिल्में, विशेषरूप से अपने शिक्षा मूलक महत्त्व के लिए प्रसिद्ध हैं। 'मैडम क्यूरी', 'दि स्टोरी आफ़ लुई पैसट्योर' और 'सिक्स्टी ग्लोरियस इयर्स' इसके विशिष्ट उदाहरण हैं। शैक्षणिक फिल्मों को तीन प्रमुख शीर्षों या विभागों में बाँटा जा सकता है :

(१) कक्षाओं में पढ़ाए जानेवाले फिल्में

(२) वृत्त चित्र

(३) समाचार दर्शन या समाचार रीलें

१८। ई० डेल०—'ऑडियो विज़ुअल मेथड्स इन टीचिंग'

कक्षाओं में पढ़ाए जानेवाले फिल्में

ये फिल्में गणित, भौतिकी, रसायन, वनस्पति-विज्ञान, इतिहास, भूगोल और स्वास्थ्य-विज्ञान जैसे विषयों के विशिष्ट प्रकरणों को कक्षा में पढ़ने और पढ़ाने में सहायता देने के लिए बनाई जाती हैं। भारत में कक्षाओं में उपयोग के लिए अधिकांश फिल्में बाहर से मंगाई गई हैं। हाल ही में भारत सरकार के फिल्म्स डिवीज़न ने शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा-विभाग के सहयोग से शैक्षणिक फिल्मों के निर्माण का काम अपने हाथ में लिया है। भारत के इतिहास और भारत के भूगोल से संबंधित फिल्मों की बहुत कमी हैं, अब इन विषयों पर फिल्में बनाई जा रही हैं।

वृत्त चित्र

'वृत्त चित्र' के अँगरेज़ी पर्याय 'डाक्यूमेंटरी फ़िल्म' में 'डाक्यूमेंटरी' शब्द का अर्थ है 'पढ़ाना' (लैटिन के 'Docere' शब्द से)। यथार्थ वस्तु का नाटकीकृत रूप प्रस्तुत करके वृत्त चित्र सूचनाएँ देता है और अभिवृत्तियों का निर्माण करता है। वृत्त चित्र अपना कथ्य मनुष्यों और मानवीय अभिरुचियों की भाषा में प्रस्तुत करता है।

"यथार्थ का रचनात्मक प्रस्तुतीकरण" इस अर्थ में 'डाक्यूमेंटरी' शब्द का प्रयोग आज से लगभग चालीस वर्ष पहले अँगरेज़ फिल्म विशेषज्ञ जॉन ग्रियर्सन ने किया था। बीसवीं शती के तीसरे दशक के प्रारंभिक वर्षों में इस शब्द का प्रयोग प्रायः किया जाता रहा है; तथापि शिक्षा के क्षेत्र में इस माध्यम का महत्त्व पूरी तरह दूसरे विश्वयुद्ध के बाद ही समझा जा सका।

यद्यपि वृत्त चित्र का उद्देश्य किसी भी विषय या घटना का सच्चा वृत्त प्रस्तुत करना ही होता है, फिरभी विविध कारणों से वह पूर्णतः सत्य नहीं होता। बहुधा पूर्णतः सत्य प्रस्तुतीकरण के मार्ग में तकनीकी कठिनाइयाँ बाधा डालती हैं। वृत्त चित्र के अभिनेता सामान्यतः जीवन की यथार्थ स्थितियों को झेलनेवाले व्यक्ति ही होते हैं, फिरभी ऐसे अवसर आते ही हैं जब वृत्तिक अभिनेताओं की सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। कैमरे से शर्मानेवाले कुछ यथार्थ व्यक्ति कैमरे के सामने स्वाभाविक ढंग से काम नहीं कर पाते।

और फिर, किसी भी वृत्त चित्र को पूर्णतः सत्य बनाने के लिए आवश्यक है कि सम्बन्धित विषय या घटना आदि का सर्वांगपूर्ण प्रस्तुतीकरण और मौक़े पर उसका अध्ययन किया जाए। यह सब शायद ही व्यवहारिक हो सके। इसके अतिरिक्त, सरकार अथवा

व्यवसायिक फ़र्मों द्वारा बनाई जानेवाली फिल्मों में पूर्ण-सत्य का चित्रण किया ही नहीं जा सकता। किसी सरकारी प्रायोजना के सम्बन्ध में बननेवाली फिल्म में सामान्य मज़दूरों के श्रम-स्वेद और संकल्प को किसी मंत्री के आगमन तथा प्रधान प्रबन्धक अथवा सर्वोच्च कार्यकारी अधिकारियों के कार्य कलापों की अपेक्षा भले ही अधिक महत्त्व दे दिया जाए, फिरभी प्रायोजना के धूमिल या मलिन पक्षों को वृत्त चित्र में नहीं दिखाया जाता; और ऐसा करने के उपयुक्त कारण भी हो सकते हैं।

पश्चिमी देशों में निर्मित कुछ उत्कृष्ट वृत्त चित्र ये हैं : कनाडा के हिमाच्छादित उत्तरी भाग में रहनेवाले एस्किमो लोगों के दैनिक जीवन पर रावर्ट फ़्लेहर्टी द्वारा निर्मित 'नैनूक आफ़ द नार्थ', एक ऊजड़ द्वीप पर जीवन के लिए संघर्ष करनेवाले एक परिवार की कथा चित्रित करनेवाला फ़्लेहर्टी द्वारा ही निर्मित वृत्त चित्र 'मैन आफ़ ऐरान', और लुशियाना के दलदली भूखण्ड के विकास की कहानी चित्रित करनेवाला उनका वृत्त चित्र 'लुशियाना स्टोरी', स्काटलैण्ड के मछुओं के दैनिक जीवन और कार्य को चित्रित करनेवाला वृत्त चित्र 'ड्रिफ़्टर्स', फ़्रांस की बेकारी-समस्या पर अलबर्टो कैवलकैन्टी द्वारा निर्मित 'रेन क्यू ला ह्यूर्स', आस्ट्रेलिया के जलते हुए मरुस्थल में चलती हुई डाकगाड़ी की कथा कहनेवाला जॉन हेयर द्वारा निर्मित वृत्त चित्र 'बैक आफ़ बियॉण्ड', लन्दन की गन्दी बस्तियों पर एडगर ऐन्स्टे और आर्थर एल्टन द्वारा निर्मित 'हाउसिंग प्राब्लम्स', एक खान-दुर्घटना के समय फ़्रांसीसी और जर्मनी के खान खोदनेवालों के बीच पारस्परिक मैत्रीभाव को प्रदर्शित करनेवाला जी० डब्ल्यू० पैब्स्ट द्वारा निर्मित 'कामरेड शैफ़्ट' (कामरेडशिप), रूस के किसानों के जीवन को चित्रित करनेवाला अलेक्ज़ेंडर डवज़ेंको द्वारा निर्मित वृत चित्र 'अर्थ', वाल्टर रटमैन द्वारा निर्मित, एक शहर का चित्रण करनेवाला वृत्त चित्र 'बर्लिन', अमरीका में हुए भूक्षरण का चित्र प्रस्तुत करनेवाला पेरी लॉरेंट्ज़ द्वारा निर्मित 'द प्लो दैट ब्रोक द प्लेन' और मिसिसिपी नदी की बाढ़ से हुए ध्वंस को दिखानेवाला वृत्त चित्र 'द रिवर'।

भारत सरकार के फिल्म्स डिवीज़न द्वारा भी बहुत अच्छे वृत्त चित्र तैयार किए गए हैं। पश्चिमी देशों के उत्कृष्ट वृत्त चित्रों से इन्हें किसी प्रकार हीन नहीं कहा जा सकता। कुछ प्रसिद्ध भारतीय वृत्त चित्र हैं : 'ड्रम्स आफ़ मणिपुर', 'अवर नेबर नेपाल', 'होली हिमालयाज़', 'इटावा स्टोरी', 'स्प्रिंग कम्स टु कश्मीर', 'स्पिरिट आफ़ लूम', 'ग्लिम्प्सेज़ आफ़ असम', 'महाबलीपुरम्', 'भरत नाट्यम्', 'खजुराहो', 'कोणार्क', 'मदुराई', 'द हिमालयन टैपेस्ट्री', 'मण्डू-सिटी आफ़ ज्वाय', 'काल आफ़ द माउन्टेन्स', 'स्टोरी आफ़ डॉ० कर्वे', 'राधाकृष्ण', 'कांगड़ा ऐण्ड कुलू', 'रवीन्द्रनाथ' तथा 'अवर फ़ेदर्ड फ़्रैंड्स'।

ये फिल्में शिक्षाप्रद हैं, मनोरंजक हैं। और विविध विषयों पर व्यापक दृष्टि से तैयार की गई हैं। ये फिल्में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विभिन्न विकासमूलक प्रायोजनाओं की झाँकियाँ ही प्रस्तुत नहीं करतीं; बल्कि कला, स्थापत्य, संगीत और नृत्य के क्षेत्र में हमारे देश के महान सांस्कृतिक अतीत का भी चित्रण करती हैं; और यह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। भारत सरकार का फिल्म्स डिवीज़न अब वृत्त चित्रों का निर्माण करनेवाले संसार के सबसे बड़े एककों में से है। पिछले कुछ वर्षों में इसने औसतन १०० वृत्त चित्र प्रति वर्ष बनाए हैं।



'काल आफ़ द माउन्टेन्स' नामक फिल्म का एक अचल चित्र। (भारत सरकार के फिल्म्स डिवीज़न के सौजन्य से)

समाचार दर्शन या समाचार रीलें

शिक्षा के क्षेत्र में इनका एक निश्चित महत्त्व है। इनमें अपने देश की तथा विदेशों की हाल ही की घटनाओं की चर्चा रहती है। समाचार रीलों के उपयोग में बड़ी कठिनाई

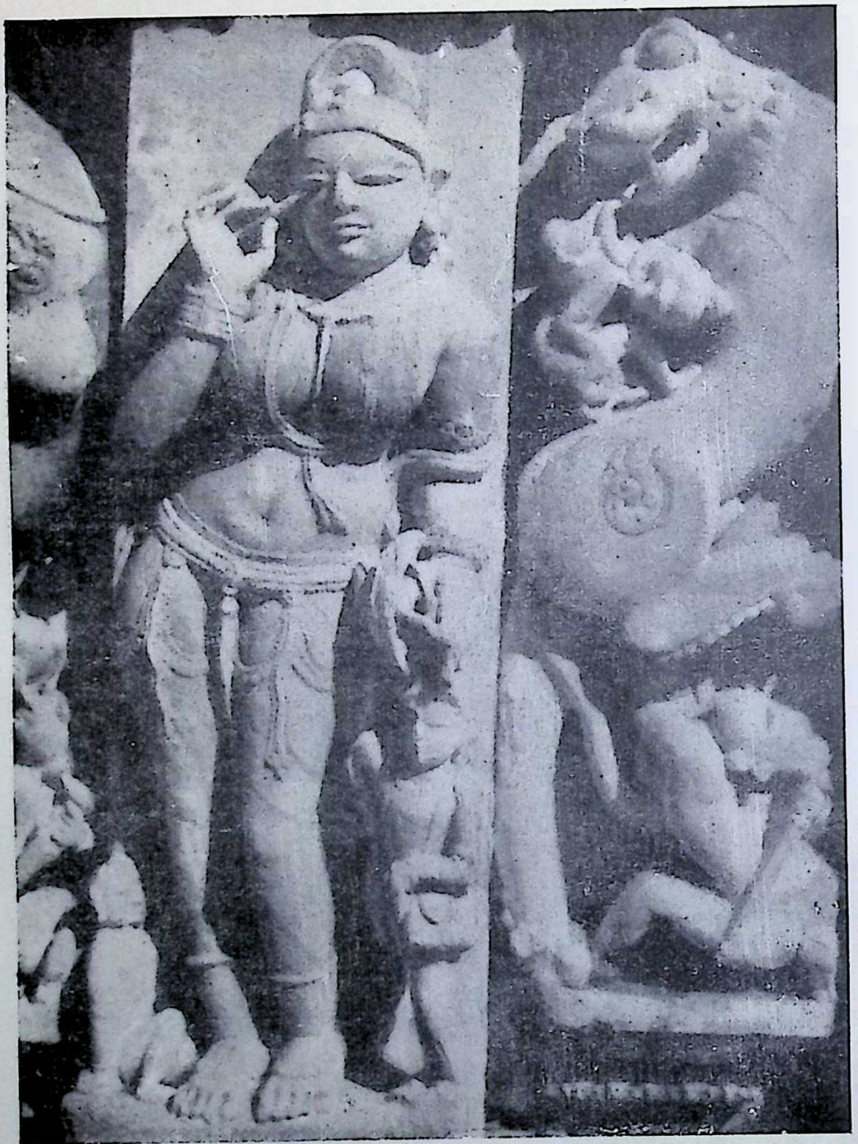
होती है कि इनका निर्माण प्रायः ३५ मि० मी० में ही किया जाता है। आशा है कि भविष्य में शैक्षणिक संस्थाओं में परिचालन के लिए १६ मि० मी० की समाचार रीलों



'भरत नाट्यम्' फिल्म का एक अचल चित्र। (भारत सरकार के फिल्म्स डिवीज़न के सौजन्य से)

का निर्माण किया जाएगा। यह भी आशा है कि ये रीलें शैक्षणिक संस्थाओं में उतनी ही जल्दी पहुँचा करेंगी जितनी जल्दी सिनेमाघरों में पहुँचती हैं।

वृत्त चित्र और समाचार रील, दोनों में प्रकृत सामग्री की चर्चा रहती है; एक इस तथ्य को छोड़कर समाचार रील में वृत चित्र की अन्य कोई विशेषता नहीं होती। समाचार रील में प्रतिदिन की घटनाओं को रँगामेज़ी या रागद्वेष के बिना सरल वर्णनात्मक शब्दावली



'खजुराहो' फिल्म का एक अचल चित्र। (भारत सरकार के फिल्म्स डिवीज़न के सौजन्य से)

में यथावत् प्रस्तुत कर दिया जाता है, किन्तु वृत्त चित्र में समाचार रील की सामग्री को उद्देश्यपरक सांचे में ढालकर प्रस्तुत किया जाता है।

। व्यवसायिक फ़र्मों द्वारा निर्मित फिल्में

व्यवसायिक फ़र्मों द्वारा अपने उत्पादनों या अपनी सेवाओं का विज्ञापन करने के लिए बनाई जानेवाली फिल्मों को शैक्षणिक फिल्मों के अन्तर्गत नहीं माना जाता, फिरभी इनमें



'कोणार्क' फिल्म का एक अचल चित्र। (भारत सरकार के फिल्म्स डिवीज़न के सौजन्य से)

कई ऐसी फिल्में हैं जिनका पर्याप्त शैक्षणिक महत्त्व है। ये फिल्में सामान्यतः रंगीन होती हैं और इनकी फ़ोटोग्राफ़ी उत्तम कोटी की होती है। ये फिल्में शैक्षणिक संस्थाओं को प्रायः निःशुल्क उधार दी जाती हैं।

कक्षा में व्यवसायिक फिल्मों का उपयोग इस देश के कुछ शिक्षाशास्त्री पसन्द नहीं करते। उनके विचार से इन फिल्मों का मुख्य उद्देश्य किसी उत्पादन का विज्ञापन करना होता है। लेकिन, यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि प्रमुख व्यवसायिक फ़र्मों द्वारा आजकल फिल्मों का उत्पादन व्यापक जन-सम्पर्क कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जाने लगा है। यदि कोई विज्ञापनमूलक संदेश फिल्म में हो तो सामान्यतः वह फ़र्म का नाम ही होता है। फिर, यह तर्क भी दिया जा सकता है कि यदि टायर बिजली के बल्ब या औषध-निर्माण

की सच्ची कहानी प्रस्तुत करने में थोड़ा सा प्रत्यक्ष विज्ञापन भी हो तो उससे विशेष हानि नहीं होती। यह निस्संदेह आवश्यक है कि अध्यापक इस बात की पूरी-पूरी जाँच करके आश्वस्त हो ले कि जिस व्यवसायिक फिल्म का प्रयोग किया जा रहा है वह सम्बन्धित पाठ को सार्थक बनाने के लिए उपलब्ध सर्वोत्तम साधन है और उसमें कोई भी असत्य बात नहीं है।

बच्चों की फ़िल्में

यद्यपि बच्चों की फिल्मों की चर्चा शैक्षणिक फिल्मों के अन्तर्गत नहीं की गई, फिरभी शिक्षा के क्षेत्र में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में वे बड़ी सहायक होती हैं। राष्ट्र का भविष्य इस बात पर निर्भर है कि बच्चों को, उनके जीवन के सर्वाधिक विकास-काल में, किस प्रकार स्वस्थ विचारों से पुष्ट किया जाता है। इस कथन में निस्सन्देह अत्युक्ति है कि चौथे या पाँचवें वर्ष में ही बच्चा पूर्ण विकसित मनुष्य बन जाता है। फिरभी यह बात निश्चित है कि पर्यावरण की स्थितियों और प्रभावों की सर्वाधिक ग्रहणशीलता बाल्यावस्था में ही होती है।

वयस्कों के दृष्टिकोण से बनाई जानेवाली फिल्में बच्चों पर जो हानिकर प्रभाव डालती हैं उनके प्रति अब सारे संसार के विचारशील माता-पिता सजग हो गए हैं। ब्रिटेन और अमरीका जैसे देशों में इस दुष्प्रभाव की व्यापकता आँकने के प्रयत्न किए गए हैं। इस क्षेत्र में शोध-कार्य करनेवाले सभी लोगों ने अपराध वृत्ति और कामाचार सम्बन्धी कुछ व्यवसायिक फिल्मों के अवांछनीय प्रभावों का सर्वसम्मति से निर्देश किया है। वयस्क और जिनकी मानसिक पृष्ठभूमि पर्याप्त सुदृढ़ हो चुकी हो ऐसे बच्चे, भले ही इस प्रकार के दृश्यों से प्रभावित न हों, किन्तु अधिकांश बच्चों के सम्बन्ध में बात बिल्कुल विपरीत है। ब्रिटेन में बच्चों और सिनेमा की समस्या का अध्ययन करने के लिए नियुक्त की गई व्हीर कमेटी ने कहा था: "सभी फिल्में बच्चों को नियमित रूप से यह सुझाती रहती हैं कि जीवन के उच्चतम मान-मूल्य हैं सम्पत्ति, शक्ति, विलास और थोथा जन-सम्मान या चापलूसी, और इनकी उपलब्धि किस प्रकार हो या इनका उपयोग किस प्रकार किया जाए इसका सोच-विचार व्यर्थ है.........हमें यह विश्वास हो गया है कि अयथार्थ मान-मूल्यों का नियमित चित्रण अपराध अथवा अभद्रता के चित्रण की अपेक्षा कहीं अधिक विकृतिकारक और घातक है।"

यद्यपि हमारे देश के सेंसर सम्बन्धी नियमों के अनुसार बच्चों को कुछ व्यवसायिक फिल्में दिखाना निषिद्ध है, फिरभी सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए प्रमाणीकृत फिल्मों में भी

ऐसे विषय हो सकते हैं जो बच्चों की समझ से परे हों या मान-मूल्यों के सम्बन्ध में ऐसी फिल्में बच्चों को विकृत-बोध देती हों। मैरी फ़ील्ड ने ठीक ही कहा है: "कथानक, चरित्र और उद्देश्य सभी उनकी अनुभूति के दायरे से बाहर होते हैं। और जब पर्दे पर प्रदर्शित फिल्म उनकी समझ में नहीं आती तब वे दो में से एक बात कर सकते हैं: आँखों को मनोरंजन और कुतूहल की अनुभूति होने दें और मस्तिष्क को निष्क्रिय और शून्य बना रहने दें; या फिर ऊब उठें, शोर मचाएँ और स्वयं अपने लिए तथा समीप के और लोगों के लिए परेशानी का कारण बन जाएँ।.........किन्तु यदि बच्चों को उबाना बुरा है तो पहला विकल्प तो और भी हानिकारक है। सक्रिय होने और फिल्म का आनन्द लेने के लिए जो बच्चे सिनेमा जाते हैं उन्हें शून्य-मस्तिष्क लिए निष्क्रय होकर बैठे रहने देना एक अपराध ही है।" जनवरी सन् १९६१ में चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी द्वारा "द रोल आफ़ चिल्ड्रेन्स फिल्म इन द डेवलपमेंट आफ़ द पर्सनैलिटी आफ़ द चाइल्ड" (बच्चे के व्यक्तित्व-विकास में बच्चों की फिल्मों की भूमिका) विषय पर दिल्ली में आयोजित एक विचार-गोष्ठी में शिक्षक संगठनों के विश्व-संघ के अध्यक्ष सर रोनाल्ड गोल्ड ने अपने विचार व्यक्त करते हुए ब्रिटेन की पार्लियामेंट के सदस्य डाक्टर होरेस किंग के निम्नलिखित शब्दों को उद्धृत किया था: "अपने मन से मैं यह चित्र कभी नहीं भुला सकता कि सिनेमा में बैठे हुए छोटे-छोटे बच्चे प्रसन्नता के साथ फिल्म देखने और उससे वस्तुतः यथावांछित आनन्द उठाने के बदले उस पर्दे से जान बचाने की कोशिश में लगे हैं जिससे उनका मनोरंजन होना चाहिए। वे अँगुलियों के बीच से झाँककर देखते हैं कि उनके लिए अरुचिकर दृश्य समाप्त हुआ या नहीं।"

बच्चों को विशेषरूप से उन्हीं के लिए बनाई गई फिल्में उपलब्ध होनी चाहिए। ऐसी फिल्मों को शैक्षणिक फिल्में मान लेने की भूल नहीं होनी चाहिए। बच्चों की फिल्मों का प्रमुख उद्देश्य है उनके लिए स्वस्थ मनोरंजन देना जिससे उनके मस्तिष्क का विकास हो सके। वास्तव में यह एक अनौपचारिक शिक्षा है। भारत के उपराष्ट्रपति-पद से डाक्टर राधाकृष्णन् ने बिल्कुल ठीक कहा था: "यद्यपि राष्ट्र के कल्याण के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं, फिरभी पर्यावरण में परिवर्तन लाने की अपेक्षा लोगों की प्रकृति में परिवर्तन लाना कहीं अधिक आवश्यक है। पर्यावरण का रूपान्तरण करने की अपेक्षा मनुष्य का ही रूपान्तरण करना अधिक आवश्यक है। यदि हम लोगों के मन को, उनके हृदय को नहीं बदल सकते, तो अन्य किसी चीज़ में भी परिवर्तन नहीं कर सकते; और

लोगों के मन को, उनके हृदय को परिवर्तित करने के अनेक साधन हैं। उन सब साधनों में सर्वाधिक शक्तिपूर्ण साधन है फिल्म, विशेषकर बच्चों के लिए बनाई गई फिल्म।"

बच्चों की फिल्मों के लिए भारत में तमाम उच्चकोटि की सामग्री हितोपदेश में और विक्रमादित्य की कहानियों में भरी पड़ी है। ये कहानियाँ निश्चय ही बच्चों को प्रेम, ईमानदारी, साहस, सत्यनिष्ठा, सहनशीलता, दयालुता, और विनयशीलता जैसे सद्‌गुणों की सीख देती हैं। यह निर्विवाद है कि चरित्र सम्बन्धी जो भी पाठ हम बच्चों को पढ़ाना चाहें उन्हें बच्चों के सामने प्रस्तुत कर दें। यदि हम चाहते हैं कि बच्चों में दूसरों का ध्यान रखने की भावना उत्पन्न हो तो, उन्हें दूसरों का ध्यान रखने का आदेश देकर नहीं, बल्कि उनके सामने दूसरों का ध्यान रखने के ठोस उदाहरण प्रस्तुत करके ही हम अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हमारे देश के बच्चों के लिए ऐसी फिल्मों की विशेष आवश्यकता है जो ऐतिहासिक रुचि जागृत करें और ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण करें जिनमें हमारे पूर्वजों के गौरवपूर्ण कृत्यों का समावेश हो। स्वाधीनता के ऐतिहासिक संग्राम में हमारे यशस्वी नेताओं ने जो बलिदान किए और आर्थिक क्षेत्र में हमने जो प्रगति की—उन सब पर बच्चों के लिए उपयोगी और मनोरंजक फिल्में बनाई जा सकती हैं। परी कथाओं पर बनी फिल्में बच्चों की कल्पनाशक्ति को बहुत प्रभावित कर सकती हैं; पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि ऐसी फिल्में यथार्थ की ऐसी सीमाओं का उल्लंघन न कर जाएँ कि बच्चों के सम्मुख संसार का भ्रामक चित्र प्रस्तुत हो। अभिनीत चरित्रों के साथ तादात्म्य स्थापित करके बच्चे उनके हर्ष-विषाद में सम्मिलित हो जाते हैं। एवरेस्ट विजय, संकटों से दूसरों की रक्षा, मानवता के कल्याणार्थ किसी नवीन आविष्कार के लिए उत्सर्ग—आदि साहसपूर्ण सिद्धियों की कथा चित्रित करनेवाली फिल्में बच्चों में ऐसे कार्यों के लिए प्रेरणा उत्पन्न करती हैं। यात्रा की कहानियों, भारत के विभिन्न भागों अथवा अन्य देशों के बच्चों से संबंधित भौगोलिक जानकारी देनेवाली फिल्में बच्चों के लिए अमूल्य होती हैं। प्रसिद्ध अँगरेज़ दार्शनिक बर्ट्रैण्ड रसेल ने ठीक ही कहा है: "यात्रा से सम्बद्ध होते ही भूगोल का विषय प्रायः प्रत्येक बच्चे के लिए रुचिकर हो जाता है। मैं भूगोल का अध्यापन अंशतः चित्रों और यात्रा-वृत्तान्तों की सहायता से, किन्तु मुख्यतः सिनेमा की सहायता से करना पसन्द करूँगा जिसमें बच्चों को वह सब दिखाया जाए जो यात्री को यात्रा में देखने को मिलता है।" इस प्रकार की भौगोलिक फिल्में बच्चों को भौगोलिक ज्ञान सार्थक और आनन्ददायक ढंग से ही उपलब्ध नहीं कराती, बल्कि उनमें

भाईचारे की भावना उत्पन्न करने में भी सहायक होती हैं, और यह अधिक महत्त्वपूर्ण है। दिल्ली की चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी द्वारा निर्मित कुछ फिल्मों पर टीका करते हुए नोबेल पुरस्कार-विजेता फ़ादर पाइरे ने कहा है : "........संसार अचानक छोटा बन गया है। उसमें बड़ा राग-द्वेष है ; कितनी ही खाइयाँ हैं जो मानवजाति को विभाजित करती हैं। बच्चों के लिए निर्मित आपकी फिल्मों से बच्चों को विश्व के भूगोल का परिचय ही नहीं मिलना चाहिए, उन्हें मनुष्यों का परिचय प्राप्त होना चाहिए। एक दूसरे से अधिक अच्छी तरह परिचित होने के परिणामस्वरूप राग-द्वेष की विभेदक खाइयों और तनावों की कमी होगी ; यह भी सम्भव है कि दूसरों के प्रति अधिकाधिक अभिरुचि के साथ पारस्परिक सच्ची मैत्री भी उत्पन्न हो।"

ऊपर जिन विषयों को बच्चों के लिए उपयुक्त बताया गया है वे स्पष्टतः सयाने बच्चों के लिए हैं। छोटे बच्चे तो रंग और गतिशीलता पसन्द करते हैं, कहानी समझने की चिन्ता उन्हें नहीं होती। उनके लिए तो पुतली-फिल्में, हास्यचित्र और पशुओं तथा पक्षियों की फिल्में विशेषरूप से उपयुक्त होती हैं। ये फिल्में पन्द्रह-बीस मिनट से अधिक लम्बी नहीं होनी चाहिए।

सौन्दर्यानुभूति की दृष्टि से बच्चों की फिल्में यथासंभव आनन्ददायक होनी चाहिए। ध्यान रखने की बात है कि फिल्मों के कथानक अथवा उनमें निहित गुणों और महान विचारों की अपेक्षा उनकी कला और गतिशीलता के कारण ही बच्चे उनकी ओर अधिक आकृष्ट होते हैं। इसलिए बच्चों की फिल्मों के निर्माण में नवीनतम तकनीकों और उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिए। रंगीन फिल्में बच्चों की सौन्दर्य-भावना को प्रभावित करती हैं इसलिए जहाँ तक सम्भव हो, बच्चों की फिल्में प्राकृतिक रंगों में होनी चाहिए। प्राकृतिक रंगों में बनी फिल्में आकर्षक ही नहीं होती, अधिक यथार्थ भी प्रतीत होती हैं।

पिछले कुछ दशकों में बच्चों के लिए अनेक अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। बच्चों के मन में नए सुझावों और मान-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में इन पुस्तकों से निस्संदेह सहायता मिली है। बच्चों की मानसिक अभिवृत्तियों के निर्माण के सर्वाधिक प्रबल साधन—अर्थात् फिल्मों द्वारा इनकी पूर्ति करने की आवश्यकता अब सारे संसार में तेज़ी के साथ अनुभव की जा रही है। आशा की जाती है कि एक सुनियोजित योजना के अनुसार स्कूलों और सिनेमाघरों में नियमित प्रदर्शन के लिए बच्चों के योग्य फिल्में पर्याप्त संख्या में शीघ्र ही तैयार की जाएँगी।

एक और महत्त्वपूर्ण बात है। यद्यपि पुस्तकें और फिल्में बच्चों के चरित्र-निर्माण में सहायक हो सकती हैं, फिरभी घर पर माता-पिता से उनको मिलनेवाले मार्गदर्शन का महत्त्व भी कम नहीं है। किन्तु सच तो यह है कि अपने बच्चों के मन की क्रियाशीलता को समझने के लिए स्वयं माता-पिता को ही कुछ मार्ग-दर्शन की आवश्यकता होती है, इसलिए माता-पिता के लिए भी फिल्में होनी चाहिए।

जनता और सरकार का ध्यान केन्द्रित करने के लिए दिल्ली की एक स्वैच्छिक संस्था-कल्चरल फिल्म सोसायिटी ने सन् १९५२ में एक फिल्म फ़ेस्टिवल (फिल्म-मेला) आयोजित किया था। माता-पिता के साथ अनेक बच्चों ने इस मेले के प्रदर्शनों को देखा। एक वर्ष बाद दिल्ली में बच्चों की फिल्मों का एक और उत्सव हुआ। इस उत्सव का उद्घाटन करते हुए डाक्टर राधाकृष्णन् ने कहा था: "जब हम अपने राष्ट्र के सामने कुछ महान आदर्श रखने की बात कहते हैं, तो वे पुस्तकों या हमारे संविधान में उल्लिखित हो जाने से ही जीवन्त, सक्रिय अथवा यथार्थ नहीं बन जाते। देशवासियों द्वारा उन आदर्शों को आत्मसात् किया ज़ाना चाहिए। चित्रों, साहित्य या सिनेमा आदि में जिस प्रकार इन आदर्शों को अंकित अथवा चित्रित किया जाता है उससे यह आत्मीकरण, न्यूनाधिक रूप में अनायास ही हो जाता है। इसलिए यदि आप अपने बच्चों को मानवीय गरिमा, मानव-अधिकार, सच्चाई और सत्यनिष्ठा की आवश्यकता के सम्बन्ध में ज्ञान देना चाहें तो सच बोलने या पड़ोसी को प्यार करने का निदेश देकर ऐसा नहीं किया जा सकता। फिल्मों के द्वारा उनके सामने सचाई और सत्यनिष्ठा के ठोस उदाहरण प्रस्तुत करके ही इसे सिद्ध किया जा सकता है।"

सन् १९५४ में दिल्ली में बच्चों के लिए एक सिनेमाघर खोला गया किन्तु उपयुक्त फिल्मों की कमी के कारण वह बहुत सफल नहीं हुआ। तीसरा फिल्मोत्सव दिसम्बर १९५४ में श्रीमती इन्दिरा गान्धी की अध्यक्षता में आयोजित किया गया। यह आयोजन नव-निर्मित सप्रू भवन के दर्शककक्ष में सम्पन्न हुआ। उस उत्सव के अन्तिम प्रदर्शन के समय तत्कालीन सूचना और प्रसारण मंत्री डाक्टर बी० वी० केसकर ने घोषणा की थी कि सरकार का इरादा चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी के नाम से एक संस्था स्थापित करने का है। इस सोसायिटी ने मई १९५५ से दिल्ली में अपना काम प्रारम्भ कर दिया था। इस अल्प अवधि में ही चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी ने प्रशंसनीय प्रगति की है और स्थायी महत्त्व की कई फिल्में बनाई हैं। सोसायिटी के कार्य की सराहना हमारे देश

में ही नहीं, विदेशों में भी हुई है। वेनिस में आयोजित बच्चों की फिल्मों की नवीं अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में सोसायिटी द्वारा निर्मित पहली फिल्म 'जलदीप' को "उसकी मोहकता और उदार भावनाओं के उदात्तीकरण के लिए" प्रथम पुरस्कार दिया गया था।

सोसायिटी द्वारा निर्मित फिल्मों की सम्पूर्ण सूची इस प्रकार है :

(१) जल दीप
(२) चार दोस्त
(३) बच्चों से बातें
(४) स्काउट कैम्प
(५) गंगा की लहरें
(६) हरिया
(७) गुलाब का फूल
(८) यात्रा
(९) गुरु-भक्ति
(१०) सरल विश्वास
(११) बाल रामायण
(१२) रामशास्त्री का न्याय
(१३) ईद मुबारक (अखिल भारतीय योग्यता-प्रमाणपत्र प्राप्त)
(१४) २६ जनवरी
(१५) पंचतंत्र की एक कहानी
(१६) मीरा का चित्र
(१७) दिल्ली की कहानी (अखिल भारतीय योग्यता-प्रमाणपत्र प्राप्त)
(१८) वीर पुरुष
(१९) एकता
(२०) चेतक
(२१) न्याय
(२२) छत्रपति शिवाजी महाराज
(२३) द स्टोरी आफ़ टू स्टैम्प्स

(२४) सावित्री

(२५) महा तीर्थ

(२६) बापू ने कहा था

(२७) राजू और गंगाराम

(२८) हमें खेलने दो

(२९) चतुर बालक

(३०) बूँद-बूँद से सागर

(३१) पाँच पुतलियाँ

(३२) मंकी ऐण्ड द क्रोकोडाइल

(३३) दीपक

(३४) बाल समाचार चित्र नं० १

(३५) राहुल मातृ-भक्ति

(३६) ऐडवेंचर आफ़ ए शुगर डॉल

(३७) मास्टर जी

(३८) कुत्ते की कहानी

(३९) वह काटा

(४०) अनमोल मोती

(४१) डाकघर

(४२) बर्थ डे

(४३) चंचल का सपना

(४४) जैसे को तैसा

(४५) शरारत

(४६) बन्दर मेरा साथी

ऊपर लिखी हुई सभी फिल्में हिन्दी में हैं। बाद में बनी कुछ फिल्में देश की सभी प्रमुख भाषाओं में हैं। कुछ फिल्मों का भाषान्तर अँग्रेज़ी में भी किया गया है। सोसायिटी की योजना है कि ज्यों ही पर्याप्त धन की व्यवस्था हो जाए, सभी पूर्व-निर्मित फिल्मों का भाषान्तर देश की सभी प्रमुख भाषाओं में किया जाए। यह प्रयत्न भी किए जा रहे हैं कि संसार के विभिन्न

भागों से बच्चों की सर्वोत्तम फिल्में प्राप्त करके देश के बच्चों के लिए उन्हें भारतीय भाषाओं में रूपान्तरित कर लिया जाए।



अँगरेज़ी फिल्म "बुश क्रिस्मस" का एक दृश्य।
चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी ने इस फिल्म का हिन्दी रूपान्तर तैयार कर लिया है।

देश भर में बच्चों की फिल्मों का आन्दोलन संगठित करने के लिए इस सोसायिटी ने राज्य-समितियाँ संगठित की हैं। अपने-अपने राज्य में ये समितियाँ स्कूलों और सिनेमाघरों में नाममात्र प्रवेश-शुल्क लेकर फिल्मों के प्रदर्शन की व्यवस्था करती हैं।

शुरू-शुरू में, बच्चों की फिल्मों के निर्माण में ब्रिटेन, रूस, चेकोस्लोवाकिया और फ़्रांस अग्रणी रहे हैं और दृश्य-श्रव्य शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान के फिल्म-पुस्तकालय ने इन देशों की कुछ उत्कृष्ट फिल्में प्राप्त कर ली हैं। इनमें से कुछ फिल्में हैं : 'बुश क्रिस्मस',

'फ़ार्च्यून लेन', 'जीन्स प्लान', 'बिम', 'सर्कस ब्वाय', 'प्राउड प्रिंसेज़', 'ब्वाएल, ब्वाएल, लिटिल पॉट', और 'द ब्वाय हू स्टाण्ड नायगरा'।

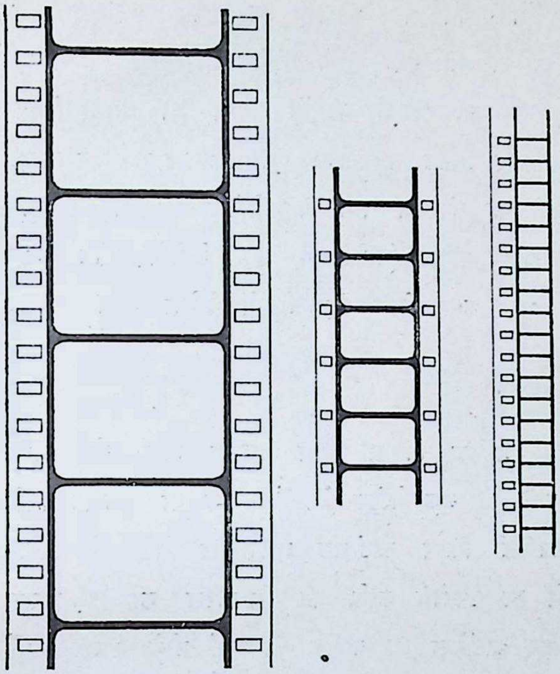


'ब्वायल, ब्वॉयल, लिटिल पॉट' नामक फिल्म का एक दृश्य।
(शै० अ० प्र० रा० परिषद् के दृश्य-श्रव्य शिक्षा विभाग के सौजन्य से)

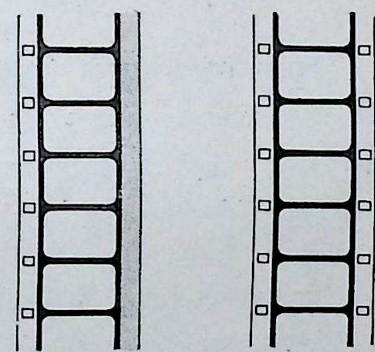
फिल्मों के आकार-प्रकार

फिल्में विभिन्न आकारों की होती हैं—१६ मि० मी०, ३५ मि० मी०, और ८ मि० मी०। शैक्षणिक फिल्मों के लिए अब सामान्यतः १६ मि० मी० मानक आकार बन गया है और सिनेमाघरों में दिखाई जानेवाली फिल्मों के लिए ३५ मि० मी० मानक आकार माना जाता है। यद्यपि ८ मि० मी० की फिल्मों का उपयोग पिछले कुछ दिनों अव्यवसायिक लोग घरेलू फिल्मों के उत्पादन में ही करते रहे हैं, फिरभी इनका उपयोग शिक्षा-क्षेत्र में भी लाभदायक ढंग से किया जा सकता है।

फिल्में दो प्रकार की होती हैं : मूक फिल्में और सवाक् फिल्में। मूक-फिल्मों से सबसे बड़ा लाभ यह है कि उन्हें शिक्षण की विभिन्न स्थितियों के अनुरूप बनाया जा सकता है क्योंकि अवसर तथा स्थिति के अनुसार अध्यापक उपयुक्त वार्ता दे सकता है।



३५, १६ और ८ मि० मी० की फिल्में



१६ मि० मी० की मूक और सवाक् फिल्में

सवाक् फिल्म में फिल्म के एक ओर ध्वनि का रेकार्ड रहता है। सवाक् फिल्म से होने वाला प्रधान लाभ यह है कि इससे चित्र की यथार्थता बढ़ जाती है।

८ मि० मी० फिल्मों का वढ़ता हुआ उपयोग

पिछले कुछ वर्षों में नाटकीय तकनीक में हुई प्रगति के कारण अब ८ मि० मी० फिल्में केवल अव्यवसायी लोगों के उपयोग की नहीं रह गईं। शिक्षा के क्षेत्र में भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया है। अधिकांश प्रगतिशील देशों में इस साधन के प्रति अब

अधिक रुचि दीख पड़ती है। जापान ने ८ मि० मी० की मूक और सवाक् शैक्षणिक फिल्मों के अपने वृहद् संग्रह में वृद्धि करने की योजना बनाई है। ब्रिटेन और अमरीका में एक ऐसे मूक प्रक्षेपी का व्यापक उपयोग किया जा रहा है जिसमें ८ मि० मी० वाली फिल्म-पेटिका चढ़ा दी जाती है। लगभग चार मिनट चलनेवाली ऐसी फिल्म प्लास्टिक की एक छोटी पेटी में बन्द रहती है। प्रक्षेपी का संचालन तथा फिल्म-पेटिका का चढ़ाना बहुत सरल है। इस प्रक्षेपी का पृष्ठ-प्रक्षेपण मॉडेल (मॉडेल ८००ई), टेलीविज़न-सेट जैसा लगता है और ऐसे कमरों में भी काम देता है जिनमें अँधेरा नहीं किया जा सकता।

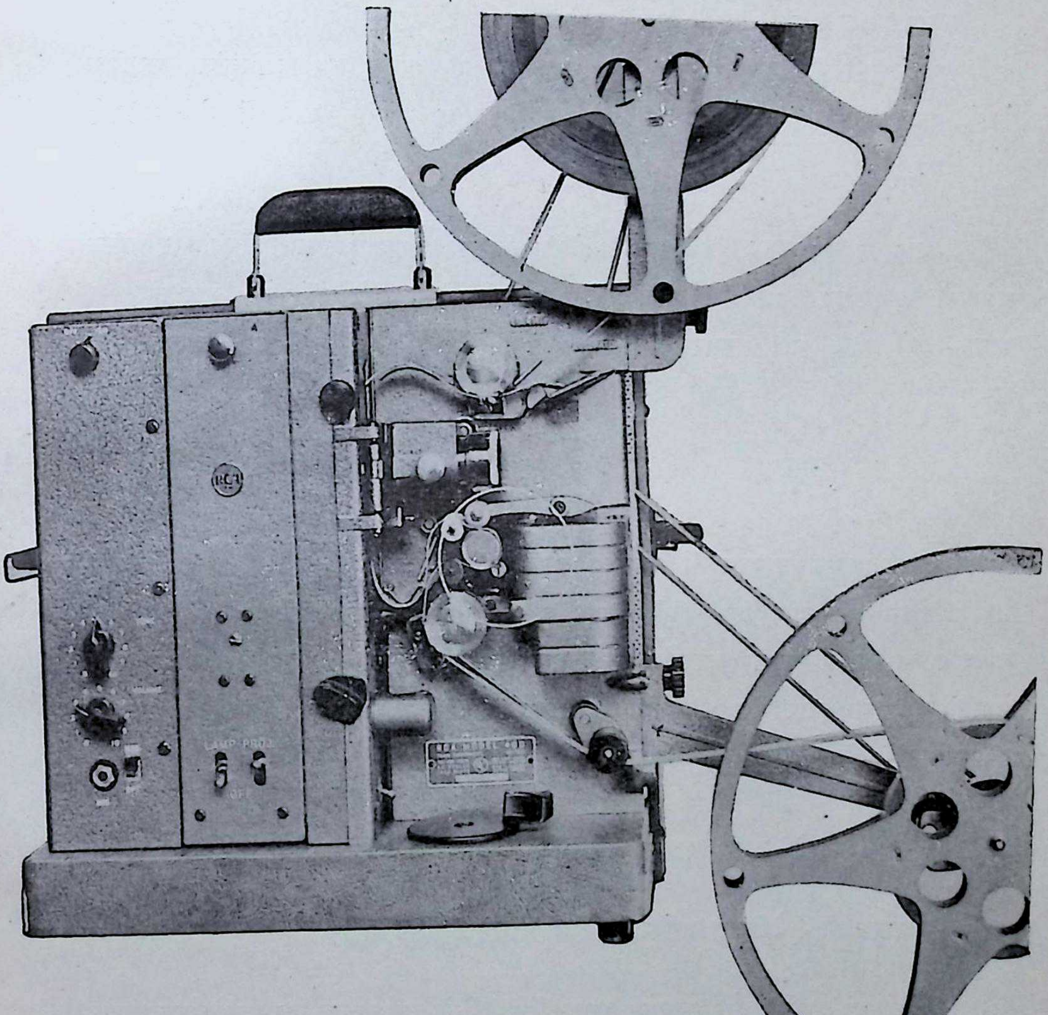
'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका फिल्म्स', 'मैक्ग्राहिल फिल्म्स' तथा 'नेशनल फिल्म बोर्ड आफ़ कनाडा' नामक संस्थाओं ने ८ मि० मी० की मूक पेटिका फिल्में बनाने या वितरित करने की योजनाएँ घोषित की हैं। 'यूनिवर्सिटी फिल्म काउंसिल आफ़ ग्रेट ब्रिटेन' ने विश्व-विद्यालयों में ८ मि० मी० की फिल्मों का उपयोग करने की सिफ़ारिश की है। सन् १९६४ में लीसेस्टर विश्वविद्यालय में हुई काउंसिल की वार्षिक बैठक में नीचे लिखी बातें नोट की गई थी :

"इसका विशिष्ट योगदान यह मालूम होता है कि कुछ शैक्षिक स्थितियों के लिए सठीक फिल्में अपेक्षाकृत कमखर्च और आसानी से तैयार करने में अध्यापकों को व्यक्तिशः कितना समर्थ बनाएगी। शोध-प्रायोजनाओं के क्षेत्र में, हल्कापन सरलता और सस्तापन महत्त्वपूर्ण गुण होते हैं। चौड़े गेज़ की आवश्यकता नहीं होती।"[१६]

आजकल दो प्रकार के ८ मि० मी० ध्वनि प्रक्षेपी उपलब्ध हैं : एक वे जिनमें फिल्म पेटिका चढ़ा दी जाती है और दूसरे वे जिनमें रील का उपयोग किया जाता है। दूसरे प्रकार के प्रक्षेपी में भी फिल्म चढ़ाने की समस्या नहीं रहती। फिल्म को एक छेद में बैठा दिया जाता है। और जब प्रक्षेपी को चालू करने वाला बटन दबाया जाता है तो फिल्म अपने आप चढ़ने लगती है। यह मशीन प्रकाशीय और चुम्बकीय-दोनों ध्वनि-पथों की सँभाल कर सकती है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि चुम्बकीय-पथ वाली फिल्मों से अधिक साफ़ आवाज़ आती है, पर वे खर्चीली होती हैं।

१६। विज़ुअल एजुकेशन (अगस्त-सितम्बर, १९६४)

८ मि० मी० फिल्मों के बढ़ते हुए उपयोग के कारण अमरीका के कुछ फिल्म-अभियंता अब इस मत के समर्थक हैं कि यदि दाँता-छेदों के आकार को घटाकर चित्र के आकार को बढ़ाया जा सके तो इन फिल्मों के चित्र और अधिक स्पष्ट आ सकेंगे। अधिक स्पष्ट चित्र निर्विवाद रूप से अधिक अच्छे होंगे, किन्तु यदि फिल्म का यह नया रूपाकार सचमुच ही अपना लिया गया तो पहले से मौजूद ८ मि० मी० वाले लाखों प्रक्षेपियों और कैमरों के उपयोग के लिए एक समस्या पैदा हो जाएगी।



आर० सी० ए० ४०० सीनियर साउण्ड प्रोजेक्टर (ध्वनि प्रक्षेपी)।
(जनरल रेडियो ऐण्ड ऐप्लाएँसेज़ (प्रा०) लि०, कलकत्ता के सौजन्य से)

प्रक्षेपी के आकार और प्रकार

फिल्में तीन आकार की बनती हैं। इस कारण इन के लिए तीन आकार के प्रक्षेपी भी हैं। चूँकि १६ मि० मी० फिल्में शैक्षणिक फिल्मों के लिए मानक मानी गई हैं, इसलिए शैक्षणिक संस्थाओं में उपयोग के लिए १६ मि० मी० प्रक्षेपी को भी मानक मान लिया गया है।

मूक और सवाक्-फिल्मों के अनुरूप मूक और सवाक्-प्रक्षेपी भी हैं। अधिकांश शैक्षणिक संस्थाओं में अब मूक प्रक्षेपी नहीं खरीदे जाते क्योंकि अब अधिकांश शैक्षणिक फिल्में सवाक् होती हैं। सवाक्-प्रक्षेपी पर मूक फिल्म का उपयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

आज के सुकर १६ मि० मी० ध्वनि-प्रक्षेपी कुछ वर्ष पहले के भारीभरकम और जटिल प्रक्षेपियों से बिल्कुल भिन्न हैं। निर्माताओं द्वारा दिए गए निदेशों का सावधानी से पालन कर कोई भी अध्यापक दो-तीन दिनों में इन प्रक्षेपियों का संचालन सीख सकता है।

चुम्बकीय ध्वनि-प्रक्षेपी

इस आधुनिक उपकरण में अध्यापक को यह सुविधा रहती है कि वह फिल्म के साथ अपनी टिप्पणी भी जोड़ दे। इसके लिए फिल्म में एक चुम्बकीय पट्टी जोड़नी पड़ती है। चुम्बकीय ध्वनि-प्रक्षेपी बहुत क़ीमती नहीं होता। फिरभी २० पैसे प्रति फ़ुट पट्टी लगाने का मूल्य हमारे देश की शैक्षणिक संस्थाओं के लिए अधिक है। मूक फिल्मों और सवाक्-फिल्मों—दोनों में ही पट्टी लगाई जा सकती है।

१६ मि० मी० ध्वनि-प्रक्षेपी का संचालन

अध्यापक को नीचे लिखी बातें मालूम होनी चाहिए :

(१) मशीन को कैसे जामाया जाए (प्रक्षेपी को एक मज़बूत मेज़ पर रखना चाहिए ; यदि प्रक्षेपी का लेन्स दो इंच का हो तो मेज़ की अगली कोर से पर्दे की दूरी, पर्दे की चौड़ाई की लगभग छः गुनी होनी चाहिए। वक्ता को पर्दे के ठीक पीछे फ़र्श से लगभग चार फ़ुट ऊपर रखना चाहिए) ;

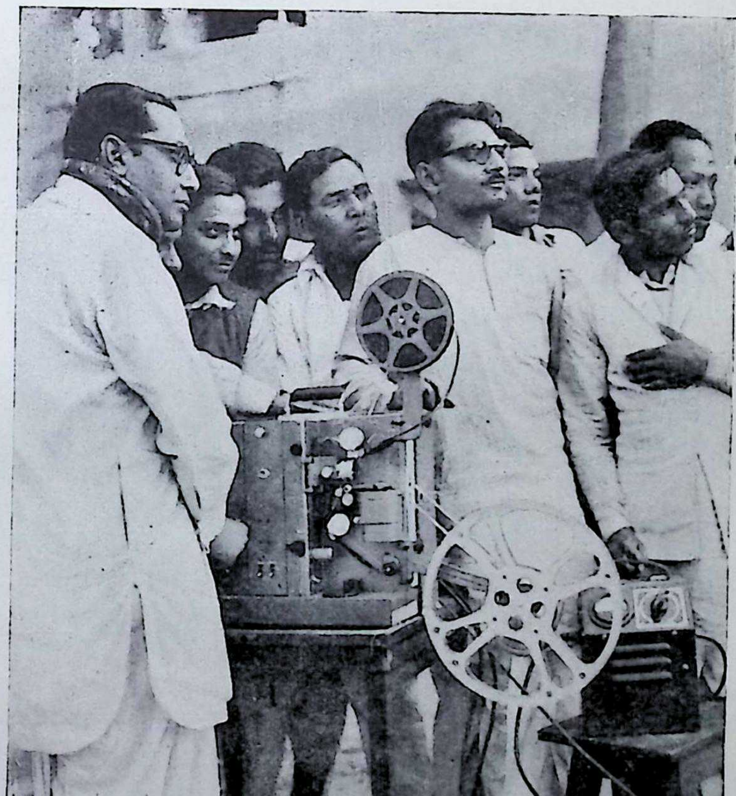
(२) रील को प्रक्षेपी पर कैसे लगाया जाए और कमानीपट्टियों को उनकी घिरनियों पर कैसे चढ़ाया जाए ;

(३) बिजली के शक्ति-तार और ध्वनि-तार कैसे जोड़े जाएँ ;

(४) फिल्म को प्रक्षेपी से कैसे जोड़ा जाए ;

(५) ठीक-ठीक विद्युत-दाब का उपयोग कैसे किया जाए ;

(६) प्रक्षेपी को संचालित कैसे किया जाए (प्रवर्धक बटन दबाएँ और ध्वनि-निर्देशक बत्ती के जलने की प्रतीक्षा करें। फिर, यह देखकर कि गति संवरक अपने स्थान पर है और फिल्म ठीक ढंग से लगी है, मोटर चालू कर दें और प्रक्षेपी को चलाने के लिए लैंप का बटन दबा दें।



सामाजिक शिक्षा के आयोजकों को १६ मि० मी० ध्वनि-प्रक्षेपी के संचालन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। (सामाजिक शिक्षा आयोजक प्रशिक्षण केन्द्र, बेलूर मठ के सौजन्य से)

(७) फ़ोकस कैसे किया जाए (शीर्षक अथवा चित्र के अन्य मुद्रित अंश फ़ोकस के लिए उपयुक्त होते हैं) ;

(८) ध्वनि-मात्रा के और स्वर के नियंत्रकों का उपयोग कैसे किया जाए ;

(९) मशीन को झुकाया कैसे जाए ;

(१०) मशीन की सहायता से और हस्तचालित उलट लपेट से फिल्म को उलटकर कैसे लपेटा जाए ;

(११) प्रक्षेपी को बन्द कैसे किया जाए (प्रक्षेपी लैम्प बुझा दें, प्रवर्धक स्विच भी बन्द कर दें और आवाज़ बन्द होते ही मात्रा-नियंत्रक को '०' पर ले आएँ। फिर दो-तीन मिनट प्रतिक्षा करने के बाद मोटर बन्द कर दें) ;

(१२) ट्यूब, प्रक्षेपी लैम्प और ध्वनि-निर्देशक लैम्प को कैसे बदला जाए ; और

(१३) प्रक्षेपी, स्पीकर और पर्दे को समेटकर कैसे बाँधा जाए।

१६ मि० मी० प्रक्षेपियों की रीलें

सामान्यतः फिल्म की रीलें ४००फ़ुट, ८००फ़ुट और १२००फ़ुट लम्बी होती हैं। अधिकांश १६ मि० मी० प्रक्षेपियों में इन सभी रीलों का उपयोग किया जा सकता है। ४००फ़ुट लम्बी ध्वनि-रील लगभग १० मिनट चलती है। इतनी ही लम्बी मूक रील के प्रक्षेपण में लगभग १५ मिनिट लगते हैं।

१६ मि० मी० प्रक्षेपियों के लिए प्रकाश-साधन

१६ मि० मी० फिल्मों के प्रक्षेपण के लिए दो प्रकार के लैम्पों का उपयोग किया जा सकता है। बिजली के सामान्य बल्बों का और व्यवसायिक सिनेमा में प्रयुक्त कार्बन आर्क लैम्प का। अधिकांश १६ मि० मी० प्रक्षेपियों में सामान्य बिजली के बल्बों का उपयोग किया जाता है। कक्षाओं में उपयोग के लिए ७५० वाट का बल्ब पर्याप्त होगा। किसी बहुत बड़े दर्शक-कक्ष में १००० वाट के बल्ब का प्रयोग किया जा सकता है बशर्ते कि इस अधिक शक्ति वाले बल्ब की गर्मी को प्रक्षेपी बर्दाश्त कर सके।

इसमें सन्देह नहीं कि आर्क लैम्प वाला प्रक्षेपी पर्दे पर अधिक स्पष्ट छाया प्रस्तुत करता है। किन्तु वह खर्चीला होता है। उसमें यांत्रिक परेशानी होती है, और उसका

संचालन जटिल होता है। कक्षाओं में प्रयोग के लिए यह ठीक नहीं होता। किसी बड़े दर्शक-कक्ष के अचल संस्थापनों के लिए ही वह उपयुक्त होता है।

प्रक्षेपियों का चुनाव

प्रक्षेपी का चयन करते समय नीचे लिखी बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए:

(१) प्रक्षेपी मज़बूत हो, किन्तु बहुत भारी न हो।

(२) प्रक्षेपण-लैम्प और ध्वनि-लैम्प को आसानी से बदला जा सके।

(३) प्रक्षेपी में उसे झुकाने की व्यवस्था हो।

(४) प्रक्षेपी में ध्वनिवर्धक युक्ति हो ताकि ग्रामोफ़ोन या टेप-रेकार्डर का उपयोग किया जा सके।

(५) स्थिर प्रक्षेपण की भी व्यवस्था उसमें हो।

(६) फिल्म को उलटा लपेटने की युक्ति उसमें हो।

फिल्मों की मरम्मत

सामान्यतः फिल्में अच्छी हालत में ही आती हैं। फिरभी, ऐसे मौक़े आ सकते हैं जब किसी क्षतिग्रस्त या टूटी हुई फिल्म की मरम्मत करनी पड़े। मरम्मत की प्रक्रिया बहुत ही सरल है बशर्ते कि जोड़नेवाला उपकरण (यह उपकरण सस्ता है, लगभग ५० रुपए मूल्य का) और फिल्मी सीमेण्ट की एक बोतल उपलब्ध हो। फिल्मी सीमेण्ट किसी विश्वसनीय दूकान से खरीदनी चाहिए। विषय से संबंधित किसी अच्छी पुस्तिका में जोड़नेवाले उपकरण की प्रयोग-विधि देखी जा सकती है।

प्रक्षेपियों की सँभाल

प्रक्षेपियों की सँभाल के सम्बन्ध में विश्वसनीय पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। प्रक्षेपियों को ठीक-ठीक रखने के इच्छुक सभी लोगों को इन पुस्तिकाओं का अध्ययन सावधानी से करना चाहिए। फिरभी, कुछ बातों का यहाँ उल्लेख करना उपयुक्त होगा:

(१) यदि प्रक्षेपी से लगातार ठीक-ठीक काम लेना हो तो उसे हर समय साफ़ रखना चाहिए। प्रयोग में लाने के बाद उसे तुरंत ही या तो उसके खोल में रख देना चाहिए या ढककर रखना चाहिए। प्रत्येक प्रदर्शन के पहले सभी प्रकाशीय पृष्ठतल लेंस-टिशू से हलके हाथों साफ़ कर देना चाहिए। फिल्म-पथ के पायस-कणों (इमल्शन पार्टिकिल्स) को काठ की या धातु से नरम अन्य किसी चीज़ की बनी खुरचनी से साफ़ कर देना चाहिए।

(२) प्रक्षेपी में आवश्यकता से अधिक तेल कभी न देना चाहिए। निर्माता द्वारा जैसा निर्देश हो उसी के अनुसार तेल देना चाहिए। निर्माता द्वारा दी गई नियम-पुस्तिका में ओंगने का चार्ट रहता है। उसे सावधानी से पढ़ना चाहिए और उसमें दिए गए अनुदेशों का पालन करना चाहिए।

(३) प्रक्षेपी से काम लेने में पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। लापरवाही से काम लेने पर बढ़िया प्रक्षेपी भी यांत्रिक परेशानी पैदा करने लगते हैं।

(४) मशीन को बहुत अधिक झुकाने या मोड़ने के बदले पर्याप्त ऊँचे प्रक्षेपण स्टेण्ड का उपयोग करना चाहिए।

(५) मशीन के लिए किसी एक व्यक्ति को उत्तरदायी बना देना ज़्यादा अच्छा रहता है। जिन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त न हो ऐसे लोगों के हाथ पड़ जाने से प्रक्षेपी बहुधा क्षतिग्रस्त होते हैं।

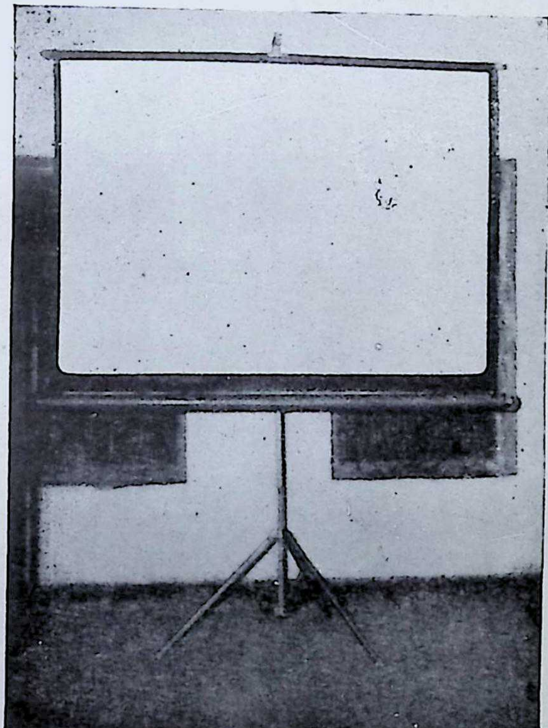
(६) अतिरिक्त बल्ब, ध्वनि-लैम्प, ट्यूब और पट्टे अपने पास रखना बुद्धिमानी होगी। जिन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण न मिला हो ऐसे व्यक्ति भी उन्हें आसानी से बदल सकते हैं।

(७) बिजली के शक्ति-तार और ध्वनि-तार इस ढंग से रखने चाहिए कि कोई उन पर पैर न रख दें। जब काम न हो, इन तारों को सफ़ाई के साथ लपेटकर रखना चाहिए।

(८) ठीक काम देते रहने पर भी प्रतिवर्ष एक बार किसी विश्वसनीय फ़र्म से प्रक्षेपी की सफ़ाई आदि करा लेनी चाहिए।

फिल्मों की सँभाल

फिल्मों को सावधानी से साफ़ हाथों से किनारों से ही पकड़ना चाहिए। उन्हें फ़र्श पर घिसटने देना बहुत बुरी बात है। आवश्यक मरम्मत के लिए समय-समय पर फिल्मों की जाँच करते रहना चाहिए। गन्दी हो जाने पर कार्बन टेट्राक्लोराइड से तर कपड़े की पर्तों के बीच से निकालते हुए फिल्मों को साफ़ कर लेना चाहिए। फिल्मों का संग्रह ऐसे कमरे में रखना चाहिए जिसका तापमान ६५° फ़ैरनहीट से अधिक न हो।



काँच का उभारदार पर्दा। (सामाजिक शिक्षा आयोजक प्रशिक्षण केन्द्र, बेलूर मठ के सौजन्य से)

पर्दे

कक्षा में और बाहर प्रदर्शन के लिए उभारदार पर्दे (मैट-स्क्रीन) की अपेक्षा धूमिल पर्दा (बीडेड-स्क्रीन) अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि उससे सभी दर्शकों को चित्र पर एक-सा प्रकाश दिखाई देता है। धूमिल पर्दे की अपेक्षा केवल उस स्थान पर उभारदार पर्दा अधिक प्रकाशवान रहता है जो पर्दे के केन्द्र से प्रक्षेपी तक जानेवाली रेखा के आसपास होता है।

पर्दे का आकार इतना बड़ा होना चाहिए कि सबसे पीछे की पंक्ति में बैठे हुए लोग फिल्म के शीर्षक का छोटे से छोटा टाइप पढ़ सकें। साधारणतः पर्दे की चौड़ाई-पर्दे से अंतीम पंक्ति तक की दूरी का $\frac{१}{६}$ होनी चाहिए। यदि पर्दा इस अनुपात से बड़ा हो तो कोई हानि नहीं है। सामने की पहली पंक्ति और पर्दे के बीच की दूरी, पर्दे की चौड़ाई के दुगुने से कम न होनी चाहिए।

२२ रेडियो प्रसारण

रेडियो-संचार के आविष्कार का श्रेय अनेक मेधावी व्यक्तियों को है, यद्यपि प्रामाणिक रूप से मार्कोनी को ही इसका आविष्कारक माना जाता है। मार्कोनी ने पहिले-पहिल सन् १८९५ में थोड़ी दूर तक रेडियो-संकेत प्रसारित किए थे। बाद में अतलांतक के पार संकेत प्रसारित करने में उसे सफलता मिली थी। अमरीकी लोगों का दावा है कि उनके वैज्ञानिक इससे पहले ही मानव-स्वरों का प्रसारण और संग्रहण कर चुके थे। इस सन्दर्भ में स्टबलफ़ील्ड का नाम लिया जाता है जो 'हेलो रेनी' शब्दों का प्रसारण करने में हुए थे।

कुछ अक्षमताओं के होते हुए भी, रेडियो शिक्षण का एक शक्तिशाली साधन है। टेलीविज़न द्वारा अपदस्थ होना तो दूर रेडियो का प्रयोग निरंतर बढ़ता जा रहा है। पश्चिम की प्रायः सभी शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षा के सभी स्तरों पर नियमित रूप से रेडियो का उपयोग किया जाता है। किन्तु खेद की बात है कि भारत में ऐसे स्कूलों की संख्या अत्यन्त कम है जिनमें रेडियो का उपयोग कक्षाओं में किया जाता हो। फिरभी, आकाशवाणी के प्रायः सभी केन्द्रों से स्कूलों के लिए नियमित कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश में दृश्य-श्रव्य शिक्षा के विकास की

योजनाओं में एक प्रस्ताव यह भी था कि देश के सभी हाई स्कूलों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में रेडियो-सेट लगाए जाएँ।

रेडियो-पाठों के विभेद

सामान्यतः रेडियो-पाठ दो प्रकार के होते हैं :

(१) ज्ञानवर्धन-पाठ

(२) प्रत्यक्ष शिक्षण-पाठ

पहले प्रकार के पाठों में उन प्रसारणों को शामिल किया जा सकता है जिनका पाठ्यचर्या के विशिष्ट प्रकरणों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, तथापि इन प्रकरणों की पूर्व-पीठिका के रूप में उनसे पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। उदाहरण के लिए, कश्मीर की यात्रा से सम्बन्धित किसी वार्ता को कश्मीर के विषय में भूगोल का पाठ नहीं माना जा सकता, तथापि ऐसी वार्ता भूगोल के पाठ की उपयोगी भूमिका हो सकती है।

संसार के प्रायः प्रत्येक प्रसारण-केन्द्र से ऐसे कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। जिनका स्कूलों की पाठ्यचर्या से प्रत्यक्ष संबंध होता है। विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत ये कार्यक्रम अत्यन्त उपयोगी होते हैं क्योंकि उनके लिए अध्ययन और तैयारी में पर्याप्त समय दिया जाता है। कक्षा में पढ़ानेवाले अध्यापकों को अध्ययन और तैयारी के लिए उतना समय नहीं मिल पाता।

शिक्षा में रेडियो का योग

शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति में रेडियो कई प्रकार से सहायक होता है :

(१) शिक्षा-संस्थाओं को रेडियो संगीत और नाटकों के ऐसे उत्कृष्ट कार्यक्रम सुलभ होते हैं जो स्कूलों में सामान्यतः नहीं सुने जाते।

(२) नाटकीकरण द्वारा रेडियो बच्चों की अभिरुचि और कल्पनाशीलता को जगाता है। इस तरह इतिहास, भूगोल, प्रकृति-निरीक्षण, विज्ञान, साहित्य तथा अन्य विषयों के

प्रकरण उन्हें सरलता से हृदयंगम हो जाते हैं। ऐसा अन्य किसी भी साधन से सम्भव नहीं है। अनेक शिक्षाविद् टेलीविज़न की अपेक्षा रेडियो को अधिक पसन्द करते हैं। रेडियो मानव-स्वर और आवाज़ों को प्रस्तुत करके घटना के मानस-चित्र की कल्पना का काम सुननेवाले बच्चों पर ही छोड़ देता है। इस तरह वह बच्चों की कल्पनाशक्ति को तीव्र करता है।

(३) जो अद्यतन सूचनाएँ और समाचार रेडियो से मिलते हैं उन्हें अन्य किसी साधन से कक्ष में उपलब्ध कर पाना सम्भव नहीं है।

(४) अध्यापकों की सहायता के लिए रेडियो विविध विषयों के विशेषज्ञों को कक्षा में प्रस्तुत कर सकता है और करता है। अध्यापकों से यह आशा नहीं की जाती कि उन्हें प्रत्येक विषय का विशिष्ट ज्ञान होगा।

(५) सम्बन्धित भाषा के नए शब्दों आधुनिक वाक्यांशों, मुहावरों और शुद्ध उच्चारण को सीखने में भाषाओं के रेडियो-कार्यक्रम अध्यापकों और विद्यार्थियों दोनों की सहायता करते हैं।

(६) रेडियो की सहायता से कक्षा में रोचक विविधता उपलब्ध होती है। बच्चे रेडियो सुनना बहुत पसन्द करते हैं और अन्य व्यक्तियों की नवीनता और उपागम के नए ढंग का आनन्द लेते हैं।

स्कूलों के प्रसारणों का उचित उपयोग

यदि स्कूलों के प्रसारणों को कारगर बनाना है तो अध्यापक को उनके उपयोग की एक उपयुक्त योजना बनानी चाहिए। यह प्रक्रिया उन मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार ही सम्पन्न होती है जो सभी दृश्य-श्रव्य साधनों पर लागू होते हैं : चयन, तैयारी, प्रस्तुतीकरण और अनुवर्ती कार्य।

चयन

रेडियो कार्यक्रम का चयन करते समय अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए कि उसे कक्षा के कार्य के साथ किस तरह संबद्ध किया जाय। इसका यह अर्थ नहीं है कि समाचार-प्रसारणों का, कक्षा में पढ़ाए जानेवाले प्रकरणों की भूमिका प्रस्तुत करनेवाले प्रसारणों का अथवा महत्त्वपूर्ण घटनाओं से संबंधित कार्यक्रमों का उपयोग नहीं किया जाएगा।

यह सही है कि फिल्म को पहले देखा जा सकता है पर रेडियो-कार्यक्रम को पहले से सुना नहीं जा सकता ; तथापि प्रसारण-केन्द्रों द्वारा बाँटी जानेवाली स्कूलों के प्रसारण से संबंधित सचित्र पुस्तिकाओं से किसी भी सम्बन्धित प्रसारण की विषयवस्तु का अनुमान लगाया जा सकता है।

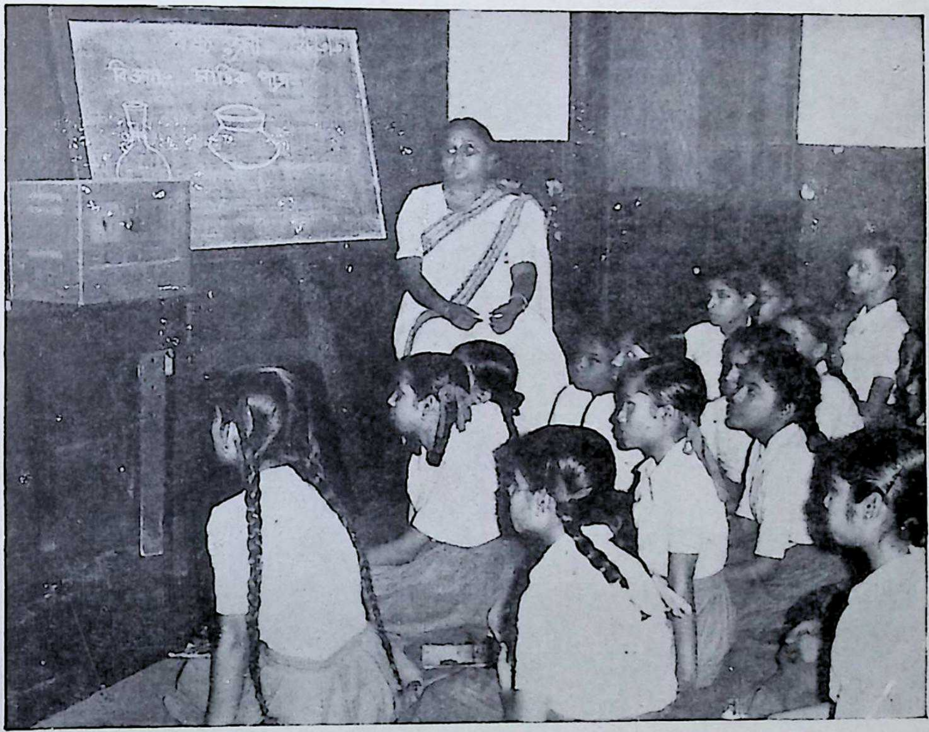
तैयारी

प्रत्येक प्रसारण के लिए तैयारी होनी चाहिए। यद्यपि कक्षा के अध्यापक को पाठ प्रस्तुत नहीं करना पड़ता, फिरभी पाठ की विषयवस्तु का उसे स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए ताकि वह प्रसारण का पूरा-पूरा उपयोग कर सके। स्कूलों के प्रसारणों के सम्बन्ध में प्रसारण-केन्द्रों द्वारा महीनों पहले सचित्र पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। अध्यापक को सतर्कतापूर्वक इनका अध्ययन कर लेना चाहिए ताकि भावी कार्यक्रम के संबंध में विद्यार्थियों की उत्सुकता जाग्रत की जा सके। यदि बच्चों की उत्सुकता और जिज्ञासा जाग्रत न की गई तो शायद कार्यक्रम को भलीभाँति सुना ही न जाय।

प्रस्तुतीकरण

किसी प्रसारण का अधिकतम लाभ उपलब्ध न होने का कारण है अपर्याप्त संग्रहण (रिसेप्शन)। स्कूलों में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संग्राही-सेट उत्तम कोटी का हो और ठीक काम करे। रेडियो इतना शक्तिशाली हो कि कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी कार्यक्रम को साफ़-साफ़ सुन सके। रेडियो सेट की जाँच प्रसारण से ठीक पहले करने के बदले कम-से-कम एक दिन पहले ही कर लेनी चाहिए ताकि किसी भी त्रुटि को सुधारने के लिए पर्याप्त समय मिल सके। नियमित रूप से सफ़ाई/मरम्मत कराते रहने से संग्रहण के स्तर में काफ़ी सुधार हो जाता है। विश्वसनीय घड़ी के अनुसार ठीक समय पर रेडियो चालू करना चाहिए। प्रसारण प्रारम्भ होने से पहले ही ध्वनि-स्तर ठीक कर लेना चाहिए। संग्राही-सेट को कक्षा में सामने रखना चाहिए ताकि विद्यार्थी ध्वनि के स्रोत के देख सकें। सेट को सिर की ऊँचाई से नीचे नहीं रखना चाहिए। प्रसारण के दौरान अध्यापक का कार्य महत्त्वपूर्ण होता है। उसे सतर्क रहना चाहिए और कार्यक्रम में अपनी अभिरुचि दिखलानी चाहिए क्योंकि उसकी अभिवृत्ति भी प्रसारण के लिए एक महत्त्वपूर्ण दृश्य-साधन है। प्रसारण के समय टिप्पणियाँ लेने के संबंध में बच्चों को निरुत्साहित करना चाहिए। लिखने में व्यस्त रहने पर बच्चे प्रसारण की महत्त्वपूर्ण बातें सुनने-समझने से चूक सकते

हैं। अनुवर्ती कार्य, यदि स्मृति में जमी हुई बातों पर निर्भर न रहा तो, सफल नहीं होता। प्रसारण सुनते हुए अध्यापक टीपें ले सकता है किन्तु जब बच्चे सुन रहे हों तब उसे श्यामपट्ट पर कुछ न लिखना चाहिए। प्रसारण के समय पाठ्यपुस्तकों या एटलसों का उपयोग करने की अनुमति भी बच्चों को नहीं देनी चाहिए। ऐसे स्थल निस्सन्देह होते हैं जहाँ अध्यापक एकाध शब्द से बच्चों की तत्काल सहायता कर सकता है।



लो मेमोरियल गर्ल्स स्कूल, कलकत्ता के ये विद्यार्थी एकाग्र मन से एक रेडियो प्रसारण सुन रहे हैं। उनकी अध्यापिका भी उसी प्रकार रुचि ले रही है।

अनुवर्ती कार्य

अनुवर्ती कार्य स्कूलों के प्रसारण का महत्त्वपूर्ण अंग होता है। विषय के अनुसार यह कार्य विभिन्न प्रकार का हो सकता है। सामान्यतः प्रसारण की महत्त्वपूर्ण बातों पर ज़ोर दिया जाता है और प्रसारण के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया जाता है। कभी-कभी विद्यार्थियों को विषय से संबंधित पुस्तकें या चित्र देखने का सुझाव दिया

जाता है। प्रयोग में आनेवाले नए शब्दों के लिए उन्हें कोश देखने को कहा जाता है। यदि कोई भौगोलिक सन्दर्भ हों तो उन्हें मानचित्र में दिखाया जाता है। यदि प्रसारण का उद्देश्य सूचनाएँ देना हो, तो तथ्यात्मक ज्ञान की जाँच भी आवश्यक होती है। कुछ विषयों के सम्बन्ध में प्रसारण में सुनी गई बातों को रंग पेंसिल या खड़िया आदि से अभिव्यक्त करने के लिए छोटी कक्षा के विद्यार्थियों से कहा जा सकता है।

रेडियो की अक्षमताएँ

रेडियो की अपनी कुछ अक्षमताएँ हैं :

(१) स्कूलों में पाठों के समय रेडियो प्रायः असुविधाजनक होते हैं। पश्चिमी देशों में टेप-रेकार्डर की सहायता से इस समस्या को हल किया गया है। यदि हमारे देश की स्कूलों को प्रसारणों के टेप उपलब्ध हो सकें और उन्हें सुनाने के लिए आवश्यक यंत्रों के लिए उन्हें उपयुक्त आर्थिक सहायता दी जा सके तो स्कूलों के उत्कृष्ट आकाशवाणी प्रसारणों का अत्यधिक उपयोग किया जा सकेगा।

(२) रेडियो-पाठ की विकास-प्रक्रिया पर कक्षा के अध्यापक का नियंत्रण नहीं रहता।

(३) पाठ पढ़ाते समय कुछ विशिष्ट बातों व्याख्या करनी पड़ती है। रेडियो-पाठ में प्रसारण समाप्त होने से पहले ऐसा नहीं किया जा सकता।

(४) टेलीविज़न की भाँति रेडियो भी एकपक्षीय संचार है। प्रसारक के साथ उन कक्षाओं का प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं रहता जिनमें प्रसारण सुना जाता है।

रेडियो सेटों की सँभाल

हमारे देश के स्कूलों में रेडियो के उपयोग के बारे में एक बहुत बड़ी कठिनाई यह है कि अध्यापकों को सामान्यतः इस उपकरण के सम्बन्ध में तनिक भी तकनीकी जानकारी नहीं रहती, और इसलिए छोटी-मोटी मरम्मत के लिए रेडियो-सेट स्थानीय दूकानदार के यहाँ पड़ा रहता है। यदि राज्य का दृश्य-श्रव्य विभाग रेडियो-सेटों की सँभाल के संबंध में अध्यापकों के लिए अल्पकालीन प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था कर दे तो यह समस्या काफ़ी हद तक हल की जा सकती है।

अन्य दृश्य-श्रव्य साधनों से सम्बन्ध

जिन दृश्य-श्रव्य साधनों की चर्चा की जा चुकी है प्रायः वे सभी रेडियो के साथ संबद्ध किए जा सकते हैं। श्यामपट्ट, विज्ञप्तिपट्ट, चार्ट, पोस्टर, मानचित्र, फिल्मपट्टियाँ तथा फिल्में प्रसारणों को अधिक सार्थक और प्रभावकारी बनाया जा सकता है। ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों अथवा संग्रहालयों को देख लेने पर प्रसारण अधिक लाभदायी हो सकते हैं।

प्रोफ़ेसर किंडर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ऑडियो-विज़ुअल मैटीरियल्स ऐण्ड टेकनीक्स' में अमरीका के एक हाइस्कूल में रेडियो प्रसारणों के सम्बन्ध में किए जानेवाले एक रोचक कार्य कलाप का वर्णन किया है। इस संस्था में बच्चों की एक समिति रेडियो और टेलीविज़न की सहायता से संसार का एक समाचार-चित्र अद्यतन स्थिति में पूरा कर रखती है। समिति की सदस्यता समय-समय पर बदलती रहती है ताकि अधिकाधिक बच्चे इस कार्य में भाग ले सकें।

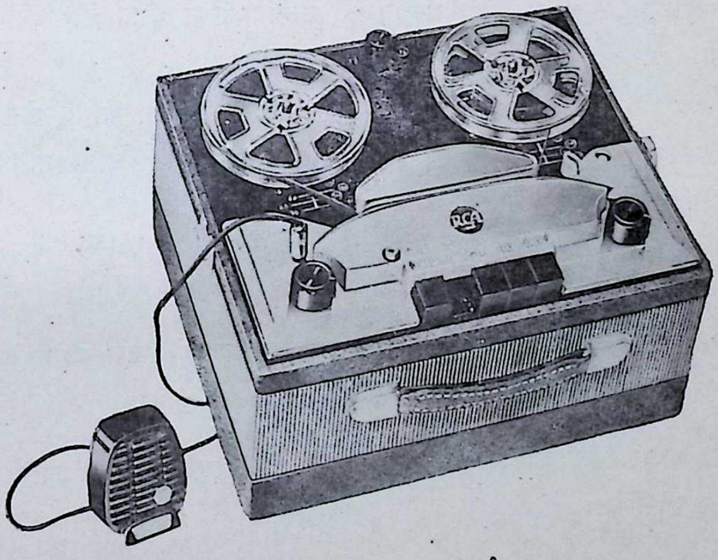
२३ टेप-रेकार्डर

टेप-रेकार्डर सर्वाधिक मूल्यवान स्कूली उपकरणों में से है। सन् १९०० में डेन्मार्क के पाल्सेन ने एक तार-रेकार्डर का आविष्कार किया था। अमरीका ने इस यंत्र में कुछ सुधार किया, किन्तु कक्षाओं में उपयोग के लिए वह उपयुक्त सिद्ध न हो सका। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान जर्मनी में एक सुंदर और उपयोग में सरल टेप-रेकार्डर तैयार किया गया। यह अति शीघ्र लोकप्रिय हो गया। आज समूचे संसार की शिक्षा-संस्थाओं, सामाजिक केन्द्रों और रेडियो तथा टेलीविज़न कक्षों में टेप-रेकार्डरों का उपयोग किया जा रहा है।

बाज़ार में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के टेप-रेकार्डरों के मूल्यों में बहुत अन्तर है। अधिक मूल्यवाले रेकार्डर हमारी स्कूलों की पहुँच के बाहर हैं। किन्तु कम खर्चवाले ऐसे यंत्र भी हैं जो संचालन में सरल और ध्वनि-पुनरुत्पादन में उत्तम हैं। सस्ते सेटों का मूल्य १२०० रुपयों से अधिक नहीं है। टेप भी बहुत महँगे नहीं हैं। २२० फ़ुट लम्बी रील का मूल्य लगभग १२ रुपए है।

एक मानक टेप-रेकार्डर की सहायता से पूरे दो घण्टे तक रेकार्ड चलाया जा सकता है। टेप का ध्वनि-लेख मिटाकर उसका उपयोग फिर से किया जा सकता है। ध्वन्यालेखित टेप को जितनी बार चाहें, चालू कर सकते हैं। अपनी पुस्तक 'ऑडियो-विज़ुअल मैटीरियल्स' में विटिच और शुलर ने लिखा है कि टेप की एक रील को ३००० बार से भी अधिक उपयोग में लाया गया। उसमें घिसने या खराब होने के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिए और न उसकी ध्वनि-तद्रूपता में कमी आई। काटकर और जोड़कर टेप का सम्पादन भी किया जा सकता है। टेप-रेकार्डरों का व्यवसाय करनेवाली किसी भी फ़र्म से विशिष्ट प्रकार के जोड़नेवाले टेप प्राप्त किए जा सकते हैं।

टेप-रेकार्डरों में सामान्यतः एकपथीय ध्वन्यालेखन और द्विपथीय ध्वन्यालेखन-दोनों की ही व्यवस्था रहती है। एक टेप पर दो ध्वन्यालेखनों की व्यवस्था से बचत होती है। द्विपथीय ध्वन्यालेखनों का सम्पादन नहीं किया जा सकता। द्विपथीय ध्वन्यालेखन



आर० सी० ए० पुश-बटन टेप-रेकार्डर
(जेनरल रेडियो ऐण्ड ऐप्लाएँसेज प्रा० लि०, कलकत्ता के सौजन्य से)

केवल कक्षाओं में अभ्यासों के लिए किया जाता है। टेप-रेकार्डर के अधिकांश नमूने दो गतियों से संचालित किए जा सकते हैं—३ $\frac{३}{४}$ इंच प्रति सेकण्ड और ७ $\frac{१}{२}$ इंच प्रति

सेकण्ड। $३\frac{३}{४}$ इंच प्रति सेकण्ड की गति में द्विपथीय ध्वन्यालेखन का समय तो मिलता है, किन्तु ध्वन्यालेखन उतना सन्तोषप्रद नहीं होता जितना $७\frac{१}{२}$ इंच प्रति सेकण्ड की गति में होता है। इसलिए $७\frac{१}{२}$ इंच की गति का उपयोग सभी महत्त्वपूर्ण ध्वन्यालेखनों में किया जाना चाहिए।

टेप दो प्रकार के होते हैं—प्लास्टिक के और कागज़ के। प्लास्टिक का टेप कागज़ के टेप की अपेक्षा कुछ अधिक खर्चीला होता है, पर टिकाऊ ज़्यादा होता है। प्लास्टिक के टेप में आलेखन मिटाना अधिक आसान होता है।

ध्वन्यालेखन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें

टेप-रेकार्डर की सहायता से रेकार्ड तैयार करना आसान होता हैं, किन्तु उपकरण का उपयोग ढंग से किया जाना चाहिए। यदि निर्माता द्वारा दिए गए निर्देशों का ठीक-ठीक पालन न किया जाए तो अधिकतम मूल्यवाले उपकरण के उपयोग से भी सन्तोषजनक परिणाम नहीं होगा। रेकार्ड तैयार करने के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें विशेष-रूप से महत्त्वपूर्ण हैं :

(१) टेप को यंत्र पर ढंग से चढ़ाएँ।

(२) यदि टेप-रेकार्डर दो गतियों से चलनेवाला हो, तो भलीभाँति देखें कि गति-निर्धारक वांछित स्थिति में है।

(३) वक्ता से माइक्रोफ़ोन की दूरी कितनी होनी चाहिए यह प्रयोग से जाना जा सकता है।

(४) चिल्लाकर बोलने की ज़रूरत नहीं। स्वाभाविक वार्त्तालाप के ढंग से साफ़-साफ़ बोलें।

(५) आवाज़ या शोर न होने दें।

(६) रेकार्ड तैयार करते समय कोई व्यवधान न हो इस विचार से कुछ अध्यापक रेकार्ड तैयार करते समय दरवाज़े पर चेतावनी लगा देते हैं।

(७) जैसे ही ध्वन्यालेखन पूरा हो जाए, ध्वनि-नियंत्रण को तत्काल शून्य पर ले आएँ और फिर बन्द करनेवाली कुंजी घुमा दें या दबा दें।

टेप-रेकार्ड बजाना

रेकार्ड बजाना बहुत आसान होता है। फिरभी नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए :

(१) टेप को यंत्र पर ढंग से चढ़ाएँ।

(२) गति-नियंत्रक को उसी गति पर रखें जिस पर ध्वन्यालेखन किया गया हो।

(३) मशीन चालू करें और ठीक गति पर आने तक कुछक्षण प्रतीक्षा करें।

(४) रेकार्ड चालू करने के लिए कुंजी दबाएँ और ध्वनि को वांछित स्तर पर लाएँ।

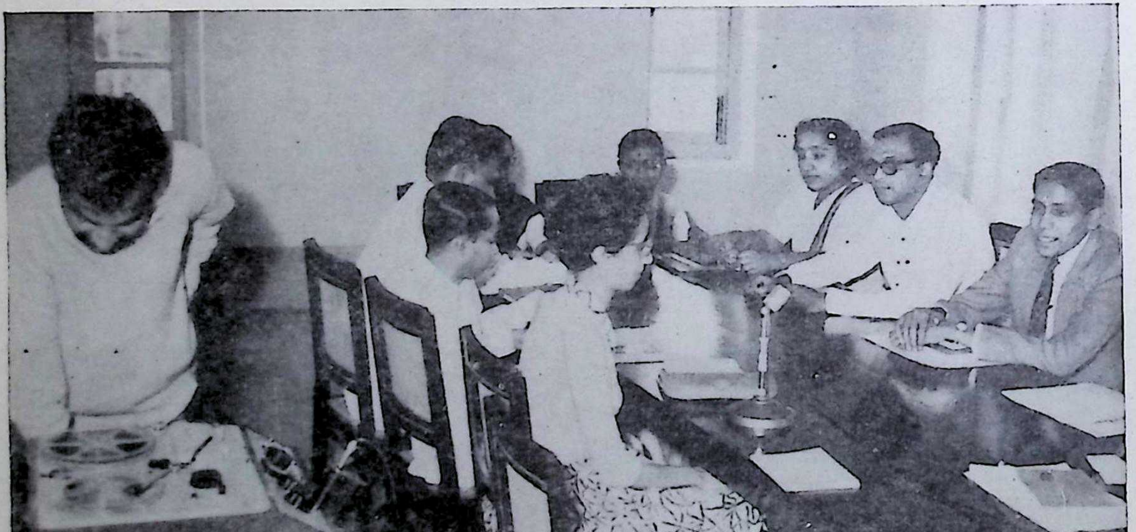
शैक्षणिक संस्थाओं में टेप-रेकार्डर का उपयोग

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि टप-रेकार्डर शिक्षण का एक सहायक साधन मात्र है ; वह अध्यापक का स्थान नहीं ले सकता। इसका उपयोग तब ही किया जाना चाहिए जब इसकी सहायता से बच्चे किसी बात को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हों।

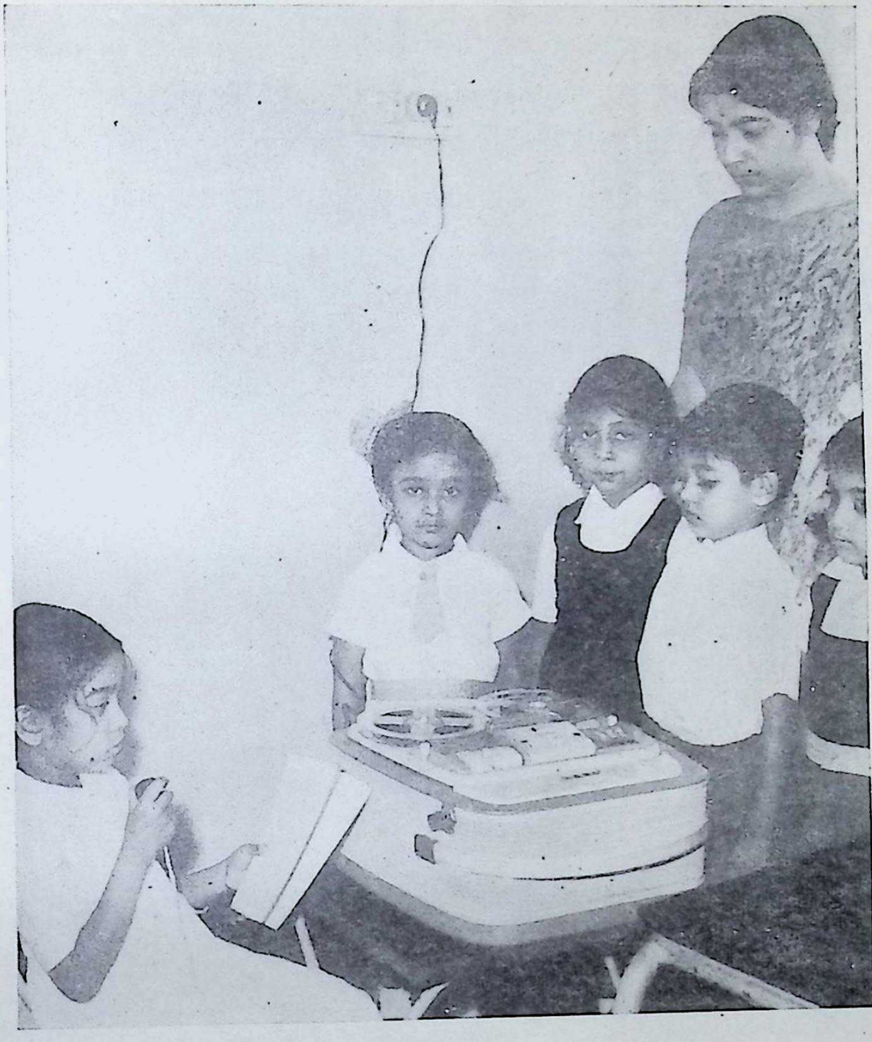
टेप-रेकार्डर के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपयोगों में से एक यह है कि इसकी सहायता से बच्चों के बोलने के ढंग में सुधार किया जा सकता है। बहुधा कहा जाता है कि भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की स्कूलों के विद्यार्थियों की बोली दोषपूर्ण है। हमारी आवाज़ में जो दोष दूसरों को साफ़ समझ में आते हैं हमें स्वयं उनका आभास नहीं होता। टेप-रेकार्डर की सहायता से विद्यार्थी अपनी आवाज़ को स्वयं सुन पाते हैं और उसके दोष जानकर उन्हें दूर करने की सुविधा उन्हें प्राप्त हो जाती है। हैदराबाद के सेंट्रल इन्स्टीट्यूट आफ़ इंग्लिश (केन्द्रीय अँगरेज़ी-संस्थान) में तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के प्रारम्भ और अन्त में विद्यार्थियों की बोली के नमूनों के रेकार्ड तैयार कराए जाते हैं।



चित्र से स्पष्ट है कि टेप-रेकार्डर बच्चों को अपनी आवाज़ के प्रति सचेत कर सकता है।
(साउथ प्वाइंट स्कूल, कलकत्ता के सौजन्य से)



सेंट्रल इन्स्टीट्यूट आफ़ इंग्लिश, हैदराबाद के एक 'ट्युटोरिअल' में टेप-रेकार्डिंग किया जा.रहा है।



साउथ प्वाइंट स्कूल, कलकत्ता में एक विद्यार्थी छोटे से टेप-रेकार्डर की सहायता से अपनी आवाज़ को रेकार्ड करा रहा है।

उद्देश्य यह है कि संस्थान में अध्ययन के फलस्वरूप विद्यार्थियों की बोली में जो सुधार हुए हों उनका पता लगे और दूसरों को बताया जा सके।

विदेशी भाषाएँ सीखने में रेकार्ड का प्रयोग बहुत अधिक सहायक होता है। एडिनबरा विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा-विभाग में विद्यार्थियों को दो तरह के रेकार्ड दिए जाते हैं: विदेशी भाषा के किसी पाठ्यांश का रेकार्ड जो उन्होंने स्वयं पढ़ा हो और वही

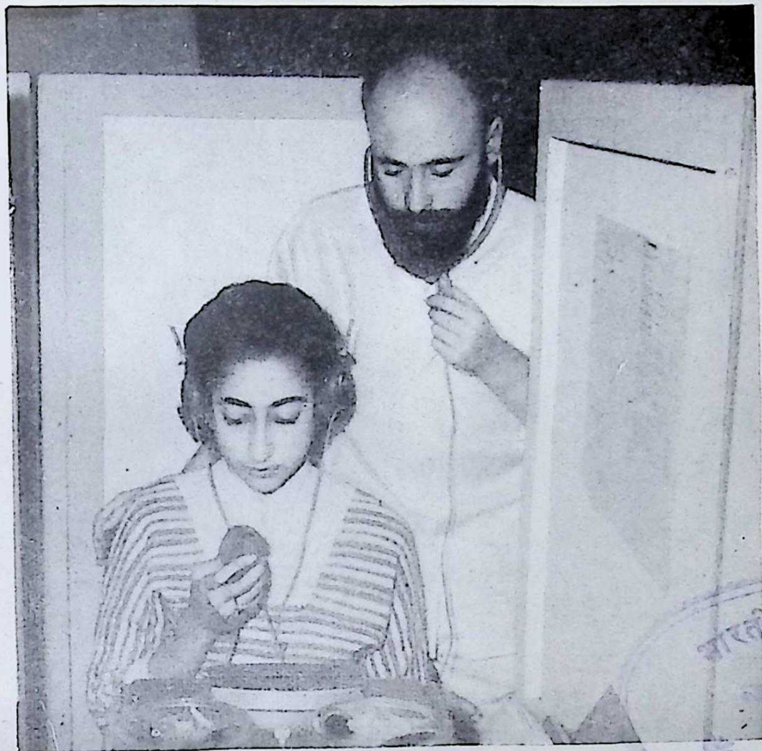
पाठ्यांश उस देश के शिक्षित व्यक्ति द्वारा किस तरह पढ़ा जाता है, उसका रेकार्ड; इन रेकार्डों से विद्यार्थी दोनों का अन्तर स्पष्ट समझ लेते हैं। एलाएँस फ़्रँकाए ने कलकत्ते में लोगों को फ़्रांसीसी भाषा को प्रारंम्भिक शिक्षा शीघ्रता से देने के लिए आकर्षक ढंग से कक्षाएँ चलाने को व्यवस्था की है। इनमें टेप-रेकार्डर की सहायता ली जाती है। इन कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या सीमित होती है। कुछ समय तक कक्षाओं में अभ्यास



एलाएँस फ़्रँकाए, कलकत्ता के विद्यार्थी दृश्य-श्रव्य प्रयोगशाला की अपनी कैबिन में अपने टेप-रेकार्डरों पर काम कर रहे हैं। (फ़्रांसीसी संस्कृति केन्द्र, कलकत्ता के सौजन्य से)

कर लेने पर विद्यार्थी 'प्रयोगशाला' में जाते हैं। वहाँ प्रत्येक विद्यार्थी को एक अलग कैबिन में बिठाया जाता है और उसे एक टेप-रेकार्डर दिया जाता है। उसमें वह सीखे हुए वाक्यों को अपने आचार्य द्वारा उच्चारित होते सुनता है। फिर उन वाक्यों को स्वयं दोहराता है और टेप के शेषांश पर अपने उच्चारण को रेकार्ड करता है। जब तक विद्यार्थी

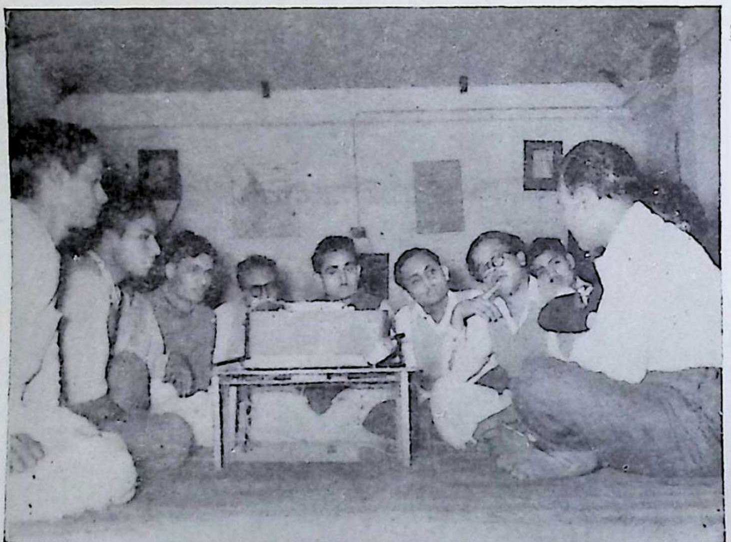
वाक्यों का उच्चारण आदर्श ढंग से नहीं कर पाता तब तक अपने प्रयासों के रेकार्ड टेप पर से मिटाता जाता है। वाक्यों के आदर्श उच्चारण के साथ अपने उच्चारण की बार बार तुलना करके वह इस लक्ष्य को पूरा करता है।



उच्चारण के अभ्यासार्थ विशेषरूप से दिए गए टेप-रेकार्डर पर अध्यापक के बाद एक विद्यार्थी स्वयं एक पाठ का रेकार्ड तैयार कर रहा है।
(फ़्रांसीसी संस्कृति केन्द्र, कलकत्ता के सौजन्य से)

संगीत सीखने के लिए भी रेकार्डर का उपयोग लाभदायक हो सकता है। विद्यार्थी अपने प्रयासों के रेकार्ड तैयार कर सकते हैं और फिर अध्यापक के साथ अपनी त्रुटियों पर विचार-विमर्श कर सकते हैं। विशेषज्ञ द्वारा गाए गए किसी गीत का रेकार्ड रख सकते हैं और उसी गीत के अपने गायन का रेकार्ड बना सकते हैं। फिर जब तक उनकी त्रुटियाँ दूर न हो जाएँ तब तक वे इन रेकार्डों का बराबर उपयोग कर सकते हैं। टेप-रेकार्डर की सहायता से, रेडियो प्रसारणों का चयन करके, एक पुस्तकालय सरलता से बनाया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक कार्य की सफलता अधिकांशतः सामाजिक शिक्षा आयोजकों की वाक्-शक्ति पर निर्भर रहती है। टेप-रेकार्डर की सहायता से उन्हें आम सभाओं में भाषण देने का अभ्यास कराया जा सकता है। स्लाइडों अथवा फिल्मपट्टियों के बारे में या गाँव के किसी अन्य मसले पर चर्चा करते समय यह अभ्यास सहायक होगा। अमरीका के मज़दूर संघ अपने भावी नेताओं को भाषण कला में प्रशिक्षित करने के लिए टेप-रेकार्डर की सहायता लेते हैं।



टेप-रेकार्डर सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को 'वाक्चेतन' बना सकते हैं।
(सामाजिक शिक्षा आयोजक प्रशिक्षण केन्द्र, बेलुर मठ के सौजन्य से)

विचार-गोष्ठियों अथवा सम्मेलनों की प्रमुख वक्तृताओं अथवा विचार-विमर्श के रेकार्ड तैयार करने में टेप-रेकार्डर का उपयोग सुविधापूर्वक किया जा सकता है। जो लोग इन बैठकों में भाग न ले सकें उनके लिए यह सब बाद में भी उपलब्ध हो सकता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रेडियो-पाठों के सम्बन्ध में स्कूलों के टाइम-टेबिल की कठिनाइयों को टेप रेकार्डर हल कर देता है। प्रसारण-केन्द्र के टाइम-टेबिल के साथ स्कूल की समय-सारिणी का तालमेल बैठाने में समय और शक्ति का अपव्यय नहीं होता। रेकार्ड किए हुए रेडियो प्रसारण को आवश्यकतानुसार जब चाहें, सुना जा सकता है।

२४ टेलीविज़न

टेलीविज़न अथवा 'दूरदर्शन' का अर्थ है—दूर से देखना। यदि दूरी बहुत अधिक न हुई तो प्रसारणकेन्द्र से श्रवणकेन्द्र तक प्रसारणों को तार (अथवा अब, कभी-कभी सूक्ष्मतरंगों) द्वारा पहुँचाया जाता है। ऐसे टेलीविज़न को बन्द-परिपथ टेलीविज़न कहते हैं। अमरीका में बन्द-परिपथ प्रणाली शैक्षणिक कार्यक्रमों का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। उस देश में अब दो हज़ार से अधिक बन्द-परिपथ प्रतिष्ठान हैं। इनमें से कुछ प्रतिष्ठान इतने बड़े हैं कि एक समूचे ज़िले की आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए मेरीलैण्ड में समूचे जनपद के २५ स्कूलों में पढ़नेवाले १८,००० बच्चों को बन्द-परिपथ प्रणाली से शिक्षा दी जाती है।

बन्द-परिपथ टेलीविज़न लगभग एक व्यक्तिगत व्यवस्था है। हमारे देश में लोग टेलीविज़न का अर्थ समझते हैं—खुला-परिपथ अथवा प्रसारण-टेलीविज़न, जो सामान्य जनता के लिए मनोरंजन और सूचनाएँ प्रदान करता है और विद्यार्थियों के लिए शिक्षा-सम्बन्धी कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। प्रसारणकेन्द्र द्वारा वायु के माध्यम से संचारित टेलीविज़न संकेत

को उस क्षेत्र का कोई भी व्यक्ति, जिसके पास टेलीविज़न हो, ग्रहण कर सकता है।

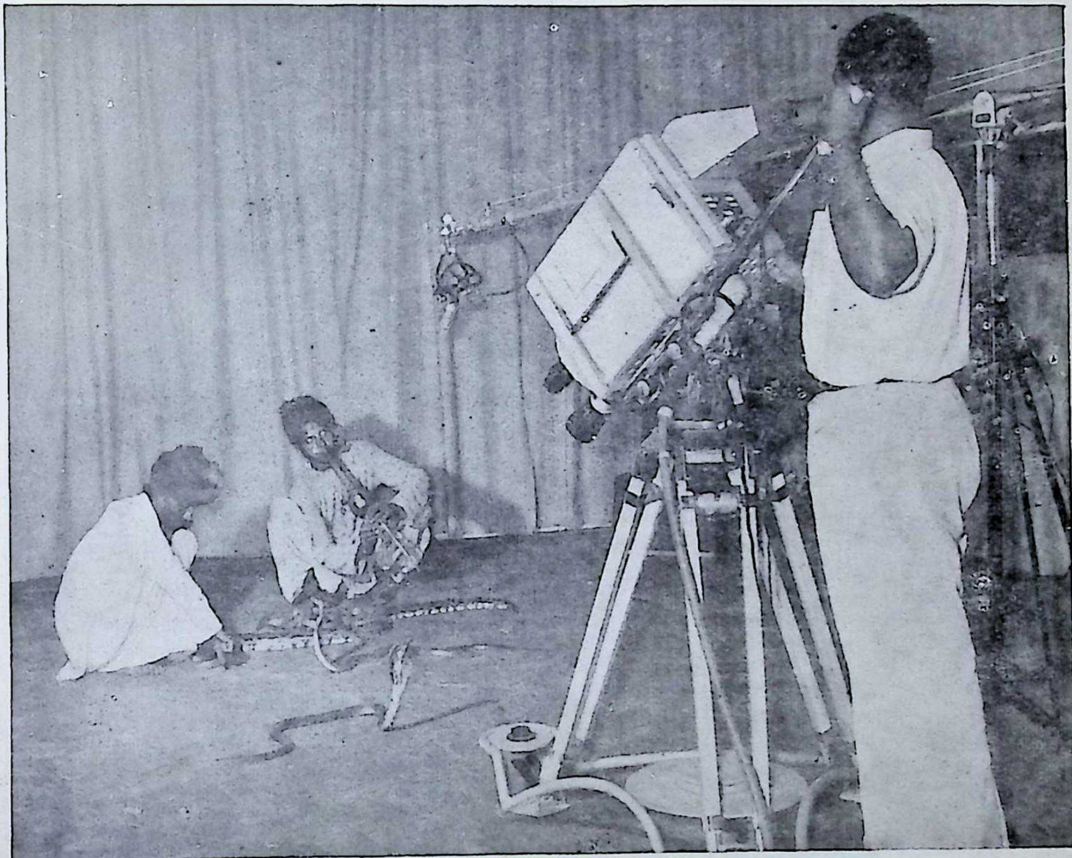
आज से लगभग चालीस वर्ष पहले टेलीविज़न की बात सिद्धान्त मात्र थी जिसे प्रमाणित करना शेष था। पहले पहल सन् १९३६ में ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन ने जनता के लिए टेलीविज़न उपलब्ध किया। उसके बाद संसार के अधिकांश विकसित देशों में बहुत शीघ्रता से इसका प्रचलन हो गया। भारत, ईराक और थाईलैण्ड जैसे विकासशील देशों में भी इसका चलन हाल ही में शुरू हुआ है।

भारत में टेलीविज़न

फ़िलिप्स इण्डिया लिमिटेड के रजत जयन्ती-समारोह के अवसर पर सन् १९५५ में पहले पहल बन्द-परिपथ टेलीविज़न का प्रदर्शन कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दिल्ली में किया गया था। इन प्रदर्शनों में मिली अद्वितीय सफलता से प्रेरित होकर इस कम्पनी ने उसी वर्ष के अन्त में भारतीय उद्योग मेला के अपने मण्डप से टेलीविज़न प्रसारणों का प्रदर्शन किया। सात मील अर्द्धव्यास के क्षेत्र में ध्वनि और चित्र संचारित करने के लिए १०० फ़ुट ऊँचा प्रसारणबुर्ज बनाया गया था। दिल्ली में राष्ट्रपति भवन, उप-राष्ट्रपति प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्रियों के निवास-स्थान, कुछ शिक्षा-संस्थाएँ, होटल और क्लबों में पैंतीस सेट लगाए गए थे।

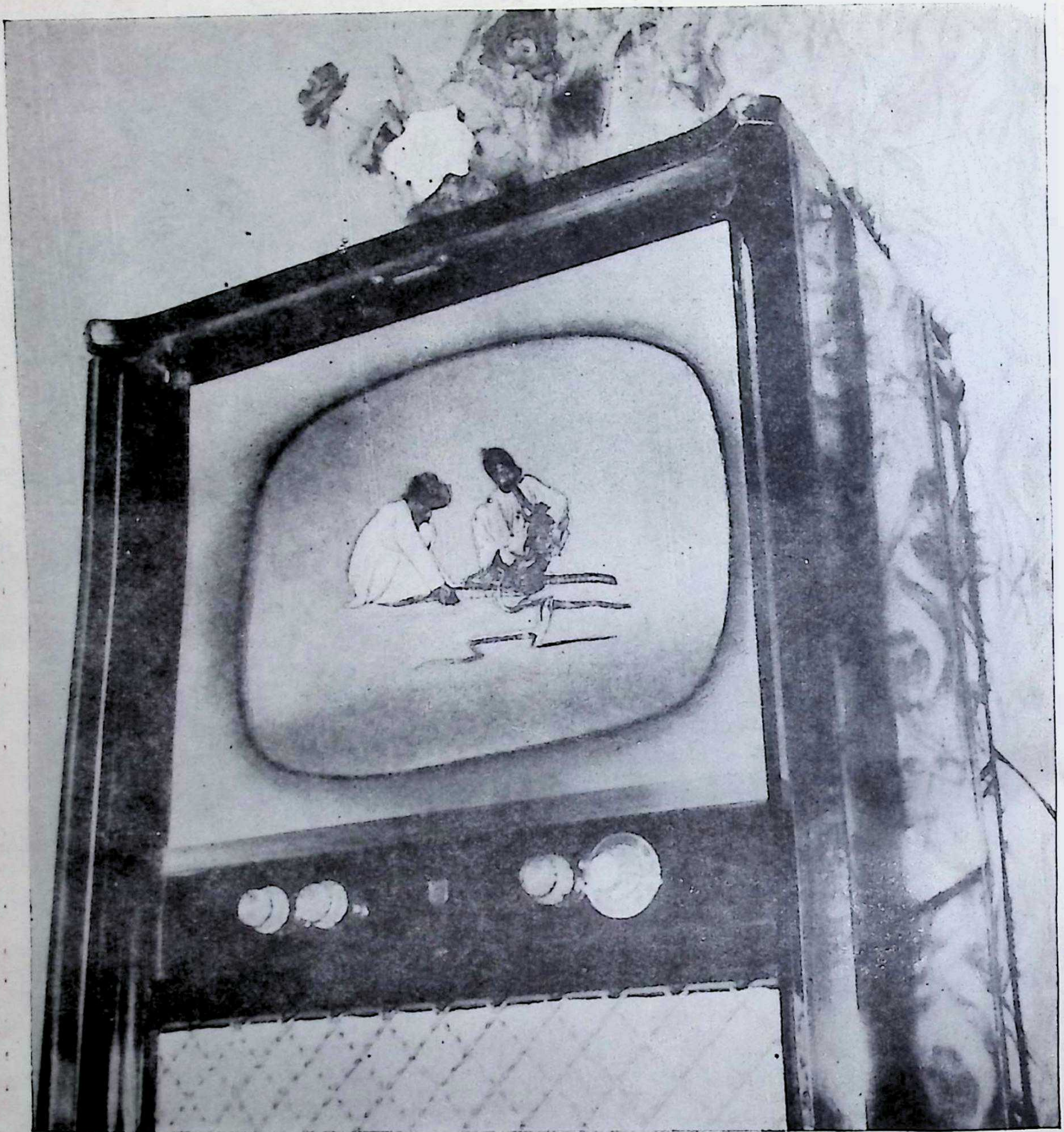
नियमित रूप से टेलीविज़न का समारम्भ भारत में १५ सितम्बर सन् १९५९ से हुआ, जब राष्ट्रपति ने आकाशवाणी द्वारा दिल्ली में स्थापित प्रथम प्रायोगिक टेलीविज़न केन्द्र का उद्‌घाटन किया। तत्कालीन केन्द्रीय सूचना-प्रसार मंत्री डाक्टर बी० वी० केसकर ने उस अवसर पर कहा था : "हमारे देश में सामूहिक संचार के विकास का यह वस्तुतः एक महत्त्वपूर्ण चरण है। भारतीय प्रसारण व्यवस्था के सर्वतोमुखी और निरन्तर विकास की यह उपयुक्त परिणति है।......विदेशी मुद्रा की कठिनाइयों के कारण प्रारम्भ में इस प्रायोगिक एकक को चालू करने का हमारा इरादा नहीं था; किन्तु पिछली औद्योगिक प्रदर्शनी (अर्थात् सन् १९५५ के भारतीय उद्योग मेल) के अवसर पर, फ़िलिप्स

कम्पनी से एक टेलीविज़न कैमरा हमें सस्ते दामों पर मिला; बाद में यूनेस्को से अनुदान मिला; अमरीकी सरकार ने साज-सामान उधार देकर हमारी सहायता करने का वचन दिया और इस प्रकार हम इस प्रायोगिक एकक को चालू करने में समर्थ हुए हैं"।



स्टूडियो के भीतर।

टेलीविज़न के इस औपचारिक उद्‌घाटन के तुरंत बाद दिल्ली के समूचे संघ-शासित क्षेत्र में सामुदायिक शिक्षा के एक नए प्रयोग के सिलसिले में ६६ दूरदर्शन-सेट लगाए गए थे। और प्रति शुक्रवार को सायंकाल साढ़े सात बजे आध घण्टे के प्रसारण की व्यवस्था की गई थी। प्रसारणों की इस शृंखला में अन्य विषयों के साथ ये विषय भी थे:—यातायात की समस्याएँ, समाज के स्वास्थ्य के खतरे (खाद्यपदार्थों और औषधियों

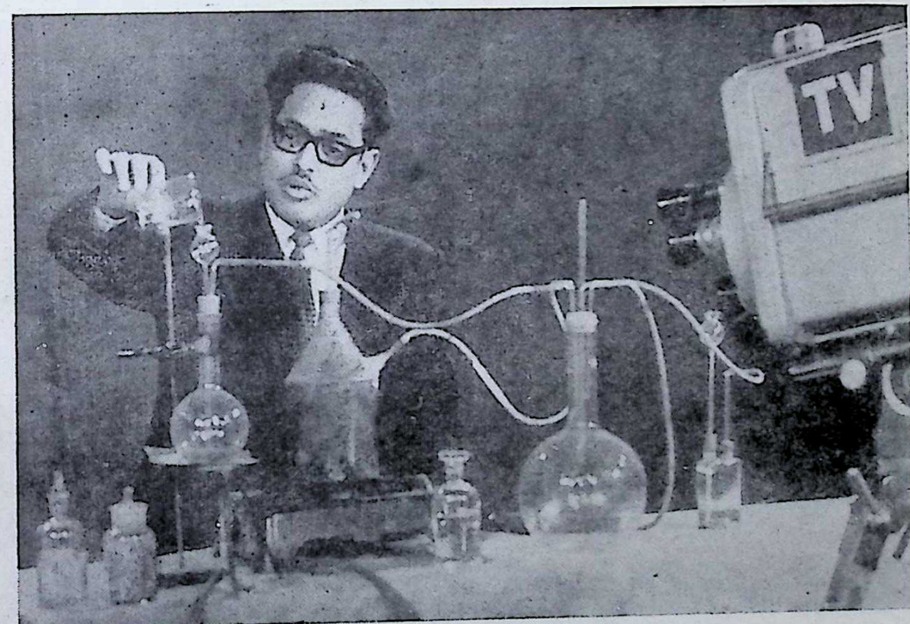


मीलों दूर।

में मिलावट), नगर आयोजन, और भद्र पड़ोसी के गुण। सामुदायिक शिक्षा के इस नए प्रयोग में आयोजित ६६ दूरदर्शन-क्लबों के माध्यम से दर्शकों की टोलियों को विचार-विमर्श के लिए उत्साहित करने के लक्ष्य का भी ध्यान रखा गया था। इन क्लबों ने अपने

विचार-विमर्शों की रिपोर्टें प्रसारणकेन्द्र को भेजी थीं ताकि इस प्रयोग का मूल्यांकन किया जा सके। प्रयोग के परिणामों का मूल्यांकन करने की इस प्रत्यक्ष पद्धति को अपनाने के सिवा इन कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकन करने का काम राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र तथा भारतीय प्रौढ़-शिक्षा संघ को भी सौंपा गया था।

भारत में स्कूली टेलीविज़न का प्रारम्भ आकाशवाणी ने अक्तूबर सन् १९६१ में फ़ोर्ड फ़ाउंडेशन तथा दिल्ली के शिक्षा-निदेशालय के सहयोग से किया था। कक्षा की पढ़ाई तथा टेलीविज़न-पाठों के बीच उपयुक्त समन्वय स्थापित करने के लिए आकाशवाणी ने पहले अध्यापकों और प्रधानाचार्यों के लिए अनेक कर्मशालाओं की व्यवस्था की थी।



आकाशवाणी के टेलीविज़न स्टूडियो में विज्ञान के एक पाठ का रेकार्ड तैयार किया जा रहा है।
(आकाशवाणी के टेलीविज़न एकक के सौजन्य से)

जिन विषयों पर पाठ प्रस्तुत करने थे उनकी पाठ्यचर्या की योजना इन कर्मशालाओं में ही तैयार की गई थी। १४५ स्कूलों में टेलीविज़न-सेट लगाए गए थे और नवीं

कक्षा के विद्यार्थियों को सप्ताह में तीन बार भौतिकी तथा रसायन शास्त्र सम्बन्धी पाठ पढ़ाए जाते थे। सप्ताह में एक बार हिन्दी और अँगरेज़ी के पाठ होते थे। प्रत्येक पाठ लगभग २० मिनट चलता था। हिन्दी और अँगरेज़ी भाषाओं से संबंधित पाठों में निर्धारित पाठ्यचर्या के बदले इन भाषाओं में बोलने का प्रशिक्षण प्रधानतः दिया जाता था।

सन् १९६२ के प्रारम्भ में इस योजना को बढ़ाकर दसवीं कक्षा के लिए भी लागू कर दिया गया। इस कक्षा के विद्यार्थियों को भौतिकी, रसायन-शास्त्र, अँगरेज़ी और हिन्दी का प्रति सप्ताह एक-एक पाठ पढ़ाया जाता था। नवीं कक्षा के लिए भी प्रति सप्ताह भौतिकी और रसायन-शास्त्र सम्बन्धी दो पाठ रखे गए। बाद में, देश की आपत्कालीन स्थिति के कारण, अँगरेज़ी और हिन्दी के पाठ बन्द करना पड़े और उनके स्थान पर सामयिक मामलों के विषय में एक विशिष्ट कार्यक्रम चालू किया गया जो मुख्यतः देश की सुरक्षा से सम्बन्धित होता था।

सन् १९६३-६४ में ब्रिटिश कौंसिल के सहयोग से छठी कक्षा के लिए प्रति सप्ताह अँगरेज़ी के दो पाठ आरंभ किए गए। ऐसा यह सोचकर किया गया कि टेलीविज़न पर अँगरेज़ी के पाठ ऊँची कक्षाओं के बच्चों के बदले नीची कक्षाओं के बच्चों के लिए अधिक उपयोगी होंगे। भौतिकी और रसायन-शास्त्र सम्बन्धी पाठ पिछले वर्ष की भाँति ही चालू रहे और सामयिक मामलों से संबंधित पाठों में परिवर्त्तन करके 'भारत-दर्शन' सम्बन्धी प्रकरण उनमें शामिल कर लिए गए।

सन् १९६४-६५ में अँगरेज़ी के पाठ सातवीं कक्षा के लिए भी चालू कर दिए गए और भौतिकी तथा रसायन-शास्त्र सम्बन्धी पाठ ग्यारहवीं कक्षा के लिए। सामयिक मामलों से संबंधित कार्यक्रम के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव पर एक कार्यक्रम-शृंखला चालू की गई।

सन् १९६५-६६ में इस योजना के अन्तर्गत बहुत ही प्रगतिशील क़दम उठाया गया और अँगरेज़ी के पाठ आठवीं कक्षा के लिए भी चालू कर दिए गए। सामान्य विज्ञान

सम्बन्धी पाठों की एक नई श्रृंखला सातवीं और आठवीं कक्षाओं के लिए यह समझकर चालू की गई कि यदि मिडिल कक्षाओं में विज्ञान की शिक्षा की नींव मज़बूत कर दी जाए तो उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए प्रसारित किए जानेवाले विज्ञान सम्बन्धी पाठ अधिक सफल और सार्थक होंगे। सामयिक मामलों से संबंधित पाठ-श्रृंखला के स्थान पर आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सामाजिक शिक्षा सम्बन्धी संकलित पाठ चालू किए गए। बाद में, देश में आपत्कालीन स्थिति के कारण, इन पाठों को बन्द कर देना पड़ा।

सन् १९६६-६७ शैक्षिक वर्ष इस योजना के विस्तार की अपेक्षा उसके संघटन का वर्ष रहा है। पिछले वर्ष के सभी कार्यक्रम चालू रखे गए हैं, केवल सामान्य-विज्ञान सम्बन्धी कार्यक्रम का किंचित् विस्तार किया गया है और उसमें छठी कक्षा के बच्चों को भी शामिल कर लिया गया है। अद्यतन सूचना के अनुसार दिल्ली के २८७ स्कूलों में टेलीविज़न-सेट हैं।

दिल्ली की स्कूल-टेलीविज़न-योजना का सर्वांगीण मूल्यांकन सन् १९६४-६५ में सिटी यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क के डाक्टर पाल न्यूराथ द्वारा किया गया था। उनके निष्कर्षों के निम्नलिखित उद्धरण[२०] रोचक होंगे :

(१) "दिल्ली की यह योजना सचमुच एक बहुत बड़ा अभियान है। पिछले चार वर्षों में इसका पर्याप्त विस्तार किया गया है और अब भी किया जा रहा है। यह विस्तार स्कूलों की संख्या में हुआ है और इसमें भाग लेनेवाले विद्यार्थियों की संख्या में भी।"

(२) "शिक्षा-प्रणाली में धीरे-धीरे सुधार हो रहा है किन्तु संभवतः प्रत्येक शिक्षक के शिक्षण-कार्य में यह परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होगा।"

(३) "अनेक प्रधानाचार्य अपने स्कूलों में विज्ञान के शिक्षण में रुचि ले रहे हैं।"

(४) "समूची स्कूल-व्यवस्था में अध्यापकों के स्तर से ऊपर की ओर और निदेशालय के स्तर से नीचे की ओर, ऊर्ध्वगामी और अधोगामी-दोनों दिशाओं में, लोगों की वृत्तियों में एक परिवर्तन, एक जागरूकता का संचार हो रहा है।"

२०। आकाशवाणी के सौजन्य से।

कुछ महीने पहले यूनेस्को के अधीन आस्ट्रेलियन ब्राडकास्टिंग कमीशन द्वारा "एजुकेश्नल टी० वी० इन डेवलपिंग कंट्रीज" (विकासशील देशों में शैक्षणिक दूरदर्शन) पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई थी। भारतीय प्रयोग के सम्बन्ध में इस रिपोर्ट में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :

"दिल्ली की इस योजना के प्रधान तत्त्व हैं : सर्वांगपूर्ण आयोजन, सभी स्तरों पर सतर्कतापूर्ण व्यवस्थित सहयोग और स्कूलों की पाठ्यचर्या के साथ आद्यन्त समन्वय। आयोजना से लेकर मूल्यांकन तक सभी स्तरों पर अध्यापक पूरी तरह शामिल रहे हैं। अनुपूरक सामग्री कक्षाओं के अध्यापकों को व्यापकरूप से उपलब्ध की गई है[२१]।"

टेलीविज़न तथा अन्य शिक्षण-साधन

टेलीविज़न और पुस्तकें—पुस्तकों को सभी लोग सरलता से पढ़ नहीं सकते। किन्तु चाहे कोई पढ़ सके या न पढ़ सके, टेलीविज़न हर एक को सार्थक ढंग से अपना सन्देश समझाने में समर्थ होता है। फिरभी पुस्तकों की कुछ अपनी अच्छाइयाँ, कुछ अपने लाभ होते हैं जो टेलीविज़न में नहीं होते। पुस्तकें संसार भर में प्रायः किसी भी स्थान पर प्राप्त की जा सकती हैं, किन्तु टेलीविज़न सब जगह नहीं मिल सकता, यद्यपि उसका प्रचार तेज़ी से हो रहा है। यदि टेलीविज़न सर्वत्र उपलब्ध भी हो जाए, तो भी दर्शकों को चयन की उतनी व्यापक सुविधा तो होगी ही नहीं जितनी पुस्तकों के पाठकों को रहती है। पाठकों को अपने अध्ययन क्षेत्र में अनेक पुस्तकों के चयन की सुविधा रहती है। फिर, "पुस्तक एक स्थायी वस्तु होती है जिसे सन्दर्भ के लिए देखा जा सकता है; भलीभाँति समझने के लिए उसे बार-बार पढ़ा जा सकता है, अथवा विद्यार्थी की स्मृति में जो कुछ धूमिल पड़ गया हो उसे ताज़ा करने के लिए उसे फिर पढ़ा जा सकता है। मुद्रित सामग्री, चाहे कोई लेख हो या पुस्तक, अब भी ज्ञान, पाण्डित्य और अध्ययन का मूलाधार है। तथ्यों और विचारों से संबंधित हमारे ज्ञान को विकसित करने के सिवा टेलीविज़न और अधिक कुछ नहीं कर सकता[२२]।"

२१। आकाशवाणी के सौजन्य से।

२२। हेनरी आर० कैसिरर–'टेलीविज़न टीचिंग टुडे'

टेलीविज़न और रेडियो

कैसिरर २३ ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि एकबार कनाडा के कुछ ऐसे अध्यापकों से, जिन्होंने वाक्-प्रशिक्षण सम्बन्धी रेडियो कार्यक्रमों तथा टेलीविज़न कार्यक्रमों की श्रृंखला का उपयोग किया था, दोनों माध्यमों के प्रभाव की तुलना करने के लिए कहा गया था। उनमें से ७२ प्रतिशत शिक्षकों ने टेलीविज़न के पक्ष में अपना मत दिया था, २० प्रतिशत की राय थी कि दोनों ही माध्यम समानरूप से प्रभावपूर्ण हैं, और ८ प्रतिशत ने टेलीविज़न की अपेक्षा रेडियो को अधिक पसन्द किया था।

टेलीविज़न को अधिक प्रभावपूर्ण माननेवाले अध्यापकों के तीन प्रमुख तर्क थे : टेलीविज़न में बच्चे अध्यापक के ओठों की गति प्रत्यक्ष देख सकते हैं और इसलिए उसका अधिक सही अनुकरण कर सकते थे ; टेलीविज़न के कार्यक्रम अधिक रोचक होते हैं, और अध्यापक के व्यक्तित्व का प्रभाव अधिक पड़ता है क्योंकि उसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। रेडियो को अधिक सहायक माननेवाले अल्पमत का कहना था कि दृश्य तत्त्वों के अभाव में भाषा और ध्वनि पर ध्यान अधिक केन्द्रित होता है।

टेलीविज़न के पक्ष में अपना मत देनेवाले अध्यापकों ने अपने समर्थन में जो तर्क दिए थे वे निस्सन्देह सही हैं, किन्तु यह भी सही है कि शिक्षण के क्षेत्र में रेडियो का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह ठीक है कि मनमोहक टेलीविज़न जब पहले-पहल सामने आया था तब ब्रिटेन या अमरीका की किसी संस्था ने शायद ही रेडियो-प्रसारणों का उपयोग करना पसन्द किया हो। किन्तु यह प्रवृत्ति बहुत जल्दी समाप्त हो गई और आज इन दोनों देशों में अध्यापक यह स्वीकार करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में रेडियो तथा टेलीविज़न दोनों का अपना-अपना स्थान है, वर्षों तक दोनों का सह-अस्तित्त्व रहेगा और उनमें विकास होता जाएगा। सामयिक घटनाओं के संवाद लाखों लोगों तक सबसे पहले पहुँचाने की क्षमता में कोई भी अन्य साधन रेडियो की समता नहीं कर सकता। उत्पादन और संग्रहण के सस्तेपन में भी अन्य कोई साधन रेडियो का मुक़ाबला नहीं कर सकता। संगीत, नाटक और वार्ताएँ-सभी रेडियो-माध्यम के लिए नितांत उपयुक्त होती हैं और टेलीविज़न की अपेक्षा अत्यधिक सरलता के साथ प्रस्तुत की जा सकती हैं।

२३। हेनरी आर० कैसिरर-'टेलीविज़न टीचिंग टुडे'

अनेक शिक्षाविदों का विश्वास है कि टेलीविज़न जो कुछ कर सकता है वह सब फिल्म द्वारा उतने ही या उससे भी अधिक अच्छे ढंग से किया जा सकता है। ये लोग टेलीविज़न की अपेक्षा फिल्म में कुछ स्पष्ट लाभ भी बताते हैं। फिल्में प्रायः हर विषय पर और शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर उपयोग के लिए उपलब्ध हैं। उन्हें पहले से देखा जा सकता है, आवश्यकतानुसार पाठों के साथ उनका मेल बैठाया जा सकता है और जितनी बार ज़रूरी हो उतनी बार उनका प्रदर्शन किया जा सकता है। टेलीविज़न के कार्यक्रमों की अपेक्षा फिल्में प्रायः अधिक व्यापक और विवरणात्मक होती हैं और उनके चित्रों का स्तर सामान्यतः टेलीविज़न की तुलना में ऊँचा होता है।

टेलीविज़न के पक्षपाती और भी ज़ोरदार तर्क पेश करते हैं। पहला यह कि टेलीविज़न का प्रयोग फिल्म की अपेक्षा अत्यधिक सुविधापूर्ण होता है। पर्दा नहीं लगाना पड़ता, देखभाल कर फिल्म चढ़ाने का झंझट नहीं रहता, ध्वनि-परीक्षण नहीं करना पड़ता और कमरे में अँधेरा करने की ज़रूरत नहीं होती। दूसरा तर्क यह कि फिल्म की अपेक्षा टेलीविज़न पर उत्पादन-व्यय कम होता है। आवश्यक उपकरण लगा देने के बाद टेलीविज़न पर उत्पादन-व्यय अधिक नहीं पड़ता। और फिल्मों के वितरण जैसा भारी खर्च टेलीविज़न पर नहीं करना पड़ता। तीसरा तर्क यह कि फिल्मों के निर्माण में पर्याप्त समय लग जाता है इसलिए, विशेषकर विज्ञान सम्बन्धी फिल्में--वितरण के लिए पुस्तकालयों तक पहुँचते-पहुँचते समय से पीछे पड़ जाती हैं। टेलीविज़न कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने में कुछ ही दिनों का समय लगता है, इसलिए सहस्रों संग्राही संस्थाओं को अद्यतन जानकारी इनसे तुरंत उपलब्ध हो जाती है। फिल्म की अपेक्षा टेलीविज़न में एक और विशेष लाभ होता है। टेलीविज़न में उत्पादन और उपयोग दोनों प्रायः साथ-साथ चलते हैं, किन्तु फिल्म की ये दोनों अवस्थाएँ बिल्कुल भिन्न होती हैं। यदि फिल्म में कोई भूल हो जाय तो वह तब तक बनी रहेगी जब तक फिल्म रहेगी किन्तु टेलीविज़न के कार्यक्रमों के संग्राही-केन्द्रों से प्राप्त होनेवाली मूल्यांकन रिपोर्टों के आधार पर टेलीविज़न कार्यक्रमों जाँच प्रतिदिन होती है और भूलें सुधार की जाती हैं।

टेलीविज़न के पक्ष में ऊपर दिए गए तर्कों से क्या हमें यह मान लेना चाहिए कि टेलीविज़न शिक्षा का अधिक मूल्यवान व उपयोगी साधन है? क्या हमें यह भी

मान लेना चाहिए कि टेलीविज़न का प्रचार बढ़ने पर धीरे-धीरे फिल्मों का उपयोग कम होता जाएगा? उत्तर निश्चित ही नकारात्मक है, क्योंकि टेलीविज़न के प्रयोग से शिक्षा के क्षेत्र में फिल्मों के उपयोग में तनिक भी कमी नहीं आई। इसके विपरीत, टेलीविज़न के प्रचार से फिल्मों के उपयोग में वृद्धि हुई है। टेलीविज़न में फिल्मों के कुछ अंशों का उपयोग प्रायः किया जाता है और इन अंशों को देखने से समूची फिल्मों को देखने की इच्छा स्वभावतः उत्पन्न होती है। यद्यपि टेलीविज़न तथा फिल्म-दोनों की अपनी-अपनी कुछ सीमाएँ हैं, फिरभी इन दोनों का शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा। ये दोनों माध्यम एक-दूसरे के पूरक माने जाने चाहिए, प्रतिस्पर्द्धी नहीं।

टेलीविज़न : शिक्षा-साधन के रूप में

टेलीविज़न का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वह 'जीवंत' होता है, अर्थात् वह किसी भी बात को सर्वथा विकार-मुक्त रूप में उसी क्षण पर्दे पर प्रस्तुत करता है जब वह घटित होती है। बच्चे उसे बड़ी रुचि के साथ ध्यानपूर्वक देखते हैं। वे जानते हैं कि जो कुछ वे देख रहे हैं वह सब सचमुच उसी क्षण घटित हो रहा है।

अधिकांशतः 'जीवंत' होने के कारण टेलीविज़न अत्यधिक यथार्थ होता है। बच्चों को इसके प्रतिबिम्बों की यथार्थता पर सहज विश्वास हो जाता है। प्रतिबिम्ब की यथार्थता पर यह विश्वास शिक्षण को प्रभावित करता है। टेलीविज़न में दिखनेवाले प्रतिबिम्बों की यथार्थता में बच्चों के सहज विश्वास के बारे में कैसिरर ने अपनी पुस्तक 'टेलीविज़न टीचिंग टुडे' में एक बड़ा रोचक उदाहरण दिया है। फ्रांस के एक हाईस्कूल में बच्चों को रसायन-शास्त्र का एक पाठ पढ़ाया जा रहा था। अध्यापक ने टेलीविज़न पर जब एक प्रयोग प्रदर्शित किया और उस प्रयोग के दौरान जब सी-सी की आवाज़ के साथ धुआँ निकलने लगा तो बच्चों ने खाँसना शुरू कर दिया। बाद में जब बच्चों ने यह अनुभव किया कि पर्दे पर दिखाई देनेवाले धुएँ को उन्होंने कक्षा में फैल रहा सच्चा धुआँ मान लिया था तो वे मुस्कराने लगे।

टेलीविज़न योग्यतम शिक्षकों को देश की सम्पूर्ण शिक्षा संस्थाओं तक पहुँचा देता है और इस प्रकार शिक्षा के स्तर को ऊँचे उठाता है। फिल्में और रेडियो भी

विशेषज्ञों को कक्षाओं तक पहुँचा सकते हैं, किन्तु टॅलीविज़न में देखा गया प्रतिबिम्ब अन्य किसी भी साधन की अपेक्षा विद्यार्थियों को अधिक आकर्षक और रोचक लगता है।

टॅलीविज़न का एक और अद्वितीय लाभ यह है कि इसमें मानचित्र, भूगोलक, मॉडल, फ़ोटोचित्र, फ़िल्में, फ़िल्मपट्टियाँ, श्यामपट्ट, फ़्लैनेल पट्ट-आदि विविध प्रकार की दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग किया जा सकता है ताकि शिक्षण में सहायता मिले। कक्षा में पढ़ानेवाले अध्यापक के लिए इतनी विविध सामग्री और साधन उपलब्ध करके उसका उपयोग करना असम्भव ही होता है।

टॅलीविज़न की सबसे प्रमुख असुविधा यह है कि टॅलीविज़न के माध्यम से पढ़ानेवाले अध्यापक का उन कक्षाओं के साथ कोई व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं होता जो उसके अध्यापन को ग्रहण करती हैं। इस प्रकार टॅलीविज़न एकपक्षीय संवाद मात्र रह जाता है। बच्चे इस अध्यापक से कोई प्रश्न नहीं पूछ सकते। यह अध्यापक अपने आपको आश्वस्त नहीं कर सकता कि वह सचमुच बच्चों की सहायता कर रहा है। कुछ कार्यक्रमों में 'विद्यार्थियों और अध्यापक के बीच प्रश्नोत्तर' की जो व्यवस्था की जाती है उससे भी विशेष सहायता नहीं मिलती क्योंकि कार्यक्रम में रखेजानेवाले प्रत्याशित प्रश्नों में वे सारे प्रश्न नहीं रखे जा सकते जो बच्चे पूछ सकते हैं। इससे अच्छी एक युक्ति है, किन्तु वह केवल बन्द-परिपथ-प्रतिष्ठानों में ही कारगर हो सकती है। बन्द-परिपथ-व्यवस्था में ऐसी युक्तियाँ होती हैं जिनकी सहायता से प्रसारण-केन्द्र में बैठा टॅलीविज़न अध्यापक किसी भी संग्राही कक्षा से सम्पर्क स्थापित कर सकता है ताकि वह विद्यार्थियों के प्रश्नों के उत्तर दे सके। ये प्रश्न और उत्तर टॅलीविज़न के परिपथ में आनेवाली सभी कक्षाओं में सुनाई देते हैं। युक्ति बिल्कुल ठीक मालूम होती है, किन्तु व्यवहार में कारगर नहीं होती, क्योंकि स्टूडियो का सम्बन्ध किसी एक ही कक्षा से ही नहीं रहता। ऐसी स्थिति में समस्या का समाधान यह है कि कक्षा का अध्यापक टॅलीविज़न कार्यक्रम के समाप्त होते ही बच्चों को उन बातों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने के लिए उत्साहित करे जिन्हें वे समझ न पाए हों। वस्तुतः टॅलीविज़न के किसी भी कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर है कि कक्षा का अध्यापक उसका उपयोग किस तरह करता है। हैगर्स्टाउन २४ के अधीक्षक ने बिल्कुल ठीक कहा है: "यह कह सकना असम्भव है कि टॅलीविज़न-अध्यापक अधिक महत्त्वपूर्ण होता है या कक्षा का अध्यापक।"

२४। अमरीका का एक नगर जो बन्द-परिपथ-प्रतिष्ठानों के लिए प्रसिद्ध है।

कार्यक्रमों का उपयोग

कक्षा में अन्य किसी भी दृश्य-श्रव्य साधन की अपेक्षा टेलीविज़न का उपयोग करने के लिए सोचसमझकर और सतर्कतापूर्वक बनाई गई योजना आवश्यक होती है। तथापि, इसके उपयोग के प्रक्रम उनसे भिन्न नहीं होते जो फिल्मों, रेडियो प्रसारणों अथवा अन्य दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग में आवश्यक होते हैं, अर्थात् चयन, तैयारी, प्रस्तुतीकरण, और अनुवर्ती कार्यक्रम।

चयन—यद्यपि कक्षाओं के उपयोग के लिए टेलीविज़न-कार्यक्रम विशेष टोलियों या वर्गों के लिए निर्धारित विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा अत्यन्त सावधानी से तैयार किए जाते हैं, फिरभी यह आवश्यक है कि अध्यापक कक्षा के नियमित कार्य के साथ टेलीविज़न के कार्यक्रम का मेल बैठाने के संबंध में आश्वस्त हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि



टेलीविज़न में रानी एलिज़ावेथ का दिल्ली आगमन सामान्यतः शैक्षणिक महत्ववाले कार्यक्रमों के प्रदर्शन के लिए शिक्षा-संस्थाओं को विशेष प्रबन्ध करना चाहिए।

सामान्य शैक्षिक महत्त्व के कोई कार्यक्रम (जैसे देश में किसी महापुरुष का आगमन) कक्षा के उपयोग में नहीं लाए जायेंगे। यदि स्कूल के समय में ऐसे कार्यक्रम नहीं होते तो

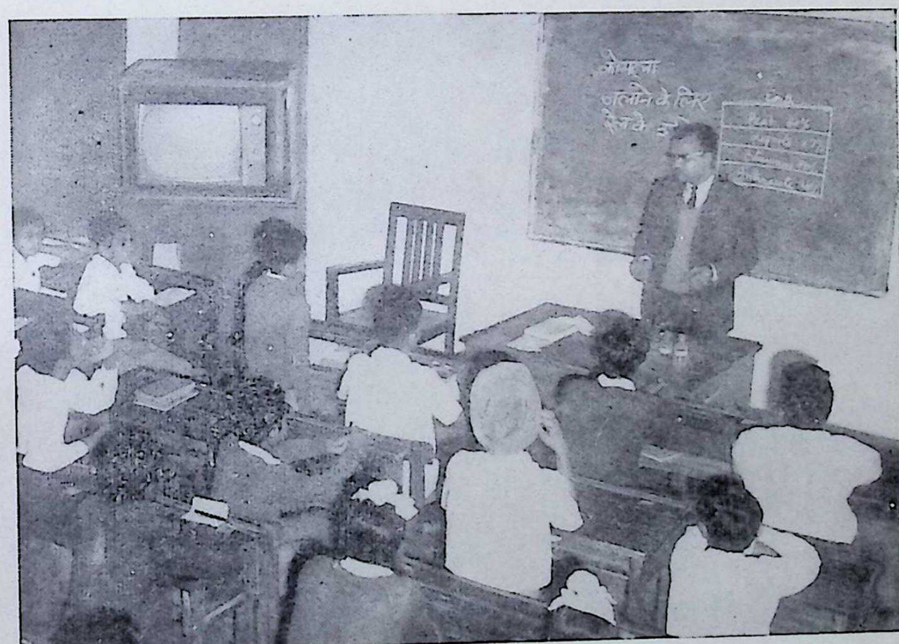
उनके लिए विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए। असुविधाजनक समयों पर होनेवाले कार्यक्रमों का उपयोग करने की समस्या ब्रिटेन, अमरीका तथा अन्य पश्चिमी देशों में किनेस्कोप (टेलीविज़न स्टूडियो में चल रहे किसी कार्यक्रम का दृश्य-ध्वन्यात्मक-रेकार्ड किनेस्कोप रेकार्डर की सहायता से फिल्म पर तैयार करना ताकि उसे पुनः प्रसारित किया जा सके) तथा वाइडियो टेप-रेकार्डर २५ (चित्र और ध्वनि का रेकार्ड चुम्बकित फ़ीते पर एक साथ तैयार करने की एक युक्ति) की सहायता से हल की गई है। यह उल्लेखनीय है कि किनेस्कोप रेकार्डर बहुत ही मँहगा उपकरण है इस कारण सभी टेलीविज़न-केन्द्र में उपलब्ध नहीं होता। वाइडियो टेप-रेकार्डर भी मँहगा होता है। दिल्ली की शैक्षणिक संस्थाओं में वाइडियो टेप-रेकार्डर उपलब्ध करने का प्रश्न अभी नहीं है क्योंकि सौ संस्थाओं में से किसी के पास ऐसा टेप-रेकार्डर नहीं है जिसपर महत्त्वपूर्ण रेडियो प्रसारणों के रेकार्ड सुविधानुसार उपयोग के लिए तैयार किए जा सकें।

तैयारी—कक्षा में टेलीविज़न का सफल उपयोग करने के लिए प्रसारण-विभाग द्वारा सामान्यतः वितरित की जानेवाली छपी या साइक्लोस्टाइल की हुई पुस्तिकाएँ अध्यापकों को ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिए। इन पुस्तिकाओं में पाठों की रूपरेखा ही नहीं दी जाती, अनुवर्ती कार्य-कलाप और पठनीय पुस्तकों के सम्बन्ध में सुझाव भी रहते हैं। टेलीविज़न अथवा किसी भी दृश्य-श्रव्य साधन के उपयोग में—विद्यार्थियों की तैयारी का महत्त्व अध्यापकों की तैयारी से कम नहीं होता। कक्षा को तैयार करने में अध्यापकों की पुस्तिकाएँ निस्संदेह अत्यधिक सहायता करती हैं। कार्यक्रम के सम्बन्ध में पुस्तिका से उपयुक्त ज्ञान प्राप्त कर लेने पर, पर्दे पर आनेवाले विषय के सम्बन्ध में, अध्यापक विद्यार्थियों को सरलता से उत्सुक और जागरूक बना सकता है। फिरभी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों की तैयारी ऐसी न हो कि उनकी उत्सुकता और जिज्ञासा कुंठित हो जाए या अप्रत्याशित स्थितियों के प्रति उनकी सहज प्रतिक्रिया में बाधा पड़े।

प्रस्तुतीकरण—प्रस्तुतीकरण की पहली आवश्यक शर्त है अच्छी संग्रहण-स्थिति। संग्राही को फ़र्श से लगभग ६ फ़ीट की ऊँचाई पर रखना चाहिए ताकि दूसरे बच्चों के रहने पर भी कक्षा को चित्रों के देखने में कोई कठिनाई न पड़े। ध्वनि-व्यवस्था पर ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि प्रसारण में ध्वनि के ठीक-ठीक होने का बहुत महत्त्व होता है। छोटी कक्षा

२५। आकाशवाणी ने दो वाइडियो टेप-रेकार्डर उपलब्ध कर लिए हैं।

के लिए २१″ का संग्राही पर्याप्त होता है। यदि बच्चों की संख्या ३० से अधिक हो तो दो संग्राही काम में लाने चाहिए। बच्चे टेलीविज़न-सेट से ५-६ फ़ीट दूर बैठें लेकिन २० फ़ीट से ज़्यादा दूर नहीं। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पर्दे पर बाहर से प्रकाश की किरणें न पड़ें। कमरे में अँधेरा करना ज़रूरी नहीं क्योंकि सामान्य प्राकृतिक प्रकाश से चित्रों की स्पष्टता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कमरे में प्रकाश होना चाहिए ताकि बच्चे अपनी टिप्पणियाँ लिख सकें। किसी विश्वसनीय घड़ी के अनुसार ठीक समय पर कार्यक्रम चालू कर देना चाहिए। बच्चे टिप्पणियाँ लिखें या रेखाकृतियाँ बनाएँ, किन्तु यह काम तेज़ी से थोड़े समय में ही कर लें ताकि प्रसारण की कोई महत्त्वपूर्ण बात छूट न जाए। कुछ अध्यापक प्रसारण के दौरान ज़रा भी हस्तक्षेप नहीं करते, किन्तु कुछ ऐसे अध्यापक भी हैं जो प्रत्येक रोचक बात पर समयानुकूल और संक्षिप्त टिप्पणी देकर कक्षा का ध्यान विषय पर और अधिक केन्द्रित कर देते हैं।



स्कूली टेलीविज़न पाठ के बाद अन्तवर्ती शिक्षण-कार्य करता हुआ आध्यापक।
(आकाशवाणी के टेलीविज़न एकक के सौजन्य से)

अनुवर्ती कार्य—अनुवर्ती कार्य विषय के अनुसार विभिन्न प्रकार का हो सकता है। केवल एक सामान्य नियम है कि अध्यापक को इस बात का पूर्ण विश्वास हो जाना चाहिए

कि बच्चों ने कार्यक्रम को समझ लिया है। कार्यक्रम पर चर्चा करके यह विश्वास प्राप्त किया जा सकता है। अध्यापक चर्चा का निर्देशन करता है और कार्यक्रम के प्रत्येक मूलविचार को संक्षेप में प्रस्तुत करता है। वस्तुनिष्ठ या विषयपरक सामान्य प्रश्नों और परीक्षणों द्वारा, यह जाँच की जा सकती है कि विद्यार्थियों ने विषय को कितना समझा है। यदि प्रसारण किसी शिल्प या तकनीक से सम्बन्धित हो तो प्रसारण में प्रदर्शित तकनीकों के अभ्यास को अनुवर्ती कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।

२५ अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव में दृश्य-श्रव्य साधन

संसार की विभिन्न जातियों के बीच उनके सांस्कृतिक मान-मूल्यों और उनकी जीवन-पद्धतियों की समझ तथा पारस्परिक सद्भाव को बढ़ाने में दृश्य-श्रव्य साधन जो योग देते हैं उनकी चर्चा किए बिना दृश्य-श्रव्य शिक्षा सम्बन्धी कोई भी पुस्तक पूरी नहीं हो सकती। पूर्व और पश्चिम के विद्वान बहुत समय से एक-दूसरे की संस्कृतियों का अध्ययन करते आ रहे हैं, किन्तु जिस पारस्परिक समझ और सद्भाव पर विश्वशान्ति निर्भर है उसकी सिद्धि में तब तक कोई यथार्थ प्रगति नहीं हो सकती जब तक जीवन की सर्वाधिक निर्माणशील अवधि में सामान्य स्कूलों के बच्चों को सांस्कृतिक विभेदों का कुछ ज्ञान न कराया जाय। दृश्य-श्रव्य साधन बच्चों को यह ज्ञान सार्थक ढंग से देते हैं। साथही, उनमें प्रबुद्ध और सहानुभूतिपूर्ण अभिवृत्ति विकसित करने में भी सहायता करते हैं, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है।

पौर्वात्य और पाश्चात्य सांस्कृतिक मान-मूल्यों के पारस्परिक परिबोधन की अपनी दसवर्षीय (पहली जनवरी, सन् १९५७ से प्रारम्भ होनेवाली) प्रमुख प्रायोजना में यूनेस्को ने, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की अभिवृद्धि और उन्नति का दायित्व सौंपा गया है,

दृश्य-श्रव्य साधनों का महत्त्व स्वीकार किया है। उसने सतर्कतापूर्वक इस बात का अध्ययन किया है कि किस प्रकार के साधनों का निर्माण या उत्पादन किया जाना चाहिए, किस प्रकार और किन लोगों में उन्हें वितरित किया जाना चाहिए, और कहाँ तथा किस प्रकार उनका उपयोग किया जाना चाहिए।

इन समस्याओं पर विचार करने के लिए पिछले कुछ वर्षों में यूनेस्को ने दिल्ली में एक विचार-गोष्ठी, तीन अन्तर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठियाँ और कई बैठकें तथा सम्मेलन आयोजित किए हैं। जुलाई सन् १९६० में टोकियो में हुई बैठक में यह सुझाव दिया गया था कि जितनी जल्दी संभव हो, सभी देश पारस्परिक आदान-प्रदान के लिए ऐसी सामग्री तैयार करना शुरू करें जो अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव को बढ़ाने में सहायक हो। वहाँ निम्नलिखित बातों पर ज़ोर दिया गया था :

(क) ऐसी 'अध्ययन सामग्री' का उत्पादन, जिसमें विभिन्न देशों के जीवन और उनकी संस्कृति का चित्रण हो;

(ख) शैक्षणिक रेडियो-कार्यक्रमों की तैयारी और उसका आदान-प्रदान ;

(ग) विभिन्न शैक्षणिक अधिकारियों तथा अन्य टोलियों के बीच टेप-रेकार्डों का सीधा आदान-प्रदान।

ऐसी सामग्री के उत्पादन और उसके अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के व्यवहारिक पक्ष में मार्गदर्शन के लिए नीचे लिखे सुझाव दिए गए थे :

(क) इस योजना में रुचि रखनेवाले सभी देश शैक्षणिक फ़िल्मों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के समझौते "निर्बन्ध प्रवाह" (फ़्री फ़्लो) को स्वीकार करें।

(ख) स्थानीय उपयोग के लिए विदेशी फ़िल्मों के रूपान्तरण की विभिन्न पद्धतियों का अध्ययन किया जाना चाहिए।

(ग) फिल्मों के आदान-प्रदान की किसी भी बड़ी योजना में, विनिमय की जानेवाली फिल्मों में कम-से-कम एक फिल्म १६ मि० मी० की होनी चाहिए।

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न सरकारों द्वारा स्थापित फिल्म पुस्तकालयों के उपयोग के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

यूनेस्को के साथ सहयोग के लिए संगठित राष्ट्रीय आयोग इन सुझावों को सक्रियता से कार्यान्वित कर रहे हैं। उदाहरण के लिए भारतीय राष्ट्रीय आयोग ने 'अध्ययन सामग्री' के निर्माण का कार्य अपने हाथ में लिया है। इसमें राष्ट्रीय संस्कृति और आधुनिक भारतीय जीवन को चित्रित किया जाएगा। आशा है कि यह सामग्री भारत के स्कूलों में भी बच्चों को अपनी राष्ट्रीय विरासत और समस्याओं तथा देश की उपलब्धियों का समुचित बोध कराने में उपयोगी सिद्ध होगी।

पूर्वी और पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों के पारस्परिक अनुभावन की जो प्रमुख प्रायोजना यूनेस्को ने चालू की है उसे संसार के प्रायः सभी देशों का समर्थन प्राप्त हुआ है। जो अभियान प्रारम्भ किया गया है वह विशाल है और यद्यपि अभी तक कोई दृष्टव्य उपलब्धि नहीं हुई फिरभी इस प्रायोजना को जो विश्वव्यापी समर्थन प्राप्त हुआ है उससे स्पष्ट है कि यह प्रायोजना अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सद्भाव की व्यापक और सुदृढ़ आधार भूमि तैयार कर चुकी है।

पौर्वात्य और पाश्चात्य संस्कृतियों के पारस्परिक अनुभावन से संबंधित अपनी प्रमुख प्रायोजना को आगे बढ़ाने के लिए यूनेस्को ने कला-कृतियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित रंगीन स्लाइडों के सेट तैयार किए हैं:

१। मिश्र ... मक़बरों और मन्दिरों के चित्र
(पेंटिंग्स फ़्रॉम टोम्स ऐंड टेम्पिल्स्)

२। यूगोस्लाविया ... मध्ययुगीन भित्तिचित्र
(मिडीवल फ़्रेस्कोज़)

३। भारत ... अजन्ता की गुफ़ाओं के चित्र
(पेंटिंग्स फ़्रॉम अजन्ता केव्स)

४। ईरान ... फ़ारसी लघुचित्र
(पर्शियन मिनिएचर्स)

५। स्पेन ... रोमनशैली के चित्र
(रोमनेस्क पेंटिंग्स)

६। नार्वे ... स्टाव गिरजाघरों के चित्र
(पेंटिंग्स फ़्रॉम द स्टाव चर्चेज़)

७। मैसाक्रियो ... फ़्लोरेंस के भित्तिचित्र
(फ़्रेस्कोज़ इन फ़्लोरेंस)

८। आस्ट्रेलिया ... आदिवासियों की चित्रकृतियाँ
(एबॉरिजिनल पेंटिंग्स)

९। श्रीलंका ... मन्दिरों, चैत्यों और शिलाओं में अंकित चित्र
(पेंटिंग्स फ़्रॉम टेम्पिल् श्राइन ऐंड रॉक)

फ़्रांसीसी राष्ट्रीय आयोग द्वारा नीचे लिखे दो स्लाइड-सेट तैयार किए गए हैं :

१। पूर्व-पश्चिम (ओरिएंट-आक्सीडेंट)

२। गान्धार और मध्य एशिया की कला (द आर्ट आफ़ गान्धार ऐंड सेंट्रल एशिया)

स्पेन के राष्ट्रीय आयोग ने भी महान कलाकार वेलास्क्यू के कार्य के सम्बन्ध में ४० रंगोन पारदर्शियों की एक माला प्रकाशित की है। इन रंगीन चित्रों के साथ स्पेनी, फ़्रांसीसी और अँगरेज़ी भाषा में उनकी व्याख्यात्मक टीका भी दी गई है।

कलाकृतियों के सम्बन्ध में निर्मित इन स्लाइडों के अतिरिक्त, विभिन्न पूर्वी देशों की संस्कृति का बोध कराने के उद्देश्य से यूनेस्को ने छोटे-छोटे बच्चों के लिए 'यूनेस्को फ़ेबिल्स' (यूनेस्को नीतिकथाएँ) नाम से फिल्मपट्टियों की एक माला भी तैयार की है।

यूनेस्को फ़ेबिल् नं० २ भारत के संवन्ध में बनी है।

तीसरा खण्ड

परिशिष्ट

परिशिष्ट

शिक्षा के विभिन्न स्तरों और क्षेत्रों में उपयोगी कुछ दृश्य-श्रव्य सामग्री

१। शिशु-शालाओं और प्राइमरी स्कूलों के उपयोग के लिए

क—फ़िल्मपट्टियाँ

परीकथाएँ

१। सिंडरेला	नेशनल एजुकेशन ऐंड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, एपोलो बन्दर, बम्बई
२। द अग्ली उकलिंग	,,
३। द एम्परर्स न्यू क्लोद्ज़	,,
४। थम्बलिना	,,
५। द टिंडर बाक्स	,,
६। द मैजिक हार्स	,,
७। द स्लीपिंग ब्यूटी	,,
८। स्नो ह्वाइट ऐण्ड रेड रोज़	,,
९। स्टार आफ़ बेथलहेम	,,
१०। ए केन्टकी स्टोरी	,,
११। माशा ऐण्ड द बियर	,,
१२। यूनेस्को फ़ेबिल्स नं० १, २ और ३ ये परीकथाएँ छोटे बच्चों को यूनेस्को तथा विभिन्न पूर्वी देशों की संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान करा देती हैं।	,,

प्रकृति अध्ययन

१। पेट्स ऐंड देयर केयर	द सेंट्रल लाइब्रेरी, रिंग रोड नई दिल्ली १
२। रेड स्क्वेरेल	,,
३। फ़ॉक्स	,,
४। डोरमाउस	,,
५। वाइल्ड रैबिट	,,
६। बटरफ़्लाइज़	,,
७। वाटर बर्ड्स	,,
८। सम नेस्टिंग बर्ड्स	,,
९। सम डेज़र्ट ऐनिमल्स ऐंड हाऊ दे लिव	,,
१०। सी बर्ड्स	,,
११। फ़्लावर फ़ेमिली	,,
१२। फ़्राग्ज़	,,
१३। द कैट	,,
१४। द काऊ	,,
१५। द डाग	,,
१६। द एलिफ़ैंट	,,
१७। द हार्स	,,
१८। फ़्रेश वाटर फ़िश	,,
१९। हेजहॉग	नेशनल एजुकेशन ऐंड इन्फ़र्मेशन फ़िल्म्स, बम्बई
२०। ऐनिमल्स ऐंड बर्ड्स आफ़ द वर्ल्ड भाग १ और २	,,
२१। आर्कटिक वाइल्ड फ़्लावर्स	,,
२२। द ब्लैक बियर	,,
२३। द बीवर	,,
२४। लैंक्स आफ़ कनाडा	,,
२५। द ग्रासहूपर	,,
२६। हाऊ ऐनिमल्स प्रेपेयर फ़ार विन्टर	,,

अँगरेज़ी

१। द अल्फ़ाबेट	द ब्रिटिश काउंसिल
२। द नाउन	,,
३। द वर्ब	,,
४। द इंग्लिश वावेल्स	,,
५। वोकैबुलरी	,,

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य विज्ञान

१। आईज़ ऐण्ड देयर केयर	,,
२। फ़ूड ऐण्ड न्यूट्रिशन	,,
३। द लिटिल पीपुल ऐण्ड देयर टीथ	,,
४। द मिल्क वी ड्रिन्क	,,
५। कीपिंग क्लीन	यूनिवर्सल एजुकेशनल फिल्म्स, आसफ़अली रोड, नई दिल्ली
६। स्ट्रांग टीथ	,,
७। रेस्ट ऐण्ड स्लीप	,,
८। स्ट्रेट ऐण्ड टाल	,,
९। फ़ूड्स फ़ार हेल्थ	,,
१०। कीपिंग वेल	,,

भूगोल

१। गैंजेज़ बेसिन	द ब्रिटिश काउंसिल
२। माउंट एवरेस्ट	,,
३। कैप्टेन स्काट्स लास्ट ऐंटार्कटिक एक्सपेडिशन	,,
४। आइसबर्ग्स	,,
५। लण्डन	,,

६। लांगीट्यूड ऐण्ड टाइम	द ब्रिटिश काउंसिल
७। पेनिन्सुलर इण्डिया	,,

रचनात्मक कार्यकलाप

१। लीनो कटिंग	,,
२। पेपर टियरिंग	,,
३। लेट्स मेक ए ट्रेन	,,
४। ड्राइंग	यूनिवर्सल एजुकेशनल फिल्म्स, नई दिल्ली
५। कटिंग ऐण्ड पेस्टिंग	,,
६। पेन्टिग	,,
७। फिंगर पेन्टिग	,,
८। वाटर कलरिंग	,,
९। क्ले मॉडेलिंग	,,

सामान्य

१। द बी० बी० सी०	द ब्रिटिश काउंसिल
२। ए क़लेक्शन आफ़ डाल्स	,,
३। ऐन इंग्लिश चाइल्ड	,,
४। नेचर कलैंडर	,,
५। हाऊ टु बिहेव	,,
६। थ्री ब्रिगैड्स-रोड सेफ़्टी	,,
७। आई ऐम ए लेटर	नेशनल एजुकेशन ऐण्ड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, बम्बई
८। स्टैम्प्स ऐण्ड हाऊ दे आर मेड	,,
९। जैक ऐण्ड जिल लर्न रोड सेफ़्टी	,,
१०। टेलिंग द टाइम	,,
११। यूज़िंग ए रूलर	,,

स्कूली व्यवहार

१। बीइंग प्राम्प्ट		यूनिवर्सल एजुकेशनल फिल्म्स, नई दिल्ली
२। केयरिंग फ़ार स्कूल मैटीरियल्स		,,
३। कान्सीडरेशन आफ़ अदर्स		,,

ख—फिल्में (१६ मि० मी०)

गणित

१। द मीनिंग आफ़ प्लस ऐंड माइनस	(अँगरेज़ी, ११ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। ऐडिशन इज़ ईज़ी	(,, ११ ,,)	,,
३। सब्ट्रैक्शन इज़ ईज़ी	(,, १० ,,)	,,
४। मल्टीप्लिकेशन इज़ ईज़ी	(,, १० ,,)	,,
५। डिविज़न इज़ ईज़ी	(,, ११ ,,)	,,
६। व्हाट आर डेसिमल्स ?	(,, १० ,,)	,,
७। पार्ट्स आफ़ नाइन	(,, ११ ,,)	यूनिवर्सल एजुकेशनल फिल्म्स, नई दिल्ली
८। पार्ट्स आफ़ थिंग्स	(,, ११ ,,)	,,
९। द टीन नम्बर्स	(,, १० ,,)	,,
१०। व्हाट इज़ फ़ोर	(,, १५ ,,)	,,

प्रकृति अध्ययन

१। द ग्रोथ आफ़ फ़्लावर्स	(अँगरेज़ी, ११ ,,)	द सेन्ट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। अवर ऐनिमल नेबर्स	(,, १० ,,)	,,
३। कामन ऐनिमल्स आफ़ द वुड्स	(,, ११ ,,)	,,
४। पोएट्री आफ़ नेचर	(,, ६ ,,)	,,
५। ग्रे स्क्वेरेल	(,, ११ ,,)	,,

६। ऐनिमल होम्स	(अँगरेज़ी, ११ मि०)	नेशनल एजुकेशन ऐंड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, बम्बई
७। स्टोरी आफ़ बटरफ़्लाई	(मूक, ११ ,,)	,,
८। बर्डस आर इन्टरेस्टिंग	(अँगरेज़ी, ११ ,,)	,,
९। हाऊ बर्ड्स फ़ीड देयर यंग	(मूक, १५ ,,)	,,
१०। आस्ट्रिचेज़ इन एफ़्रिका	(मूक, ७ ,,)	,,
११। कंगारूज़	(अँगरेज़ी, ११ ,,)	,,
१२। एनिमल्स आफ़ द कैट ट्राइब	(मूक, ५ ,,)	,,
१३। थ्री लिटिल ब्रूइन्स इन द वुड	(अँगरेज़ी, १० ,,)	,,
१४। सीज़नल चेंजेज़ इन ट्रीज़	(,, ११ ,,)	,,
१५। ऐनिमल्स ग्रोइंग अप	(,, ११ ,,)	,,
१६। ऐडवेंचर्स आफ़ बन्नी रैबिट	(,, ११ ,,)	,,
१७। ब्लैक बियर ट्विन्स	(,, ११ ,,)	,,
१८। फ़ीडिंग टाइम ऐट द ज़ू	(,, ११ ,,)	,,
१९। लिव टेड्डी बियर्स	(,, ११ ,,)	,,
२०। राउण्ड द लण्डन ज़ू	(,, १३ ,,)	,,
२१। ज़ूज़ हू	(,, ९ ,,)	,,
२२। पेन्गुइन आईलैण्ड	(,, ६ ,,)	,,
२३। द स्पैरो हॉक	(,, ११ ,,)	,,
२४। टिटमाउस द वीवर	(मूक, ६ ,,)	,,
२५। विंगेड मेसेंजर्स	(मूक, ८ ,,)	,,

रचनात्मक कार्यकलाप

१। केयर आफ़ आर्ट मैटीरियल्स	(अँगरेज़ी, ११ मि०)	यूनिवर्सल एजुकेशन फिल्म्स, नई दिल्ली
२। ल्यट्स प्ले विद क्ले : एनिमल्स	(,, ११ ,,)	,,
३। ल्यट्स प्ले विद क्ले : बाउल्स	(,, ११ ,,)	,,

सामाजिक अध्ययन

१। ड्वेलर्स इन माउन्टेन कन्ट्रीज़	(अँगरेज़ी, ९ मि०)	द सेन्ट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। चिल्ड्रेन आफ़ हालैण्ड	(,, ११ ,,)	,,
३। चिल्ड्रेन आफ़ स्विटज़रलैण्ड	(,, ११ ,,)	,,
४। ग्रीक चिल्ड्रेन	(,, १६ ,,)	,,
५। अरेबियन चिल्ड्रेन	(,, १७ ,,)	,,
६। बोट्स	(,, ११ ,,)	,,

मनोरंजन की फिल्में

१। स्नो ह्वाइट ऐण्ड रोज़ रेड	(अँगरेज़ी, ११ मि०)	द सेन्ट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। सिंडरेला	(,, ११ ,,)	,,
३। ब्यूटी ऐण्ड द बीस्ट	(,, ११ ,,)	,,
४। अलादीन ऐण्ड द वंडरफ़ुल लैम्प	(,, ११ ,,)	,,
५। द ब्ल्यू लाइट	(,, ११ ,,)	,,
६। द हेयर ऐण्ड द टार्टवाएज़	(,, ११ ,,)	,,
७। फ़ॉक्स ऐण्ड द रूस्टर	(,, ११ ,,)	,,
८। स्ट्रे लैम्ब	(,, ९ ,,)	,,
९। प्रिंसेस ऐण्ड द ड्रैगन	(,, २२ ,,)	,,
१०। मार्शा ऐण्ड द विकेड गीज़	(,, ११ ,,)	,,
११। स्टैग ऐण्ड द वूल्फ़	(,, ११ ,,)	,,
१२। चार दोस्त	(हिन्दी, ७० ,,)	,,
१३। नटखट चन्दू	(,, ११ ,,)	,,
१४। अलादीन ऐण्ड द मैजिक लैम्प	(अँगरेज़ी, ११ ,,)	,,
१५। ब्वाएल, ब्वाएल, लिटिल पॉट	(,, १८ ,,)	,,
१६। द कैलिफ़ स्टार्क	(,, १० ,,)	,,
१७। सिंडरेला	(रूसी, अँगरेज़ीशीर्ष सहित, ५० ,,)	,,
१८। द एन्चैंटेड रिवर	(अँगरेज़ी, १० ,,)	,,

१९। द फ़्राग प्रिंस	(अँगरेज़ी, १० मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२०। द गैलेंट लिटिल टेलर	(,, १० ,,)	,,
२१। द गोल्डेन ऐन्टीलोप	(,, ३० ,,)	,,
२२। द लिजेण्ड आफ़ द पाइड पाइपर	(,, ११ ,,)	,,
२३। द थ्री विशेज़	(,, ११ ,,)	,,
२४। द ट्रेज़र आफ़ बर्ड्स आइलैण्ड	(हिन्दी, ९० ,,)	,,
२५। अगली डकलिंग	(अँगरेज़ी, ११ ,,)	,,
२६। ब्रेव हार्ट	(,, १८ ,,)	,,
२७। द आनेस्ट वुउमैन	(,, ११ ,,)	,,
२८। द मैजिक ट्रेज़र	(,, २२ ,, रंगीन)	,,
२९। समिको	(,, २२ ,, ,,)	,,
३०। द ऐपिल ट्री विद द गोल्डेन फ्रूट	(,, ३० ,,)	,,
३१। द लिटिल ऐंजिल	(,, १४ ,,)	,,
३२। बिम	(,, ८५ ,,)	,,
३३। चुक ऐण्ड गेक (रूसी, अँगरेज़ी शीर्ष सहित, १०० ,,)		,,
३४। नाइन लिटिल चिकेन्स	(,, १५ ,, रंगीन)	,,
३५। द पेंटेड फ़ॉक्स	(,, १२ ,, ,,)	,,
३६। द स्टोरी आफ़ ए ड्रैगन	(,, ४० ,, ,,)	,,
३७। लेनोरा	(,, १२ ,,)	,,
३८। द प्रिंसेस विद गोल्डेन हेयर	(,, ४८ ,,)	,,
३९। रम्पेलस्टिल्टस्किन	(,, ११ ,,)	,,
४०। स्लीपिंग ब्यूटी	(,, १० ,,)	,,
४१। लाइटहाउस—जलदीप	(हिन्दी, ९० ,,)	द चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी, वोर्ली, बाम्बे
४२। बाल रामायण	(,, ९० ,,)	,,
४३। रामशास्त्री का न्याय	(,, ८० ,,)	,,
४४। क्रो ऐण्ड फ़ॉक्स	(,, ११ ,,)	,,
४५। ल्यू ब्रदर्स	(,, ३० ,,)	,,
४६। स्काउट कैम्प	(,, ३० ,,)	,,
४७। गुरु भक्ति	(,, ६० ,,)	,,

४८। सरल विश्वास	(हिन्दी, २० मि०)	द चिल्ड्रेन्स फिल्म सोसायिटी, वोर्ली, बाम्बे
४९। पंचतंत्र की एक कहानी	(„ २२ „)	„
५०। चेतक	(„ २५ „)	„
५१। मीरा का चित्र	(„ ४२ „)	„
५२। ईद मुबारक	(„ २२ „)	„
५३। छत्रपति शिवाजी	(„ ६० „)	„
५४। द स्टोरी आफ़ टू स्टैम्प्स	(„ ३४ „)	„
५५। सावित्री	(„ ४५ „)	„
५६। राजू और गंगाराम	(„ ४५ „)	„
५७। जैसे के तैसा	(हिन्दी)	„
५८। डाक घर	(हिन्दी)	„
५९। प्रिंस बयाया	(संगीत, ८५ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
६०। द प्राउड प्रिंसेस	(चेक, शीर्ष अँगरेज़ी, ५८ „)	„
६१। द सीक्रेट केव्स	(अँगरेज़ी, ६२ „)	„

जीवन-चरित

१। अवर प्राइम मिनिस्टर (नेहरू)	(हिन्दी, २२ „)	„
२। महात्मा गान्धी	(अँगरेज़ी, १९ „)	„
३। रवीन्द्र नाथ टैगोर	(हिन्दी, २० „)	„
४। चिल्ड्रेन्स मैगज़ीन नं० २ (नेहरू पर)	„ ११ „)	„
५। चिल्ड्रेन्स डे (नेहरू पर)	(„ १२ „)	„

२। उच्च/उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में उपयोग के लिए

क—फिल्मपट्टियाँ

नागरिक शास्त्र और सामयिक मामले

१। द यूनाइटेड नेशन्स ऐट वर्क	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। सिटिज़नशिप	"
३। एफ़० ओ० ए० इन एशिया	"
४। वर्ल्ड पापुलेशन	पिक्चर पोस्ट फिल्मस्ट्रिप्स (नेशनल एजुकेशन ऐण्ड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, बाम्बे)

भूगोल

१। स्विटज़रलैंड	द सेन्ट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। टर्की	"
३। आस्ट्रेलिया	"
४। बेल्जियम	"
५। ब्रिटेन टुडे (आधुनिक ब्रिटेन)	"
६। बर्मा	"
७। सीलोन (श्रीलंका)	"
८। चाइना (चीन)	"
९। फ़िनलैंण्ड	"
१०। फ़्रांस	"
११। जर्मनी, नार्थ सेक्शन (उत्तरी खंड)	"
१२। जर्मनी, साउथ सेक्शन (दक्षिणी खंड)	"

१३। डेन्मार्क	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
१४। ईस्ट ऐफ़्रिका (पूर्वी अफ़्रिका)	"
१५। गैंजेज़ बेसिन (गंगा की घाटी)	"
१६। हालैंड	"
१७। माडर्न ग्रीस (आधुनिक यूनान)	"
१८। जापान-लाइफ़ ऐंड इंडस्ट्रीज़ (जापान-जीवन और उद्योग)	"
१९। लैटीट्यूड ऐंड लांगीट्यूड (अक्षांश और देशान्तर)	"
२०। मलाया	"
२१। नार्थ अमेरिका (उत्तरी अमरीका)	"
२२। न्यूज़ीलैंड	"
२३। साउथ चाइना (दक्षिणी चीन)	"
२४। साउथ ऐफ़्रिका (दक्षिणी अफ़्रीका)	"
२५। स्वीडेन	"
२६। स्पेन	"
२७। वेस्ट ऐफ़्रिका (पश्चिमी अफ़्रीका)	"
२८। इजिप्ट (मिश्र)	"
२९। यू. एस. ए. ईस्ट स्टेट्स (अमरीका-पूर्वी राज्य)	"

३०। द गोल्ड कोस्ट	पिक्चर पोस्ट फिल्मस्ट्रिप्स (नेशनल एजुकेशन ऐंड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, बाम्बे)
३१। द वर्क आफ़ रिवर्स (नदियों की कारगुज़ारी)	"
३२। हांगकांग	"
३३। टर्की	"
३४। द वर्क आफ़ वेदर (मौसम की कारगुज़ारी)	"
३५। फ़िलिप्पाइन आइलैंड्स (फ़िलिपाइन द्वीप-समूह)	"
३६। यू. एस. ए. वेस्ट स्टेट्स (संयुक्त राज्य अमरीका—पश्चिमी राज्य)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
३७। यू. एस. ए. मिडिल स्टेट्स (संयुक्त राज्य अमरीका—मध्यक्षेत्रीय राज्य)	"
३८। द फ़ेस आफ़ कनाडा (कनाडा की झाँकी)	ब्रिटिश इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़
३९। नेशन्स आफ़ द कामन्वेल्थ—इन्ट्रोड्यूसिंग आस्ट्रेलिया (कामन्वेल्थ के राष्ट्र—आस्ट्रेलिया की झाँकी)	"
४०। नेशन्स आफ़ द कामन्वेल्थ—इन्ट्रोड्यूसिंग साउथ ऐफ़्रिका (कामन्वेल्थ के राष्ट्र-दक्षिणी अफ़्रीका की झाँकी)	"
४१। नेशन्स आफ़ द कामन्वेल्थ—इन्ट्रोड्यूसिंग न्यूज़ीलैंड (कामन्वेल्थ के राष्ट्र—न्यूज़ीलैंड की झाँकी)	" "
४२। सूडान	"

रसायन

१। कार्बन ऐंड इट्स अक्साइड्स (कार्बन और उसके आक्साइड)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। क्लोरीन ऐंड इट्स कॅम्पोनेंट्स (क्लोरीन और उसके संघटक)	"

३। कैल्शियम ऐंड इट्स कॅम्पोनेंट्स (कैल्शियम और उसके संघटक)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
४। सल्फ़र ऐंड इट्स कॅम्पोनेंट्स (सल्फ़र और उसके संघटक)	,,
५। कॉपर ऐंड इट्स कॅम्पोनेंट्स (ताँबा और उसके संघटक)	,,
६। आयरन ऐंड स्टील (लोहा और इस्पात)	,,
७। लीड (सीसा)	,,
८। सोडिएम क्लोराइड	,,
९। ज़िंक (जस्ता)	,,

क्रिया विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान

१। न्यूट्रिशन (पोषण)	,,
२। मलेरिया	,,
३। फ़ूड ऐंड हेल्थ (भोजन और स्वास्थ्य)	,,
४। केयर आफ़ टीथ (दाँतों की रक्षा)	

शिल्प

१। द क्रैफ़्ट्स्मैन ऐंड वुड (शिल्पी और काष्ठ)	पिक्चर पोस्ट फिलमस्ट्रिप्स, (नेशनल एजुकेशन ऐंड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, बाम्बे
२। द क्रैफ़्ट्स्मैन ऐंड मेटल (शिल्पी और धातु)	,,
३। द क्रैफ़्ट्स्मैन ऐंड लेदर (शिल्पी और चमड़ा)	,,

साहित्य

१। हैमलेट	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। हेनरी पंचम	"
३। मैकबेथ	"
४। रोमियो ऐंड जूलिएट	"
५। ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम	"
६। इन्ट्रोडक्शन टु शेक्सपियर	"

इतिहास

१। क्लाइव	"
२। मेकिंग आफ़ माडर्न जर्मनी (आधुनिक जर्मनी का निर्माण)	"
३। नेपोलियानिक वार्स टु द सेकेंड वर्ल्ड वार (नेपोलियन के युद्धों से द्वितीय विश्वयुद्ध तक)	"
४। रोमन कांक्वेस्ट आफ़ ब्रिटेन (रोम द्वारा ब्रिटेन की विजय)	"
५। नेल्सन	"
६। चेंजेज़ ऐट द ऐंड आफ़ ऐटीन्थ सेंचुरी (अठारहवीं सदी के अन्त में हुए परिवर्तन)	"
७। वैदिक एज (वैदिक काल)	"
८। द फ्रेंच रेवोल्यूशन (फ़्रांस की क्रान्ति)	पिक्चर पोस्ट फिल्मस्ट्रिप्स (नेशनल एजुकेशन ऐंड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, बाम्बे)
९। द हंड्रेड इयर्स वार (शतवर्षीय युद्ध)	"
१०। द रेनासाँ (पुनर्जागरण)	"

भौतिकी

१। एटमिक एनर्जी (आणविक ऊर्जा)	पिक्चर पोस्ट फिल्मस्ट्रिप्स, (नेशनल एजुकेशन ऐंड इन्फ़र्मेशन फिल्म्स, बाम्बे)
२। एलेक्ट्रिसिटी ऐंड मैग्नेटिज़्म-इन्ट्रोडक्शन (बिजली और चुम्बकत्व—परिचय)	,,
३। एनर्जी (ऊर्जा)	,,
४। कंडेन्सर्स (संघनित्र)	,,
५। हीट (ऊष्मा)	,,

ख—फिल्में (१६ मि० मी०)

गणित

१। व्हाट और फ़्रैक्शन्स ? (भिन्नें क्या हैं ?)	(अँगरेज़ी, १० मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। वी डिस्कवर फ़्रैक्शन्स (भिन्नों की खोज)	(,, १० ,,)	,,
३। ज्योमेट्री ऐंड यू (ज्यामिति और आप)	(,, १० ,,)	,,
४। द लैंग्वेज आफ़ द ग्राफ़्स (ग्राफ़ों की भाषा)	(,, १२ ,,)	,,
५। डिस्क्रिप्टिव ज्योमेट्री (वर्णनात्मक ज्यामिति)	(,, २२ ,,)	,,

भूगोल

१। फ़ोर सीज़न्स (चार ऋतुएँ)	(,, ३० ,,)	,,
२। डे ऐंड नाइट (दिन और रात)	(,, ९ ,,)	,,

३। अर्थ-रोटेशन ऐंड रेवोल्यूशन	(अँगरेज़ी,	९ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
(धरती—परिक्रमण और घूर्णन)			
४। अर्थ—सर्फ़ेस ऐंड क्लाइमेट	(मूक,	१२ „)	„
(धरती—धरातल और जलवायु)			
५। वाल्केनोज़	(„	१५ „)	„
(ज्वालामुखी)			
६। वेदर (मौसम)	(„	१४ „)	„
७। अर्थ—लैटीव्यूड ऐंड लांगीव्यूड	(अँगरेज़ी,	९ „)	„
(धरती—अक्षांश और देशान्तर)			
८। मैजेस्टिक नार्वे	(„	२० „)	„
(भव्य नार्वे)			
९। पिक्चरस्क स्वीडेन	(„	२२ „)	„
(चित्रोपम स्वीडेन)			
१०। पिक्चरस्क डेनमार्क	(„	२० „)	„
(चित्रोपम डेनमार्क)			
११। बेल्जियम	(„	२२ „)	„
१२। गंगा	(हिन्दी-अँगरेज़ी,	११ „)	„
१३। इंडस्ट्रियल मैसूर	(„	२३ „)	„
(उद्योग-लग्न मैसूर)			
१४। स्वेज़ कैनाल	(अँगरेज़ी,	९ „)	„
१५। इंट्रोड्यूसिंग ईस्ट ऐफ़्रिका	(„	२० „)	ब्रिटिश इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़
(पूर्वी अफ़्रीका की झाँकी)			
१६। मीट न्यूज़ीलैंड	(„	४० „)	„
(न्यूज़ीलैंड की झाँकी)			
१७। ब्यूटीफ़ुल न्यूज़ीलैंड	(„	२० „)	„
(मनोहर न्यूज़ीलैंड)			
१८। दिस इज़ मलाया	(„	१३ „)	„
(यह है मलाया)			

१९। आस्ट्रेलिया	(अँगरेज़ी, १० „)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२०। ब्रिटिश आइल्स (ब्रिटिश द्वीपसमूह)	(„ ६ „)	„
२१। मेजर इंडस्ट्रीज़ आफ़ इंडिया—ऐग्रीकल्चर, टेक्स्टाइल्स, आयरन ऐंड स्टील (भारत के प्रमुख उद्योग—खेती, वस्त्रनिर्माण, लोहा, और इस्पात)	(हिन्दी-तामिल, तेलुगु-मराठी, बँगला, १ घंटा ५७ मिनट)	बर्मा शेल
२२। एलांग द टिस्टा (तिस्ता के किनारे)	(हिन्दी रंगीन, १० मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२३। केरल	(हिन्दी १७ $\frac{१}{२}$ मि०)	„
२४। उज्जैनी	(„ ११ „)	„
२५। राउंड आफ़ द सीज़न्स (ऋतुओं का चक्र)	(अँगरेज़ी, १० „)	„
२६। दिस इज़ फ़िनलैंड (यह है फ़िनलैंड)	(„ २७ „)	„
२७। मध्य प्रदेश	(हिन्दी, १८ $\frac{१}{२}$ „)	„
२८। ए फ़ेमिली इन बैंगलोर (बँगलौर का एक परिवार)	(अँगरेज़ी, ३३ „)	बर्मा शेल
२९। पेरिस ऐंड वार्साई (पेरिस और वार्साई)	(„ १५ „)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली

भौतिकी

१। साउंड (ध्वनि)	(अँगरेज़ी, १० मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। साउंड (बाई मैकग्राहिल) (ध्वनि-मैकग्राहिल द्वारा)	(„ ७ „)	„

३। कंडक्शन (संवहन)	(अँगरेज़ी, ७ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
४। रैडिएशन (विकिरण)	(„ ६ „)	„
५। एलिक्ट्रिसिटी ऐंड हीट (बिजली और ऊष्मा)	(„ ८ „)	„
६। एटमिक एनर्जी आणविक ऊर्जा)	(„ ११ „)	„
७। लॉज़ आफ़ मोशन (गति-नियम)	(„ १२ „)	„
८। ग्रैविटी ऐंड सेंटर आफ़ ग्रैविटी (गुरुत्व और गुरुत्व-केन्द्र)	(„ १२ „)	„
९। हीट कंडक्शन (ऊष्मा संवहन)	(„ १२ „)	„

रसायन

१। कोलायड्स (कोलायड)	(अँगरेज़ी, ११ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। मॉलिक्यूलर थिएरी आफ़ मैटर (द्रव्य का आणविक सिद्धान्त)	(„ ११ „)	„
३। ऑक्सीजन	(„ १० „)	„
४। कलर (रंग)	(„ १६ „)	„
५। कैटेलिसिस (उत्प्रेरण)	(„ ११ „)	„
६। क्रिस्टल	(„ ७ „)	„
७। वाटर (पानी)	(„ ११ „)	आई० सी० आई०
८। ऐमोनिया	(„ १४ „)	„
९। क्लोराइन	(„ १५ „)	„

वनस्पति विज्ञान

१। फ़्राम फ़लावर टु फ़्रूट (फूल से फल)	(मूक, १५ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। हाउ प्लांट्स फ़ीड (पौधों की भोजन विधि)	(अँगरेज़ी, १० ,,)	,,
३। लीव्स (पत्ते)	(,, ११ ,,)	,,
४। रूट्स (जड़ें)	(,, १० ,,)	,,
५। पॉलिनेशन (पराग सेचन)	(,, ८ ,,)	,,
६। द लाइफ़ साइकिल आफ़ मेज़	(,, १० ,,)	ब्रिटिश इन्फ़र्मेशन सर्विस

सामान्य विज्ञान

१। ऐक्शन ऐंड रिऐक्शन (क्रिया और प्रतिक्रिया)	(अँगरेज़ी, १२ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। एयर प्रेशर (वायु दाव)	(,, १२ ,,)	,,
३। बैटरी एलेक्ट्रिसिटी (बैटरी विद्युत्)	(,, १२ ,,)	,,
४। सेंट्रीफ़्यूगल फ़ोर्स (अपकेन्द्री बल)	(,, १२ ,,)	,,
५। डेंसिटी (घनत्व)	(,, १२ ,,)	,,
६। एलेक्ट्रिक सर्किट्स (विद्युत-परिपथ)	(,, १२ ,,)	,,
७। फ़ालिंग बाडीज़ (गिरते पिण्ड)	(,, १२ ,,)	,,

८। फ़ायर (आग)	(अँगरेज़ी, १२ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
९। फ़ोर्स (बल)	(,, १२ ,,)	,,
१०। फ़िक्शन (घर्षण)	(,, १२ ,,)	,,
११। आइस (बर्फ़)	(,, १२ ,,)	,,
१२। आप्टिकल इल्यूज़न्स (दृष्टि भ्रम)	(,, १२ ,,)	,,
१३। पास्कल्स लॉ (पास्कल का नियम)	(,, १२ ,,)	,,
१४। द पेण्डुलम (लोलक)	(,, १२ ,,)	,,
१५। प्रापर्टीज़ आफ़ गैसेज़ (गैसों के गुणधर्म)	(,, १२ ,,)	,,
१६। प्रापर्टीज़ आफ़ लिक्विड्स	(,, १२ ,,)	,,
(द्रवों के गुणधर्म)	(,, १२ ,,)	,,
१७। रिफ़्लेक्शन (परावर्तन)	(,, १२ ,,)	,,
१८। रिफ़्रैक्शन (वर्तन)	(,, १२ ,,)	,,
१९। रेफ़्रीजेरेशन (प्रशीतन)	(,, १२ ,,)	,,

क्रिया विज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान

१। ऐक्शन आफ़ द ह्यूमन हार्ट (मानव हृदय की क्रिया)	(मूक, ६ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। द ह्यूमन बॉडी (मानव शरीर)	(अँग., हिन्दी, ९ मि०)	द यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़

३। हाउ द रेस्पिरेटरी सिस्टम फ़ंक्शन्स (श्वास तंत्र की क्रिया-विधि)	(मूक, १४ ,,)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
४। नोज़, थ्रोट ऐंड इयर्स (नाक, गला और कान)	(अँगरेज़ी, १० मि०)	,,
५। डाइजेशन आफ़ फ़ूड्स (भोजन का पाचन)	(,, ११ ,,)	,,
६। वर्क आफ़ द किड्नीज़ (गुर्दों का काम)	(,, ११ ,,)	,,
७। हाउ वी हियर (हमारी श्रवण-प्रक्रिया)	(मूक, ६ ,,)	,,
८। हाउ वी सी (हमारी दर्शन-प्रक्रिया)	(,, ८ ,,)	,,
९। द नर्वस सिस्टम (तंत्रिका-तंत्र)	(अँगरेज़ी, ११ ,,)	,,
१०। स्लीप फ़ार हेल्थ (स्वास्थ्य के लिए नींद)	(अँग., हिन्दी, १२ ,,)	,,
११। हाउ डिज़ीज़ ट्रैवेल्स (रोग कैसे फैलता है)	(अँग., हिन्दी, बँगला, १० मि०)	यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़ कलकत्ता से
१२। इन्सेक्ट्स ऐज़ कैरियर्स आफ़ डिज़ीज़ (रोग के वाहक : कीड़े)	,, ,,	,,
१३। अन्डर्स्टैंडिंग विटैमिन्स (विटामिन क्या हैं ?)	(अँगरेज़ी, १५ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
१४। फ़ाइट अगेंस्ट डिज़ीज़ (रोग से बचाव)	(,, ८ ,,)	आई० सी० आई०

जीव विज्ञान

१। इन्ट्रोडक्शन टु बायोलोजी (जीव विज्ञान का परिचय)	(अँगरेज़ी, १३ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। रोमांस आफ़ लाइफ़	(मूक, १४ ,,)	,,
३। द अर्लियर ऐंड सिम्लर फ़ार्म्स आफ़ लाइफ़ ऑन अर्थ (जीवन के पूर्वगामी सरल रूप)	(मूक, १० ,,)	,,
४। द टोड (मेढक या भेक)	(अँगरेज़ी, ७ ,,)	ब्रिटिश इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़

इतिहास

१। मिडीवल इँग्लैंड (मध्ययुगीन इँग्लैंड)	(अँगरेज़ी, १० मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। स्टुअर्ट ब्रिटेन (स्टुअर्ट कालीन ब्रिटेन)	(,, १० ,,)	,,
३। सिक्स इयर्स आफ़ फ़्रीडम (इंडिया) (भारतीय स्वाधीनता के छह वर्ष)	(अँग., हिन्दी १३ मि०)	,,

सामान्य ज्ञान

१। डु यू नो ? (क्या आप जानते हैं ?)	(हिन्दी १० मि०)	,,
२। विंग्स आफ़ यस्टर्डे (अतीत के पंख)	(अँगरेज़ी, १९ ,,)	ई. एस. एस. ओ.
३। स्टोरी आफ़ स्टोरेज बैटरी (संचायक बैटरी की कहानी)	(,, ३० ,,)	,,

४। व्हेयर माइलेज विगिन्स (मीलदूरी का प्रारम्भ)	(अँगरेज़ी, १९ मि०)	ई एस. एस. ओ.
५। कोणार्क	अँग.	डनलप
६। द रोड टु अम्बत्तूर (अम्बत्तूर की सड़क)	"	"
७। द स्टोरी आफ़ पेनिसिलिन (पेनिसिलिन की कहानी)	(" ९ ")	आई. सी. आई.
८। रेडियो स्टोरी (रेडियो की कहानी)	(" १० ")	फ़िलिप्स
९। मैजिक विंडो (टेलीविज़न) (जादुई खिड़की : टेलीविज़न)	(" २० ")	"
१०। पेन-टेल-ट्रॉन	(" १० ")	"
११। द मिरेकिल आफ़ लाइट (प्रकाश का चमत्कार)	(" १६ ")	"

३. अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाओं में उपयोग के लिए

क—फिल्मपट्टियाँ

१। ड्राइंग इज़ फ़न	यूनाइटेड स्टेट्स एजेंसी फ़ार इन्टर्नेशनल डेवलपमेंट, नई दिल्ली
२। एनरिचिंग द करीकुलम विद फिल्मस्ट्रिप्स	"
३। फिल्मस्ट्रिप प्रेपरेशन	"
४। हैण्डमेड लैंटर्न स्लाइड्स	"
५। हाऊ टु कीप योर बुलेटिन बोर्ड एलाइव	"
६। हाऊ टु मेक ए पपेट	"
७। हाऊ टु मेक ऐंड यूज़ द फ़ेल्ट बोर्ड	"

८। हाऊ टु आर्गेनाइज़ फ़ील्ड ट्रिप्स	यूनाइटेड स्टेट्स एजेंसी फ़ार इन्टर्नेशनल डेवलपमेंट, नई दिल्ली
९। इन्ट्रोड्यूसिंग फिल्मस्ट्रिप्स	,,
१०। मेकिंग योर चाक टीच	,,
११। माउन्टिंग पिक्चर्स	,,
१२। ओपेक प्रोजेक्टर	,,
१३। पैरेड आफ़ बुलेटिन बोर्ड्स	,,
१४। पपेट हेड्स ऐंड हैंड्स	,,
१५। टीच विद स्टिल पिक्चर्स	,,
१६। टीच विद द फिल्मस्ट्रिप	,,

ख—फिल्में

१। ऐप्रोच टु आर्ट टीचिंग	(अँगरेज़ी, १९ मि०)	आस्ट्रेलियन हाईकमीशन चाणक्यपुरी, नई दिल्ली
२। टीचिंग यंग चिल्ड्रेन	(,, १९ ,,)	ब्रिटिश इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़, नई दिल्ली
३। फ़ेल्ट बोर्ड इन टीचिंग	(,, ९ ,,)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
४। फ़ील्ड ट्रिप	(,, १० ,,)	,,
५। ऑडियो विज़ुअल मैटीरिएल्स इन टीचिंग	(,, १२ ,,)	,,
६। चाकबोर्ड यूटिलाइज़ेशन	(,, १५ ,,)	,,
७। द बुलेटिन बोर्ड : ऐन एफ़ेक्टिव टीचिंग डिवाइस	(,, ११ ,,)	,,
८। फ़्लैनेलग्राफ़	(,, २७ ,,)	,,
९। पोस्टर मेकिंग	(,, १० ,,)	,,
१०। फ़िंगर पेंटिंग मेथड्स	(,, ९ ,,)	,,

११। आपरेशन ऐण्ड केयर आफ़ द आर० सी० ए० ४०० मि० मी० साउन्ड प्रोजेक्टर	(अँगरेज़ी, १८ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
१२। प्रोजेक्टिंग मोशन पिक्चर्स	(,, १० ,,)	,,
१३। ओवरहेड प्रोजेक्टर	(,, १६ ,,)	,,
१४। द ए बी सी आफ़ पपेट मेकिंग	(,, २० ,,)	,,
१५। लेट्स मेक पपेट्स	(,, १० ,,)	,,
१६। मेकिंग ऐंड यूज़िंग पपेट्स	(,, ११ ,,)	,,
१७। वेट माउंटिंग पिक्टोरियल मैटीरिएल्स	(,, १२ ,,)	,,
१८। पपेट्री—स्ट्रिंग मैरियोनेट्स	(,, १० ,,)	,,
१९। बिगिनिंग आफ़ पिक्चर मेकिंग	(,, ११ ,,)	यू. एस. एजेंसी फ़ार इन्टर्नेशन डेवलपमेंट, नई दिल्ली
२०। बेटर बुलेटिन बोर्ड्स	(,, १५ ,,)	,,
२१। केयर आफ़ आर्ट मैटीरिएल्स	(,, ११ ,,)	,,
२२। फ़िंगर पेंटिंग	(,, ११ ,,)	,,
२३। हैंडमेड मैटीरिएल्स फ़ार प्रोजेक्शन	(,, २२ ,,)	,,
२४। हाऊ टु टीच विद फिल्म्स	(,, २२ ,,)	,,
२५। लेट्स ड्रा विद क्रेयन्स	(,, ११ ,,)	,,
२६। पेपर स्कल्प्चर	(,, ११ ,,)	,,
२७। पोस्टर मेकिंग : डिज़ाइन ऐंड टेकनीक	(,, ११ ,,)	,,
२८। आपरेशन ऐंड केयर आफ़ द विक्टर १६ मि० मी० साउंड प्रोजेक्टर	(,, ११ ,,)	,,
२९। वर्ब्स : रेकग्नाइज़िंग ऐंड यूज़िंग देम	(,, ११ ,,)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
३०। वर्ब्स : प्रिंसिपल पार्ट्स	(,, ११ ,,)	,,

४—सामाजिक शिक्षा-केन्द्रों में उपयोग के लिए

क—फिल्मपट्टियाँ

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य विज्ञान

१। फ़ूड ऐंड हेल्थ (भोजन और स्वास्थ्य)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२। फ़र्स्ट एड (प्राथमिक उपचार)	,,
३। मलेरिया (शीतज्वर)	,,
४। कॉलरा (हैज़ा)	,,
५। लेप्रॉसी (कुष्ठ)	,,
६। ट्यूबरक्युलॉसिस (क्षय रोग)	,,

कृषि

१। कम्पोस्ट मेकिंग (कम्पोस्ट बनाना)	,,
२। लैंड (धरती)	,,
३। राइस (चावल)	,,
४। व्हीट (गेहूँ)	,,

५। इरिगेशन (सिँचाई)		द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
६। जूट फ़ील्ड्स (जूट के खेत)		,,

ख—फिल्में (१६ मि० मी०)

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य विज्ञान

१। बिफ़ोर द बेबी कम्स (शिशु-जन्म से पूर्व)	(अँगरेज़ी और प्रमुख भारतीय भाषाएँ ३० मि०)	यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़
२। क्लीन्लीनेस ब्रिंग्स हेल्थ (स्वच्छता से स्वास्थ्य)	(,, १० ,,)	,,
३। क्लीन वाटर मेक्स गुड हेल्थ (स्वच्छ जल से उत्तम स्वास्थ्य)	(,, ११ ,,)	,,
४। केयर आफ़ द आईज़ (आँखों की देखभाल)	(,, २१ ,,)	,,
५। हाऊ टु हैव हेल्दी होम (स्वास्थ्यप्रद घर की कुंजी)	(,, १७ ,,)	,,
६। मलेरिया कंट्रोल (मलेरिया-नियंत्रण)	(,, २७ ,,)	,,
७। दे नीड नाट डाई (उनकी मौत ज़रूरी नहीं)	(,, १६ ,,)	,,
८। योर बेबी कैन बी हेल्दी (आपका बच्चा स्वस्थ हो सकता है)	(,, १६ ,,)	,,
९। योर हेल्थ सेंटर (आपका स्वास्थ्य-केन्द्र)	(,, ८ ,,)	,,

१०। ऐरेस्ट लेप्रॉसी (कुष्ठ का प्रतिरोध करें)	(अँगरेज़ी, हिन्दी १२ ,,)	द सेन्ट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
११। हुकवर्म (अंकुश कृमि)	(,, १० ,,)	,,
१२। द मार्क्‌ड मैन	(,, १२ ,,)	,,
१३। मास्कीटो मेनेस	(,, ११ ,,)	,,
१४। व्हाट इज़ डिज़ीज़	(,, १२ ,,)	,,

कृषि

१। हाऊ टु कंट्रोल पेस्ट्स	(अँगरेज़ी और प्रमुख भारतीय भाषाएँ २२ मि०)	यूनाइटेड स्टेट्स इन्फ़र्मेशन सर्विसेज़
२। हाऊ टु ग्रो मोर पैडी	(,, २२ ,,)	,,
३। इम्प्रूव्ड सीड	(,, १६ ,,)	,,
४। लाइफ़ फ़ार द लैंड	(,, २५ ,,)	,,
५। मैजिक आफ़ द एग	(,, १५ ,,)	,,
६। फ़ैक्टर्स आफ़ स्वाएल फ़र्टिलिटी	(,, २२ ,,)	,,
७। टाइम मेक्स द डिफ़रेन्स	(,, १२ ,,)	,,
८। मोर प्राफ़िट फ़्रॉम गोट्स (बकरियों से और अधिक लाभार्जन)	(,, १२ ,,)	,,
९। प्लैनिंग फ़ार प्लेंटी	(,, १३ ,,)	,,
१०। टाइम इज़ मनी (समय ही धन है)	(,, १० ,,)	,,
११। व्हाइट मैन्योर	(हिन्दी, अँग. ११ ,,)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
१२। कार्न्स हिडेन एनिमीज़	(अँगरेज़ी, १० ,,)	बर्मा शेल
१३। स्प्रे फ़ार बेटर क्राप्स	(,, २८ ,,)	,,
१४। रेवोल्यूशन इन ऐग्रीकल्चर	(,, २३ ,,)	आई. सी. आई.

सहकारिता

१ ।	शोल्डर टु शोल्डर	(हिन्दी ११ मि०)	फिल्म्स डिवीज़न, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
२ ।	कोआपरेटिव फ़ार्मिंग	(हिन्दी, अँग. ११ „)	„
३ ।	द इटावा स्टोरी,	(„ ११ „)	„

शिल्प

१ ।	स्पिरिट आफ़ द लूम	(हिन्दी ११ मि०)	द सेंट्रल फिल्म लाइब्रेरी, नई दिल्ली
२ ।	बिज़ी हैंड्स	(„ १० „)	„
३ ।	सड्ज़	(हिन्दी, अँग. ९ „)	„
४ ।	पाटरीज़	(„ ११ „)	„
५ ।	ट्री आफ़ वेल्थ	(„ १० „)	„
६ ।	हिमालयन टैपेस्ट्री	(२९ मि०, रंगीन)	बर्मा शेल
७ ।	राजस्थान टैपेस्ट्री	(४४ „ „)	„
८ ।	द स्पोर्ट्समैन ऐंड द कार्पेन्टर	२९ मि०	„

अनुक्रमणिका